चंद्रावती

—युगमहालय

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Yugmahalaya 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7542-160-3

Cover design: Anuj
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: April 2026

सादर समर्पित, मातृत्व के उस गौरव को, जिसके हिस्से कभी कुछ नहीं आया।

| प्रस्तावना |

कौन हैं चंद्रावती? कौन पढ़ेगा? कोई बड़ी शख्सियत हैं क्या? नहीं न। तो फिर मत लिखो।

ऐसी स्वर्ण-मुद्राएँ देखीं हैं, जो बाजार के लिए खोटे सिक्के हों? ऐसे नायक, नायिकाएँ जिनके पाँव में बिवाइयाँ और हाथों में गाँठें हों, रुपहले पर्दे के सौंदर्य-प्रसाधनों का दु:स्वप्न हैं और साहित्यिक रोमांच की बलि-वेदी। छोटे लोग, छोटा किरदार किंतु इतना सशक्त चरित्र? समय के साम-दाम-दंड-भेद को ठेंगा दिखा अपनी रीढ़ पर से उसका चाबुक ही हटा दिया। इतनी हिम्मत?

इस हिम्मत में शोर नहीं है, कोलाहल नहीं है, चमक-दमक नहीं है। इस हिम्मत में आत्म-बल है। ऐसे लोगों से कहानियाँ नहीं मिसालें तैयार होतीं हैं, मुहावरे नहीं मनुष्य तैयार होते हैं।

तो मैने लिखा। अपनी जिद पर लिखा और चंद्रावती और उनके साथ जुड़े कई और नायकों और नायिकाओं को इस पुस्तक में प्रश्रय दिया जिनके लिए साहित्यिक बाजार में कर्फ्यू है और व्यवस्था में घनघोर उदासीनता। नहीं, नहीं ऐसा नहीं है कि ये नायक, नायिकाएँ ब्रांडेड हैं। घनघोर देसी हैं। अपने घर में, अपने गाँव में, अपने मुहल्ले में तलाशिए और इस पुस्तक में से चुन लीजिए उन्हीं के समकक्ष किसी नायक या नायिका को। कहानी मत ढूँढ़िए इसमें। काल्पनिक कुछ भी नहीं है। सब सच है। इस सच में शायद आप भी हैं।

। भूमिका ।

"दुनिया लय हो जाएगी"

चंद्रावती कहतीं थीं।

क्या सचमुच?

समाज के सिर पर नाचते अहं के उपद्रव को उन्होंने देखा। समाज के कान में घुसते एकात्मवाद के कनखजूरे को भी देखा। तब से समाज अपनी चीखे स्वयं नहीं सुन पा रहा। रस भरे दलदल से गोंचे गए साँसों के बायस्कोप में दम तोड़ते रुहानी रिश्ते समाज की नई उपलब्धियाँ बन गए।

"पदनी के परमेश्वर आवे" चंद्रावती बोलीं।

"छि:, छि:, कैसी असभ्य भाषा है"!

समाज ने अपनी किताबों को गमकौआ साबुन से नहलाया, उन पर इत्र-फुलेल छिड़का, उन पर पाउडर लगाया।

"ये मैं हूँ, तुम कौन"?

हाय!

समाज डिजिटल हो गया।

मातृत्व की आधारशिला खिसक गई है। अम्मा उपेक्षा का नया संस्करण बन गईं। गमकौआ साबुन से नहीं नहातीं, इत्र-फुलेल नहीं लगातीं।

समाज फिर चीख रहा है।

"कमाल करते हो, यार। फेसबुक पर नहीं, यू-ट्यूब पर नहीं, व्हाट्सएप पर भी नहीं! कौन हैं, कौन,ये चंद्रावती"?

चंद्रावती?

हर घर की बुनियाद में है। अनाम, खपी हुई।

अरे, रुको।कहाँ चले अपने साहित्यिक फावड़े, कुदाल लेकर?

मैंने घर कहा, मकान नहीं। घर उच्छिन्न हो गए।

मकान हैं, घर नहीं।

दुनिया लय हो गई।

१. अम्मा चलीं गईं।

नब्ज़ एकदम डूब रही थी। ऑक्सीजन लेवल और रक्तचाप तेजी से घट-बढ़ रहे थे।सुधा दी ने अम्मा की बाईं हथेली कस के दबाते हुए कहा, '' अम्मा कुछ महसूस नहीं कर रहीं हैं''। प्रतिभा की आँखें, मूक रुदन की पटकथा सी थीं। अर्थ, शब्द से अधिक पीड़ादायक थे। धीरे से बोली, ''जाने दीजिए, थक गई होंगीं, सो रही होंगी न''। मैंने अम्मा के कंधे पकड़ कर दो- तीन बार झकझोरा।''अम्मा__अम्मा '' जोर से चीखा। हल्की सी, बिल्कुल हल्की सी चीख सी सुनाई दी, अम्मा के मुख से।आँखें नहीं खोलीं।बस, वही आखिरी संवाद था, अम्मा के साथ।हथेली बिल्कुल सफेद थी। मैने धीरे से अम्मा का दाहिना हाथ छोड़ दिया।प्रतिभा की तरफ देख कर सिर हिलाया। अंदर का विध्वंस बाहर आने को चरमरा रहा था।अर्चना ने रोते हुए कहा ''किसी को बुलाइए''।

सोचा, '' किसे बुलाऊँ''?

पहरे पर समय तैनात है।जो आया है उसे जाने से नहीं रोकेगा कोई।

अम्मा के पैरों की तरफ प्रतिभा बैठी थी। बाईं ओर युगाँधर और महालय, फिर सुधा दीदी। विक्की सिरहाने, ऑक्सीजन लेवल जाँच रहा था। अर्चना दाईं ओर अम्मा का हाथ सहला रही थी। युगाँधर से मैने कहा, ''बाबा को फौरन बुला लाओ''। पापा साथ वाले कमरे में चहलकदमी कर रहे थे। सुबह ही, उन्हें पता चला कि अम्मा की तबीयत नाजुक है। विश्वास था, अभी कुछ देर में सब ठीक हो जाएगा।हमेशा की तरह।आकर सिरहाने खड़े हो गए।विश्वास तो था कि अम्मा हमेशा की तरह इस बार भी उठ कर खड़ी हो जाएँगी, पर हर विश्वास एक सीमा के बाद टूटता ही है। उनके आने से पहले ही अम्मा चली गईं। इस बार अम्मा नहीं मानीं।

अम्मा चलीं गईं। अम्मा गईं भी तो अम्मा की ही तरह। किसी को कोई परेशानी न हो। चुपचाप चलीं गईं। ईश्वर, उन्हे मोह के बंधन से पहले ही मुक्त कर चुका था। माया अब छूट गई। अम्मा किसी को निराश नहीं करतीं। कभी किया ही नहीं। जो लोग अम्मा के जाने का इंतजार कर रहे थे, उन्हें भी अम्मा ने निराश नहीं किया।जो लोग अम्मा के ठीक होने का इंतजार कर रहे थे, उन्हें भी नहीं।

युगाँधर १२ वर्ष का था और महालय ६ वर्ष का।दोनों, "अद्दा क्यों"? "अद्दा क्यों"? बोलते हुए, जोर-जोर से रो रहे थे। क्यों का क्या मतलब, क्यों? यकीन नहीं हो रहा था, उन्हें अद्दा इतना दुःख दे देंगी? वो तो उन्हें कभी प्यार से भी नहीं डाँटती थीं। फूलों सा सम्भाल कर रखती थीं। सारी कसर एक बार में पूरी कर दी अद्दा ने।

कैसा भी कष्ट हो, दु:ख वज्र बन कर गिरे, पापा के चेहरे पर क्षीण मुस्कान बनी रहती। अम्मा कहती थीं "बड़े कठोर हैं"। मुस्कान की वो रेखा अभी भी है, किंतु अभी वो, हाथ से फिसल गए सत्तर सालों के साथ की, खिसियाहट सी लगती है। कितने होते हैं, सत्तर साल? समय की चुटकी भर? और आदमी है कि गिनती करते जाता है, करते जाता है।

सुबह ही, सुमन नोएडा और सिम्मी, मुंबई से निकल चुकी थीं। उस समय अम्मा की हालत नाज़ुक थी। पर उनके निकलने के कुछ समय बाद ही अम्मा चली गईं। अबकी इंतजार नहीं किया। समय की पल भर की चंचलता ने दोनों के लिए रास्ते को कितना लम्बा कर दिया होगा? दोनों ही अकेले आ रहीं थीं। थोड़ी-थोड़ी चंद्रावती दोनों में हैं। संभाल लेंगी खुद को।

सिम्मी को फोन लगाया।"खत्म हो गईं, माँ!" बस, इतना ही निकला मुँह से और साथ निकला क्रोध और विवशता और संवेदना का मिला-जुला भाव। फोन फर्श पर पटक दिया। क्रोध था, इस दु:ख पर और दु:खी था अपने क्रोध पर।आश्चर्य था अम्मा पर। अम्मा ऐसे जाएँगी? कुछ कहा क्यों नहीं? महीनों से

इंतजार कर रहा था, एक बार मुझे, मेरा नाम लेकर बुलातीं। नहीं बुलाया। उस इंतजार को शाश्वत बना कर चलीं गईं, अम्मा? आश्चर्य होता है।

दुःख, कैसा, कितना और क्यों होता है, कुछ नहीं पता। बस, होता है। और सब कुछ चीर कर रख देता है। एक बवण्डर सा उठा कर ले जाता है और झकझोर कर रख देता है मन, मस्तिष्क, भाव, चेतना, अभिव्यक्ति, वेदना और रुदन।

अम्मा के पास गया, अर्चना का हाथ हटाया और अम्मा को अंक-पाश में लेकर बिखरता गया। रोया। खूब रोया। बिल्कुल असभ्य, उजड्ड, पाश्विक रुदन। जानवर की तरह। संतुलन नहीं, सामंजस्य नहीं, शर्म नहीं। हाँ, ऐसा ही घुप्प अँधेरे का साम्राज्य चाहिए, अपने दुःख के नंगेपन को ढँकने के लिए। गुफाओं का संन्यास चाहिए दुःख की दीक्षा के लिए। शालीनता का जमघट नहीं चाहिए।मेरा दुःख, मेरा अधिकार क्षेत्र है । साँत्वनाएँ उबासियों की नींद है । अब दिल से नहीं, फुर्सत से निकलतीं हैं। मैं अपने दुःख की प्रलयंकारी शांति की खोज में व्यस्त था, फुर्सत नहीं थी, साँत्वनाओं के शिलालेख पढ़ने की।

पापा का चेहरा वेदना से विकृत हो रहा था। पर पापा बहुत मजबूत हैं।“क्या रोने से वापस आ जाएँगी”? वैसी ही क्षीण मुस्कान थी चेहरे पर।

नहीं आएँगी । सब जानते हैं। पर पीड़ा ही तो मानव समाज के आविर्भाव का मूलभूत ढाँचा है। तोड़ दें? कैसे तोड़ दें? यही पीड़ा संबंधों की बुनियाद है। क्या करें? बुनियाद हिला दें? एक घर खाली हो गया है। घर। इन दीवारों और छत के साए में पनपे सुख-दुःख के साझे कौर को एक अदृश्य शक्ति निगल जाती है। भावनाओं की भूख चीखती है, ”अम्मा__अम्मा”।

अम्मा का स्पर्श कितना सुखद था। मृत्यु, मातृत्व से नहीं जीत सकतीं। यमराज का दंभ चूर- चूर हो जाएगा। नहीं छोड़ सकता।

सुधा दी बोलीं, “छोड़ दो, बहुत सेवा की तुमने”।

मन करुणा की अति से विक्षिप्त था।

दुःख को तौलने के पैमाने और क्या-क्या हो सकते हैं ? सब कुछ चढ़ा दो। उसका पलड़ा नहीं झुकेगा।

सुधा दी बोलीं, “अगरबत्ती जला दो”।

मैं चीखा, “नहीं, कुछ नहीं, जैसे भगवान ले गए हैं, ले जाने दो”।

भगवान पर बड़ी आस्था थी, अम्मा की। दुःख में, सुख में, कभी भगवान को भूलीं अम्मा? कभी नहीं। भगवान को अब फुर्सत मिली, अम्मा को याद करने की? ऐसे याद करते हैं भगवान?

उसी आस्था को मैने आत्मसात किया था। हमेशा डर रहता कि भगवान की अवहेलना, कहीं अम्मा के लिए अनिष्ट का कारण न बन जाए, इसलिए सुबह जितनी जल्दी हो सके पूजा कर के ही अम्मा के काम निपटाता था। डर रहता, पूजा न की तो अम्मा की तबियत और बिगड़ जाएगी। रविवार को पूजा नहीं करता था। उस दिन डरा-डरा रहता था।

आज रविवार ही है। भगवान ने हिसाब बैठा रखा था। वरदान के रास्ते ही श्राप प्रवेश करता है। सृष्टि का रचयिता हैं, सृष्टि तो चलानी ही है। साम, दाम, दंड, भेद, सब जायज है । संवेदना, क्रूरता का सबसे निकटवर्ती पर्याय है।कहीं कुछ क्रूर ही, संवेदना का प्रसाद है।१४ अप्रैल २०२४। ८:३० बजे प्रातः, विक्रम संवत् २०८१, चैत्र, शुक्ल नवरात्रि की षष्ठी, पुनर्वस नक्षत्र में अम्मा का देहावसान हुआ।

रामकृपाल जीजा और पूर्णिमा दीदी आए।

सुबह ही चल दिए थे, सुल्तानपुर से।

कमरे में प्रवेश करते ही जीजा बोले, “संदीप, उठो”! मैं नहीं उठा। दीदी बोलीं, ”उठो संदीप! लाश खराब होने लगेगी”। लाश? अरे, दीदी अम्मा हैं, अम्मा, जरा ध्यान से देखिए। इतनी शीघ्रता क्यों? लाश में विकृति है, संदेह है, आश्चर्य है, विलोम है, अपरिचय की झिझक है। नहीं! इतनी जल्दी नहीं, दीदी ।अभी

वो अम्मा ही हैं।दुःख की समय-सीमा कैसे तय की जाएगी ? कौन करेगा? मेरे आँसुओं को कौन अपनी आँखें किराए पर देगा? कोई नहीं ।तो आज मुझे सबका दुःख स्वीकार्य है। सारे संसार का । बाँटने पर दुख कम नहीं होता, तमाशा बन जाता है।

फिर लगा, दीदी, दीदी सी क्यों हैं? ऐसा क्या है दीदी में, जो उन्हें इतना मजबूत बना देता है और मुझे इतना कमजोर?

उनमें परिपक्वता अधिक थी या मुझमें बचपना अधिक था। कुछ भी हो दीदी की परिपक्वता, अम्मा बिना समझे ही चली गईं और मैं कभी परिपक्व हो सकूँगा, इसमें अम्मा को संदेह रह गया। अम्मा खाली हाथ ही गईं।

२

जीजा ने चाय मँगवाई। सामाजिक होना भी किस कदर भयावह होता है। अम्मा निष्प्राण पड़ी थी। सबको चाय पीने को दी जा रही थी। अम्मा, ये सब बिल्कुल पसंद नहीं करती थीं। कई बार, जब अम्मा, किसी की मृत्यु पर जातीं, वहाँ चाय का प्रबंध देख कर कहतीं, " ये पता नहीं कौन सा रिवाज चल पड़ा है? हमको ये बिल्कुल नहीं अच्छा लगता"। और ऐसे किसी भी अवसर पर अम्मा ने कभी, किसी के यहाँ चाय नहीं पी।

आज वो रिवाज उनके घर में घुस आया था। सामाजिक परिपाटियों के अद्भुत विष-वमन को चाय के घूँट के साथ लील लिया गया। अम्मा नहीं रोकेंगी, कभी रोका ही नहीं। अम्मा का स्वभाव नहीं था।

बॉबी ने बर्फ की सिल्ली भिजवा दी थी। नीचे रखी थी। विकी और गोलू अम्मा को ले कर नीचे गए। अम्मा के जाते ही वो कमरा निष्प्राण हो गया। मैं असक्त सा पड़ा रहा। अम्मा कहती थीं, आदमी से मजबूत कोई नहीं होता।

अम्मा नीचे कमरे में बर्फ की सिल्ली पर लेटी हैं। अम्मा को बहुत जल्दी ठंड लगती थी। ए.सी चलने पर, थोड़ी ही देर में उन्हें कम्बल ओढ़ना पड़ता। पर आज ?

निःशंक, बर्फ की सिल्ली पर निश्चेष्ट पड़ी हैं। हमेशा की तरह अपार शोरगुल में भी नितांत मौन और अकेली। किंतु मेरा हाहाकार अब भी अधूरा है। कैसे प्रकट होगा? किसके सामने?

सब कहते हैं, उम्र हो चली थी। बीमार भी थी। पर मैं क्या करूँ? जैसे माँ-बाप के लिए बच्चे हमेशा बच्चे रहते हैं, क्या बच्चों के लिए माँ-बाप हमेशा माँ -बाप नहीं रहते? मेरे लिए वो एकरूपा अम्मा ही थीं। बचपन का भय आज जाकर भयावह सच बनकर काट लेता है।जब से मरने का मतलब समझ में

आया था, माँ को खो देने का भय मुझे दबोच रखे था। आज उस भय ने अमूर्त रूप ले लिया। अम्मा कुछ नहीं थीं बस अम्मा थीं, शब्दों में नहीं भाव में थीं।

लोग आ रहे थे, लोग जा रहे थे। पापा चाहते थे, अम्मा का अंतिम संस्कार, हमारे पैतृक गाँव, उतुरी में हो। अंतिम दिनों में, अम्मा उतुरी को बहुत याद करतीं थीं।

सुमन नोएडा से आ रही है, सिम्मी मुंबई से। उन्हीं का इंतजार था।

आस-पड़ोस वाले गिनती के ही लोग आए। मुझे कोई उज्र नहीं था। दु:ख नितांत निजी होता है। व्यक्तिगत मिल्कियत। मुझे अपना दु:ख बाँटने में जरा भी दिलचस्पी नहीं है। पापा के मित्र गण सब आए। अम्मा अधिक सामाजिक नहीं थी। स्वभाव की संकोची थी । पापा के स्वभाव के विपरीत। उनके बच्चे भी काफी कुछ उन्हीं का स्वभाव पाए थे, जिसे सामाजिक व्यवहार, अहंकार समझ बैठता है।

अंदर अम्मा की लाश पड़ी है। बाहर अध्यात्म से लेकर, राजनीतिक और सामाजिक कुरीतियों के उत्थान-पतन की रूपरेखा तय हो रही थी। समाज अपने दायित्व से कभी नहीं पीछे हटेगा। आज ही सारी कुरीतियों का अंत निश्चित है।

समाज को आगे बढ़ना ही होगा। आज।

समाज का पूरा प्रयास रहता है, अपने आपको संपूर्ण नंगेपन के साथ उजागर करे, किसी भी परिस्थिति में। अम्मा कफ़न में थीं, समाज नंगा ।समाज जोश में था। बर्फ की सिल्ली पिघले जा रही थी। पानी फैल रहा था । मैं सिकुड़ रहा था। कंडे सुलग रहे थे। अगरबत्तियाँ सुलग रहीं थीं। समाज, राजनीति, देश सब सुलग रहा था। गीता प्रवाहित थी। आत्मा का साहित्य, आत्मा की तरह अजर है, अमर है।

और दु:ख?

वो भी अजर है।अमर है।समय सारे दु:ख भर देता है, साहित्य है। पुराने से पुराना दु:ख, समय के नए से नए प्रारूप को छेद डालता है, सत्य है।

३.

सिम्मी को पहुँचते-पहुँचते शाम के ५ बज गए। पिछली बार जाते समय अम्मा से कहा था, “शिवि के इम्तिहान खत्म होते ही फिर आएँगे“।

अम्मा बोली थीं, “तब तक क्या बैठे रहेंगे हम”?

अम्मा जानती थीं। हम ही नहीं जान पाए। क्यों नहीं जान पाए? क्या अम्मा की भाषा इतनी क्लिष्ट थी? अब उलझन होती है। बेचैनी होती है। जो नहीं हुआ, वो होता तो क्या होता, जो हो गया, वो न होता तो क्या होता? होने और न होने की दुविधा के बीच ही उसका अनंत क्रीड़ास्थल है। कितना खेलेगा वो?

जी नहीं भरता? हमेशा बच्चा ही बना रहेगा? बिना किसी नियम के, बस खेल रहा है।

सावित्री बुआ और बबलू , आलमबाग से आए । सावित्री बुआ, अम्मा के काफी करीब थीं। दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख में बराबर की साझीदार थीं।

चाचा- चाची आए ।चाची अम्मा के पास बैठ कर रोने लगीं। अम्मा को “जिज्जी” कहतीं थीं, अम्मा उन्हें ऊषा ही बुलातीं थीं। पिछली बार जब चाची घर आईं थीं, अम्मा ने उन्हें फिर आने को कहा था। मैं, अम्मा के पैरों के पास निढाल सा बैठा हुआ था, बगल में चाची बैठी थीं। मैं उस समय पूरी तरह ढह चुका था। उस समय कोई मेरे पास शायद हीं आकर बैठा। रिश्तों की बारीकियाँ ऐसे समय में स्पष्ट होतीं हैं।

अम्मा का चेहरा देख कर फफक पड़ी, सिम्मी। अम्मा के बहुत करीब थी। मुझसे कहती “ माँ, आपसे पूछे बगैर कहीं नहीं जाती”।

आज गई। किसी से कुछ भी न कहा, न सुना। अपना ही स्वभाव बदल लिया, अम्मा ने।

सुमन शाम के सात बजे पहुँची। नितांत अकेली। नोएडा से लखनऊ तक जिस पीड़ा को अकेले ढोया, बर्फ की सिल्ली ने उसे एकदम पिघला दिया।

६ भाई-बहनों में, सबसे सीधी, शालीन और भावुक। अपनी पीड़ा, अपनी तकलीफ छिपा लेने का हुनर, बिल्कुल अम्मा की तरह।

अम्मा पूरी हुईं। उनकी पाँचों बेटियाँ, मैं, उनके नाती-पोते, युगाँधर, महालय, शिवि, गोलू और विक्की भी थे। अम्मा की हार्दिक इच्छाओं में से एक पूरी हुई।

इस घर में अम्मा को २२-२३ वर्ष हो चुके थे। सुमन, सिम्मी और मेरा विवाह इसी घर से हुआ था। इसी घर में युगाँधर, शिवि और महालय पैदा हुए। अम्मा की साध और परिश्रम था, ८६१ A आशीर्वाद। बहुत कष्ट उठा कर इस घर को तैयार किया था, अम्मा ने। घर, इमारत नहीं। जहाँ-जहाँ घर होंगें, चन्द्रावती होंगीं। जरूर होंगीं।बिना उनके निस्वार्थ त्याग के महल और हवेलियाँ बन जाएँगी, घर नहीं बन पाएगा।

अम्मा, पापा का नाम मिलाकर इसका नाम “राम-चन्द्रा” रखा गया।

आज चंद्रावती जा रही हैं और चुपचाप हाथ बाँधे, परछाइयों में स्वयं को छिपाए, खड़ा है ८६१ A आशीर्वाद। उसकी छाया उससे अलग हो रही थी।“अलविदा, चंद्रावती”!

४.

अम्मा के साथ गाड़ी में मैं, सुमन, प्रतिभा और सिम्मी थे। बाकी सब अलग-अलग गाड़ियों से आ रहे थे। इनमें से एक गाड़ी बॉबी की भी थी। अम्मा हमेशा उसी में बैठती थीं। आज नहीं। अपनी अंतिम-यात्रा के लिए वो वाहन का चुनाव नहीं कर पाईं। लखनऊ से उतुरी तक रात टुकड़ों में बिखरती गई किंतु हृदय की चिरकन में सब समेट उठा। अम्मा की यात्रा के वो सारे पड़ाव साथ ही चल रहे थे जिनमें अम्मा की प्रकृति की सोंधी छाया रची-बसी थी। ८६१ Aआशीर्वाद ने मुझसे कहा था, "कैसे भी हो, अम्मा को वापस ले कर आना। हमेशा जब भी लेकर गए हों, वापस लेकर आए हो। इस बार भी तुम्हारी जिम्मेदारी है"।

। यात्रा ।

५. भैरोपुर।

अम्मा चारपाई पर बैठी रो रहीं थीं।हाथ में एक अंतर्देशीय पत्र था। बाल खुले थे। अभी स्कूल से लौटा था। अम्मा को पहली बार रोते हुए देखा था। नाना का देहांत हो गया था। वो पहली मौत थी जो समझ में आ रही थी। जीना, मरना और उसके साथ रहना । विस्तृत आँकलन तो नहीं हो सकता था, उस उम्र में, पर कष्ट के मानक अवश्य महसूस हो रहे थे।

बाल-सुलभ कौतूहल और जिज्ञासा के बीच अम्मा के बहते आँसू इतना तो समझा रहे थे कि जो गया अब नहीं लौटेगा। न मैं दिलासा देने लायक था, न मैं दिलासा दे पाया।पर उस पीड़ा को गहनता से आत्मसात कर रहा था और शायद इसीलिए आज भी वो दृश्य साक्षात् है।

अम्मा नहीं जा सकीं। पत्र कई दिनों बाद मिला था। हम कलकत्ता में थे, ननिहाल भैरोपुर, उत्तर-प्रदेश में था। सुल्तानपुर जिले का एक बेहद पिछड़ा गाँव ।

नाना अँग्रेजों की फौज में खानसामा थे। अच्छी आमदनी थी, किंतु खर्च करने के शौकीन भी थे।अम्मा बताती थीं एक से एक कीमती सामान रखा था, पर धीरे-धीरे सब चला गया। अवकाश प्राप्ति के बाद वो भैरोपुर में ही रहते थे।

लकवा मार गया था। फिर कभी नहीं ठीक हो पाए।नाना ने दो शादियाँ की थीं। पहला विवाह महाराजी गंज, फैजाबाद में हुआ था। पहले विवाह से चंद्रावती और विमला नाम की दो बेटियाँ हुईं। जब अम्मा छोटी थी तभी उनकी माँ का स्वर्गवास हो गया था।

दूसरे विवाह से नाना की तीन संतानें हुईं। विद्या, भुल्लर (महेंद्र प्रताप सिंह) और गुड्डा (माधुरी)।

नानी अम्मा को बहुत मानती थीं। नानी अम्मा को"चद्दर" बुलाती थीं। पूर्णिमा दी को "पुडुम " और मुझे "सलीप " बुलातीं। उस अपभ्रंश में जो संपूर्णता थी वो आज किसी शालीन से शालीन संबोधन में नहीं दृष्टिगत होती। व्याकरण अशुद्ध पर करुणा शुद्ध होती। आज दोनों अशुद्ध हैं।

एक-एक कर परतें उतरती जाती हैं और संपूर्णता का अभाव, जीवन के दरकते चेहरे पर नए प्रश्नचिह्नों की परत चढ़ाता जाता है, विश्वास दिलाने के लिए कि "हाँ, अब पूर्ण हो"। इसी छद्म आँकलन में मनुष्य, पूरे से अधूरा हुआ और अधूरे से घूरा हुआ।

अम्मा कष्टों की बिसात थीं, पर कष्टों से कभी मात नहीं खाई। खिलौनों से नहीं कष्टों से ही खेलीं। बचपन से जो कष्ट उठाए, कभी भी उसकी सार्वभौमिकता को अपने कर्मक्षेत्र का आधिपत्य नहीं दिया। भयानक से भयानक कष्ट में भी चंद्रावती, सब झाड़-पोंछ कर उठ कर खड़ी हो जातीं, मानो कहती हों "नहीं, अभी नहीं। अभी तुम्हारे लिए समय नहीं है"।

अम्मा कभी विद्यालय नहीं गईं। जो कुछ पढ़ा, घर पर ही पढ़ा। उन्हें पढ़ाने, उनके घर पर उनके चचेरे भाई आते थे। गृहस्थ कार्यों में दक्ष अम्मा का कोई सानी नहीं था। इसका अनुमान इस तथ्य से ही लगाया जा सकता है कि सोलह-सत्रह वर्ष की उस कन्या ने अपने विवाह में पूरी बारात के लिए स्वयं रोटियाँ सेंकीं थीं।

६.उतुरी

अम्मा का विवाह, उतुरी गाँव, जिला सुल्तानपुर, उत्तर-प्रदेश, के राम आसरे सिंह यानि हमारे पापा से तय हुआ। पापा उस समय इंटर में पढ़ रहे थे।

उतुरी गाँव, वस्तुतः एक परिवार का ही विस्तृत अध्याय ही है। हमारे बाबा के पिता, गौरी शंकर सिंह, के समय ही घर का बँटवारा हुआ था। ६ अलग-अलग घर बन गए। उन्हीं ६ घरों में लगभग पूरा गाँव बस गया।

बँटवारे से दुखी, पापा के सबसे बड़े भाई, बटेश्वर सिंह, जो फौज में थे, उन्होंने आत्महत्या कर ली। अपनी कनपटी पर गोली मारी थी । बाकी तीन भाई और दो बहनों में सबसे बड़े, संतराम सिंह, फिर राम आसरे सिंह, फिर सावित्री सिंह, फिर राजनाथ सिंह और सबसे छोटी गायत्री सिंह। बाबा का नाम अक्षयवर सिंह था। लालिमा लिए, गोराई थी उनकी और वैसे ही गुस्सैल। अम्मा को देखने उतुरी से भैरोपुर पैदल गए और पैदल आए। कितना भी क्रोधित हों, कभी लड़कियों और महिलाओं को कुछ नहीं कहते थे।

पाँच साल के बाद जब अम्मा का गौना आया, उतुरी का हमारा घर, मिट्टी का ढहा खंडहर मात्र था। घर में बाबू(ताऊजी), बड़की माई(बटेश्वर सिंह की पत्नी चित्रलेखा सिंह), बड़की अम्मा(संतराम सिंह की पत्नी, दिलराजी सिंह), आजी, बाबा, बड़ी बुआ(सावित्री सिंह) छोटी बुआ(गायत्री सिंह) और चाचा(राजनाथ सिंह) थे।

घर के सामने एक बड़ा सा तालाब है, जिसे दरजी कहते हैं। जब अम्मा ब्याह कर आईं थी तब यह तालाब बहुत विशाल था, अब तो सिमट कर आधा भी नहीं बचा है।

अगल-बगल महुआ, बड़हल, कटहल, आम के पेड़, बाँस की कोठी। उसी तालाब का बड़ा हिस्सा, पापा वगैरह ने सिर पर मिट्टी ढो-ढो कर पाट दिया, घर का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए।

अम्मा के गौने के बाद पापा सुल्तानपुर जिला बोर्ड में क्लर्क नियुक्त हुए। कुछ महीने नौकरी करने के बाद, एल.टी करने, टी.डी. कॉलेज(तिलकधारी सिंह क्षत्रिय डिग्री कॉलेज), जौनपुर चले गए। जब पापा ग्यारहवीं में थे, पापा का चयन भारतीय नौसेना में भी हुआ था किंतु मेडिकल के लिए पापा नहीं गए। जौनपुर से आने के बाद, बडगाँव में, भीमसेन इंटर कॉलेज में पढ़ाने लगे। वहाँ पापा की तनख्वाह १२० ₹ महीने थी, जिसमें १००₹ हर महीने गाँव भेज देते। बाद में जब बाबू एल. टी करने के लिए हॉस्टल में रहने लगे और चाचा अपनी पढ़ाई कर रहे थे, इन्हीं १२०₹ से बाबू के और चाचा की पढ़ाई का खर्चा भी चलता, घर भी चलता और पापा अपना खर्च भी निकालते। तब रुपए का मूल्य था पर आदमी मूल्यवान था। आज आदमी का मूल्य है, रुपया मूल्यवान। कुछ साल वहाँ पढ़ाने के बाद, महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज (पुराना नाम क्षत्रिया कालेज), सुल्तानपुर में अध्यापन का कार्य किया। वहीं पर, बाद में, बाबू हिंदी प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हुए और वहीं से सेवानिवृत हुए। हमारे बड़े जीजा रामकृपाल सिंह भी वहीं से सेवानिवृत हुए हैं और भइया भी वहीं पढ़ाते हैं।

बड़गाँव कॉलेज में पापा का एरियर बकाया था। ३००० ₹। जब वो मिला, तब हमारे पक्के घर की नींव पड़ी। पाँच कमरे और आँगन की। ६ आने बोरी सीमेंट और रुपया सैकड़ा के हिसाब से ईंटें थीं। ३०००₹ में ५ कमरों की बुनियाद तैयार हो गई। आजी की देखरेख में। पापा और आजी के तेवर! न वो उन्नीस न वो बीस।

३.देहरादून

महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज में कुछ महीने पढ़ाने के उपरांत पापा की नियुक्ति केंद्रीय विद्यालय में हिंदी स्नातकोत्तर शिक्षक के रूप में हो गई। उनकी पहली पोस्टिंग, केंद्रीय विद्यालय, हाथी बड़कला, सर्वे ऑफ इंडिया, देहरादून में हुई। उस समय तक पूर्णिमा दीदी और सुधा दीदी का जन्म हो चुका था। दोनों उस समय बहुत छोटी थीं। डी. एल कॉलोनी में एक किराए के मकान में रहते थे।

अम्मा काफी अंतर्मुखी थीं। पहली बार ग्रामीण परिवेश से निकल कर शहरी परिवेश में आईं थीं। बहुत सीमित संसाधनों के साथ, दो छोटी बच्चियों को लेकर । पूरे घर का काम अकेले करतीं।

वहाँ ठंड बहुत पड़ती थी। अम्मा के पास सिवाय एक ऊनी ब्लाउज के कोई गर्म कपड़ा नहीं था। उस भयानक ठंड में, अम्मा साधारण सी साड़ी पहन पूरा काम करतीं। अम्मा ने पापा से कभी इसकी शिकायत नहीं की। पर जो देखता वो टोकता अवश्य। ऐसे ही एक साथी के बहुत कहने पर, पापा ने एक ऊनी शॉल खरीदी। लेकिन अम्मा उसे पहन नहीं पाईं। छुट्टियों में उतुरी गए और वहाँ वो शॉल, किसी को थमा दी। गरीबी उधर भी थी, गरीबी इधर भी। अम्मा ने कोई विरोध नहीं किया। अम्मा के अंतर्मन की थाह पाना बहुत मुश्किल था। पता नहीं पापा जानकर अनजान बनते थे, या जानना चाहते ही नहीं थे।

देहरादून में, एक बार, चाचा आए थे। उनकी नियुक्ति पौड़ी में अभियंता के तौर पर हुई थी। अम्मा उनके लिए पूरियाँ निकाल रहीं थीं। अचानक कड़ाही पलट गई और पूरा का पूरा खौलता तेल अम्मा के दाहिने हाथ पर गिरा। कोहनी से कलाई तक अम्मा बुरी तरह जल गईं थीं। असह्य पीड़ा रही होगी, शब्दों का अतिरेक या भाषा का सौष्ठव भी उस पीड़ा को महसूस कर तिलमिला जाएगा।

किंतु अम्मा ने बरनॉल लगाया और दोबारा कड़ाही चढ़ाई और पूरा खाना बनाया।“मैं नहीं तो कौन”? ऐसी थीं, हमारी गँवार अम्मा।

हमारे खानदान में डॉक्टरों से दूरी बनाए रखने की अद्भुत परंपरा है। हमारे पापा, बाबू और चाचा, तीनों ही डॉक्टर के नाम मात्र से भड़क जाते हैं। गाँव में, हमारे यहाँ, किसी को डॉक्टर के पास जाना होता तो इन तीनों से छिप कर जाना पड़ता।

एक बार, सुधा दी कि तबीयत, देहरादून में, बहुत अधिक खराब हो गई थी। सीने में जकड़न थी। दिन-रात रोती थीं। अम्मा से नहीं सम्भल पा रहीं थीं। अम्मा ने पापा से कई बार कहा कि डॉक्टर को दिखा लें। पापा या तो अनसुना कर देते या कहते सर्दी, जुकाम है कुछ दिन में ठीक हो जाएगा। नहीं ठीक हुआ। सुधा दी वैसे ही दिन-रात रोती रहतीं। मकान-मालिक से नहीं रहा गया। उसने पापा से कहा, “इतने दिन से बच्ची रो रही है। भाभीजी इतना परेशान रहतीं हैं, बच्ची को डॉक्टर के पास क्यों नहीं ले जाते? अगर लड़का होता तो क्या तब भी नहीं ले जाते”? बात चुभ गई। पापा, सुधा दी और अम्मा को लेकर डॉक्टर के पास गए। सुधा दी को निमोनिया था। पापा ने तीन विषयों में एम. ए किया था, हिंदी, अँग्रेजी और संस्कृत। संस्कृत में शास्त्री की उपाधि भी मिली थी। एम.एड भी कर रखा था। अम्मा ने कक्षा एक भी नहीं उत्तीर्ण की थी। पर व्यावहारिक रूप में अम्मा, पापा से कहीं आगे थीं।

डेढ़ साल चंद्रावती सिंह ने देहरादून में एक ऊनी ब्लाउज के सहारे काट दिए। न पापा ने कभी उनसे कोई ऊनी वस्त्र खरीदने को कहा, न अम्मा ने कभी कहा कि उन्हें भी ठंड लगती है। अम्मा की चुप्पी हृदय-विदारक होती, इसलिए बहुत खलती थी। चुप रहना क्या सीखना पड़ता है? शिक्षा का सबसे कठिन अध्याय है।

४.कानपुर

देहरादून से पापा का स्थानांतरण केंद्रीय विद्यालय चकेरी, कानपुर हुआ। हरजिंदरनगर। श्री देवीपाल के यहाँ, दो कमरे के मकान में कुछ दिन रहे, हम। किंतु बिजली की समुचित व्यवस्था न होने के कारण, वो मकान हमें छोड़ना पड़ा। हम, लाल-बँगला में, राजा भैया के यहाँ किराए पर रहने लगे। कानपुर ही मेरी, प्रतिभा और सुमन की जन्मभूमि बना।

बड़की अम्मा के भी पाँच लड़कियाँ और एक लड़का हुआ। उनके दो लड़के जन्म के कुछ दिन के बाद ही खत्म हो गए।

गाँव में पढ़ने की पर्याप्त सुविधा न होने के कारण पापा, रजनीश भैया को हमारे साथ ही कानपुर ले आए थे।

चाचा का विवाह भी उन्हीं दिनों हमीदपुर के उदयभान सिंह की पुत्री, ऊषारानी सिंह से हुआ। चाची उस समय इंटर कर रही थीं। उनकी पढ़ाई पूरी करवाने उन्हें भी पापा कानपुर ही ले आए।

तो कुल मिलाकर दस लोगों का परिवार चलाती थीं, अम्मा। सबको खिलाना, पिलाना, बर्तन, झाड़ू, पोंछा, सब अम्मा ही करतीं। कुँए से पानी खींचना पड़ता था, वो भी अम्मा ही करतीं और फिर इतने छोटे-छोटे बच्चों की देखभाल। औरत का सत् अम्मा को संपूर्णता से कहीं आगे ले जाता है। अपनी इच्छाओं, अभिलाषाओं को दरकिनार कर, सुबह से रात तक पारिवारिक कोल्हू में जुती, अम्मा। अम्मा किसी साहित्य या इतिहास में जगह नहीं पाएँगी मगर अम्मा का इतिहास और उनकी भावनाओं का साहित्य, शब्दों को एकदम बौना कर देगा, इसलिए यही सही। जब व्यक्ति शब्दों से बड़ा हो जाता है, नितांत एकाकी ही रहता है।

राजा भैया का मकान बड़ा और खुला था। बाहर ही पानी की व्यवस्था के लिए कुँआ था। साथ में एक बड़ा नीम का पेड़ था। अम्मा बताती थीं, घर में कोई मेहमान आने पर मैं, उसी पेड़ के नीचे जाकर बैठ जाता और तब तक बैठा रहता जब तक मेहमान चला नहीं जाता था। राजा भैया की अम्मा काफी धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। मुँह अँधेरे उठती और गंगा नहा कर आतीं। उनके यहाँ आए दिन, भजन-कीर्तन होते । कुछ धुँधली सी तस्वीर अब भी है, जेहन में उनकी । " जय-जय नारायण-नारायण हरि-हरि" की धुन पर भाव-विभोर हो, सफेद साड़ी में, मंजीरा बजातीं। उनके पति का देहावसान हो चुका था। पाँच लड़के, राजा भैया, संतोष, दिनेश, रम्मू और टिल्लू थे और दो लड़कियाँ किरण और सुमन थीं।

उनसे हमारे परिवार के संबंध काफी मधुर थे।

रजनीश भैया और पूर्णिमा दीदी का नाम केंद्रीय विद्यालय, चकेरी में लिखाया गया । पापा के साथ, दोनों साइकिल पर जाते और आते। घर से बमुश्किल एक किलोमीटर की दूरी पर ही विद्यालय था। सुबह, सब खाना खाकर जाते। शाम को अम्मा अजवायन वाले नमकीन पराठे और चाय बनातीं। स्मृतियाँ अब भी स्पष्ट हैं पर अँगीठी पर उबली वो चाय, वो सुनहरे, सोंधे, तिकोने, परत वाले पराठे, वो अंगीठी की सोंधी महक और इन सबको संभाले अम्मा, यथार्थ से कोसों दूर जा चुके हैं। जो हाथ से निकल जाता है वही सबसे मूल्यवान होता है।

कानपुर की एक घटना थी, जिसका जिक्र अम्मा सदा हमारी मजलिसों में करतीं। जहाँ हम रहते थे, उससे थोड़ी दूर पर हरकिशन नामक व्यक्ति रहता था। काफी मुँहफट और बदतमीज होने की वजह से लोग उससे डरते और दूर ही रहते। एक बार पापा, उनके मित्र लालता प्रसाद मिश्र और त्रिपाठी जी के साथ उसके घर के सामने से गुजर रहे थे। हरकिशन ने लालता प्रसाद मिश्र और त्रिपाठी जी को कुछ अपशब्द कहे। वाद-विवाद हुआ। वो लाठी लेकर दौड़ा

तो पापा ने उसे थप्पड़ मारा जिससे वो नीचे गिर पड़ा। किसी ने उसके पाले हुए कबूतर भी खोल दिए।

उसने पुलिस में पापा के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई। पुलिस, पापा को ले गई। रात हो गई, पापा नहीं आए। अगले दिन पापा का एम. ए का इम्तिहान था।

अम्मा बहुत घबराईं। देवीपाल के पास दौड़ी गईं, तब देवीपाल और उनके भाई ने पता लगा कर पापा की जमानत करवाई और उन्हें लेकर आए।

पापा बेहद उग्र स्वभाव के थे। उतुरी में एक बार, चाचा रोते-रोते घर आए। पता चला कारी-सेमिया (आम के पेड़ों का बाग है) में बाँकें ने उनसे हाथापाई की थी। बस, फिर क्या था? पापा पहुँच गए, उनके घर। सबसे पहले, सामने पड़े व्यक्ति को उठा कर पटक दिया। वो बाँकें के पिता थे। बाबू को जब इसका पता चला, उन्होंने पापा को बहुत फटकारा और फौरन जा कर उनसे क्षमा माँगने को कहा। पापा गए, क्षमा भी माँगी, पर ताव नहीं कम हुआ। उतुरी में तौलिया लपेटे, बात बात में लाठी उठा लेने वाले, पापा और शांत और संवेदनशील अम्मा । पर दोनों ही निडर और निर्भीक। दोनों ने जीवन में ऐसे अध्याय देखे जहाँ हाथ को हाथ न सूझता था पर निकल आए दोनों। हिम्मत तो दोनों में थी। जीवन को दो भिन्न छोरों से थाम रखा था दोनों ने।

सुमन जब पैदा हुई बेहद कमजोर थी। तालु पर बड़ा सा गड्ढा भी था।

घर में सब उसे “बच्ची” कहकर ही बुलाते।

अम्मा सुबह-शाम मालिश करते समय रुई की पतली सी परत, सरसों के तेल में डुबो कर उसके तालु पर रखतीं। बचपन से ही शांत प्रकृति की सुमन रोती भी कम थी। एक बार अम्मा नहा कर, गुसलखाने से निकलीं तो देखा, सुमन जमीन पर गिरी पड़ी थी और पेट के बल रेंगते हुए गुसलखाने की तरफ आने

का प्रयास कर रही थी। अम्मा उसे गोदी में लिए थोड़ी देर बैठी रहीं। उनकी आँखों में आँसू थे, सुमन चुप थी। सुमन की इस चुप्पी ने अम्मा को बाद में भी रुलाया।

कानपुर हमारे बाल्यकाल की एक दम प्रारंभिक अवस्था थी। सब या तो धुँधले संस्मरणों से है या अम्मा, दीदी या पापा से सुनी हुई बातों से है। अम्मा बताती थीं रात में अक्सर मैं, गाय का बच्चा या भाभी का बच्चा देखने की जिद करता। राजा भैया का बेटा दीपक, सुधा दी की ही उम्र का था। राजा भैया ने एक गाय भी पाल रखी थी जिसका एक बछड़ा था, जिसे देखने की जिद मैं करता था।

पाकिस्तान युद्ध की भी बात अम्मा बतातीं थीं, जब शाम होते ही ब्लैक आउट घोषित कर दिया जाता था और लोगों को अपने घरों की रोशनी बंद रखने को कहा जाता । यहाँ तक की छोटे-मोटे सुराखों में कपड़ा ठूँस दिया जाता। इसलिए दिन ढलने से पहले ही अम्मा को शाम की रसोई तैयार कर लेनी पड़ती।

---

५. कलकत्ता (ईशापुर)

“पापा, वो देखो आदमी को मारकर टाँग रखे हैं”। आश्चर्य-जनित कौतूहल से मैने पापा से कहा। हम रिक्शे पर थे। सामने एक दुकान में बड़ा सा, कुछ सफेद और लाल रंग में टाँग रखा था, जिससे थोड़ा-थोड़ा काट कर निकाला जा रहा था।“वो आदमी नहीं, बकरा है” पापा ने हँसते हुए कहा। यही था कलकत्ता शहर से मेरा प्रथम साक्षात्कार । पापा ने बताया बकरा खाया जाता है। पहली बार देखा, पहली बार सुना। मन में बेचैनी सी हुई। काट देते हैं? फिर खा भी लेते हैं? बचपन में किसी भी ऐसे व्यक्ति से बात करना भी नहीं पसंद था जो मांसाहारी हो। मन वितृष्णा से ऐसा भरा कि ये गाँठ कई सालों बाद ही खुली, हालाँकि अपने आप ही खुली।

कानपुर से पापा का स्थानांतरण केंद्रीय विद्यालय ईशापुर, २४ परगना, हो गया था।

कलकत्ता। हमारे बचपन की स्मृतियों का इंद्रधनुष ।कलकत्ता। एक परिवार को बनाने, सँवारने और संभालने की जद्दोजहद। कलकत्ता। अपरिचित स्थान, अपरिचित लोग, अपरिचित भाषा, खान-पान और आठ सदस्यों का एक परिवार। पर कलकत्ता सबकी सुनता है, सबको अपनाता है। अपने साहित्य और संस्कृति सा विशाल, छोटा सा हिंदुस्तान ही है, कलकत्ता।

बहुत विशाल हृदय है कलकत्ता का । ओनेक भालो। सबको आत्मसात कर लेता है। झाल-मूढ़ी, सिंघाड़ा, संदेश और खोखा, खोखी से सीखना शुरू किया और धीरे-धीरे, पूरी भाषा और वहाँ की संस्कृति, सब आत्मसात कर ली और उत्तर-प्रदेश का साधारण सा परिवार कलकत्ता महानगर का एक नया पात्र बन गया।

पंद्रह-बीस दिन हम, नवाबगंज, ईशापुर, में एक बंगाली भद्रलोक के यहाँ किराए पर रहे। पानी की व्यवस्था, पूकुर (तालाब) द्वारा होती। बँहगी से पानी घर पर दे कर जाता था।

पानी की समस्या से उबरने के लिए हमने पलता-पार्क, ईशापुर में दूसरा मकान किराए पर लिया। अँग्रेजों के समय की बनाई, इमारतें थीं सब। भव्य, हवादार और बेहद मजबूत। बड़ी हवादार खिड़कियाँ, बड़े-बड़े दरवाजे और हर कमरे में रोशनदान। उस भवन में चार परिवार रहते थे। बाईं तरफ नीचे हमारा परिवार था, हमारे ऊपर वाले हिस्से में बोस बाबू का परिवार था। दाईं ओर नीचे यादव जी का परिवार और उनके ऊपरी हिस्से में भट्टाचार्य जी का परिवार। घर की बाईं ओर एक विशाल मैदान, जहाँ शाम को क्रिकेट और फुटबॉल के अलावा और कई खेल एक साथ खेले जाते थे।

कलकत्ता ही अनुभवों का सूत्रधार रहा, जहाँ स्मृतियों ने जड़ें पकड़ीं और ऐसी पकड़ीं कि मौसमों की तमाम बेरुखियों के बावजूद, उस वृक्ष की टहनियाँ हरी-भरी रहीं और जड़ें शाश्वत। जीवन का बहाव और उसका विस्तार कैसे स्वयं को ढालता जाता है, कालचक्र के सुघड़ हाथों में, इसकी बुनियाद कलकत्ता में ही पड़ी।

संबंधों की विशिष्ट अनुभूति और उनका अमूल्य सान्निध्य कैसे, कब मन-मस्तिष्क पर कौन-कौन से चित्र उकेर देता है, पता नहीं चलता पर कई वर्षों बाद जब समय की प्रत्युत्पादकता, अपने अवशेष तलाशने लगती हैं, कैसे-कैसे रंग-बिरंगे, अनमोल चित्र, स्मृतियाँ परोसती चली जाती हैं। निमंत्रण देते हैं, "आओ, चले आओ, समय की देहरी लाँघ कर, मेरे पास। कुछ अधूरे चित्र पूरे करने हैं, कुछ स्थान जो रंगों से छूट गए, उनमें रंग भरने, आ जाओ"। जीवन की लालसा तो इस पार भी है, उस पार भी है। बीच में बहती नदी से, संबंध और उनकी मूक अभिव्यक्ति हैं। मनुष्य सर्वत्र नहीं हो सकता। इस पार, उस पार या बीच मझधार। इस तरह मनुष्य अपने जीवन का एक तिहाई हिस्सा ही जी

पाता है, बाकी का दो तिहाई, बस उसके जीवन की प्रेरणा बन कर रह जाता है।

पलता-पार्क जहाँ समाप्त होता था, वहाँ एक बड़ा गेट था। गेट की दूसरी तरफ " द पार्क"। "द पार्क" जगह है। वहाँ एक क्लब था, जिसमें नर्सरी और के.जी की कक्षाएँ चलती थीं। वहाँ मेरा दाखिला हुआ था।

आज पहला दिन था। मुझे तैयार कर रिक्शे पर जैसे ही बिठाया गया, वो तूफान मचाया कि पूछो मत। रिक्शे वाले का नाम रामू था। लम्बा-चौड़ा, खिचड़ी दाढ़ी, खड़े-खड़े बाल। उसने मुझे जैसे ही गोद में लिया, हाय-तौबा मचा दी। उसकी कमीज फाड़ डाली। नहीं गया। स्कूल का पहला अनुभव।

पहली बार जब किसी तरह रिक्शे पर लाद-फाँद कर स्कूल ले जाया जा रहा था। रास्ते भर रोता गया। बस अम्मा की सूरत आँखों के सामने घूमती रहती। स्कूल में कहाँ, क्या पढ़ा, कुछ याद नहीं रहता। बस छुट्टी की घंटी बजने का इंतजार रहता। मन ही मन उस टीचर को कोसता जो कक्षा में रहती। "बड़ी महारानी बनी बैठी हैं, ये नहीं हमको जाने दे"। बिल्कुल यही शब्द थे, जो मन में गूँजते रहते । अम्मा से अलग रहना मेरे लिए बहुत मुश्किल था। बड़े होने पर भी ये भावना वैसी ही प्रगाढ़ बनी रही। जब भी अम्मा को छोड़ कर कहीं जाना होता, मन मायूस हो जाता।

पर कुछ चीजें थीं जो मेरे बाल सुलभ मन की सहेलियाँ बन गईं। चलते हुए रिक्शे पर प्लास्टिक की रंग-बिरंगी पानी की बोतलें, जो रिक्शे के हैंडल पर टँगी रहतीं और आपस में टकराकर "ढक-ढक" की ध्वनि उत्पन्न करतीं और चलते रिक्शे के पैडल की खटर-पटर, मन को बहुत संतोष देती। रिक्शा मेरी पसंदीदा सवारी बन गया। पार्क में जगह-जगह एकत्र सूखे पत्तों के ढेर को जलाने पर, उससे उठती महक, शाम की कोठरी से निकलती अल्हड़ हवाओं को सूरज के सिर पर पाँव रख नाचने की उत्तेजना प्रदान करतीं और केंद्रीय

विद्यालय ईशापुर के मोड़ पर खड़ी एक आलीशान तोप मानों ढलते सूरज को निशाने पर लेने को तैयार रहती। हुगली मानो फटकार कर कहती "शांत रहो, कब तक बच्चे बने रहोगे"? किंतु उसी बचपने पर पुलकित हुगली सबको साथ लेकर चलती, कलकल का शोर लिए। "आ जाओ, तुम भी आ जाओ"।

पार्क और पलता-पार्क के बीच का गेट पार करते ही, मन दोनों तरफ की दुकानों में उलझ जाता ।घर आने वाला है, ये सोच कर मन में गुदगुदी होती। क्या, था क्या घर में? सच कहता हूँ, कुछ नहीं, बस अम्मा ।या सच कहूँ, मेरे लिए अम्मा ही घर थीं। जब घर पहुँचता, अम्मा को देखता तो निश्चय कर लेता कि अब तो बिल्कुल ही नहीं जाऊँगा स्कूल, अम्मा को छोड़ कर। स्कूल से फिर कभी कोई लगाव नहीं रहा।

घर के बाईं तरफ जो बड़ा मैदान था, वहाँ अनिल कुमार चंद्रा आते थे, स्कूटर सीखने। पापा की वहीं, उनसे मुलाकात हुई थी। पलता-पार्क वाले मकान में बोस बाबू से हमारी नहीं बन पाई। अम्मा सामने आँगन में कपड़े धोतीं, अंदर जगह की कमी थी। आंगन में पानी फैलता। उस पर बोस बाबू को ऐतराज था। उनको अपनी साइकिल निकालने में तकलीफ होती। आए दिन बड़बड़ाते रहते।

ईशापुर में दो बड़ी फैक्ट्रियाँ थीं। एक "राइफल फैक्ट्री" और दूसरी "मेंटल एण्ड स्टील फैक्ट्री"।

चंद्रा अंकल "मेटल एंड स्टील " फैक्ट्री में फोरमैन के पद पर कार्यरत थे। उन्हें दोमंजिला मकान फैक्ट्री की तरफ से मिला था। उनका परिवार छोटा था। वो पहली मंजिल पर रहते थे। नीचे वाले हिस्से को हमें किराए पर देने को तैयार हो गए। इस तरह हम पलता-पार्क का बड़ा गेट पार कर पार्क आ गए। 77ईस्ट, द पार्क, 24परगना, पश्चिम बंगाल, हमारा नया पता था और अगले दस वर्ष तक सारी चिट्ठियाँ, इसी पते पर आएँगी।

भव्य इमारत थी। चार घर थे। 77 ईस्ट में नीचे हम लोग, ऊपर चंद्रा अंकल का परिवार और 77 वेस्ट में नीचे राजा अंकल और ऊपर कुशवाहा अंकल। दोनों हिस्से में सर्वेंट्स क्वार्टर और बगीचे और बागान के लिए खुली जगह। 77 वेस्ट के गेट की दाहिनी ओर एक बहुत बड़ा और भव्य इमली का पेड़ था। इमारत के सामने एक बड़ा नाला था, जिसके आसपास छोटा-मोटा जंगल था, जिसमें काफी बड़े- बड़े पेड़ थे। उन पेड़ों पर सुबह से शाम तक विभिन्न प्रकार के पक्षियों का बसेरा होता और रात में खौफनाक कहानियों का। कहानियाँ भी उन पक्षियों की तरह ही थीं।पौ फटते ही बसेरे से उड़ जातीं और शाम होते ही लौट आतीं। फर्क इतना था पक्षियों का कलरव दिन में सुनाई देता, कहानियों का रात के सन्नाटों में। फिर एक बड़ी ऊँची दीवार और दीवार के उस पार कंठाधार।

इमारत, अँग्रेजों के समय की थी। बड़े-बड़े, हवादार कमरे। आगे, पीछे बड़े-बड़े आँगन। सामने दाईं ओर लॉन और बाईं ओर बागबानी की खुली जगह, दोनों के बीच से घर से गेट तक की पक्की सड़क। पीछे केले का बगीचा और सर्वेंट्स क्वार्टर। केले के बगीचे और सर्वेंट्स क्वार्टर्स के बीच एक छोटा गेट पीछे की तरफ। घर से सटा बाईं ओर एक नल था जिसका प्रयोग सर्वेंट्स क्वार्टर में रहने वाले करते थे। नल के ऐन सामने एक बड़ा गैराज था, जिसे नौकरों के रहने के लिए हो प्रयोग में लाया जाता। पीछे से ही ऊपर जाती घुमावदार लोहे की सीढ़ियाँ, जिसके पास एक कटहल का पेड़ था, जिस पर काफी बड़े-बड़े कटहल होते। एक सीढ़ी आगे की तरफ से थी जिसका प्रयोग चंद्र अंकल का परिवार निजी तौर पर करता था।

उनके परिवार में, उनकी पत्नी श्रीमती मीरा चंद्रा, एक बेटा अनिमेष चंद्रा (बॉबी) और सबसे छोटी, एक बेटी, पल्लवी चंद्रा (मिली)। पी.के.वी. राजा अंकल अपनी पत्नी और एक बेटी जयश्री के साथ रहते थे। जयश्री दी, पूर्णिमा दी के साथ ही पढ़ती थीं। जबकि कुशवाहा अंकल अपनी पत्नी और तीन बेटियों अर्चना, अपर्णा और अंजना के साथ रहते थे। बाद में उनके भाई का

लड़का अमित भी उनके साथ रहने लगा। कुल मिलाकर उस पूरी इमारत में हमारा परिवार सबसे बड़ा था।

हम सभी केंद्रीय विद्यालय ईशापुर में पढ़ते थे। वरिष्ठ और कनिष्ठ संभाग अलहदा थे। कक्षा १ से ५ तक कनिष्ठ संभाग और कक्षा ६ से १२ तक वरिष्ठ संभाग। दोनों की इमारतें अलग-अलग थीं, करीब एक किलोमीटर की दूरी पर। पहले दोनों संभाग एक ही इमारत में थे किंतु छात्रों की संख्या अत्यधिक होने के कारण दोनों को अलग कर दिया गया। कनिष्ठ संभाग क्लब से थोड़ी दूर पर एक बड़ी इमारत में था, जिसके सामने की तरफ विद्यालय का खेल का मैदान था। एक ही इमारत में सारी कक्षाएँ और कार्यालय थे। वरिष्ठ संभाग इसकी तुलना में अत्यंत विशाल था। विशाल इमारत के आगे और पीछे दोनों तरफ बड़े मैदान थे। पूरा परिसर हुगली नदी के किनारे स्थित था। कँटीले तारों के एक तरफ विद्यालय परिसर और दूसरी तरफ कलकल बहती हुगली। शांत। मानो किसी आश्रम में तपस्या का संकाय हो। कँटीले तारों की दूसरी तरफ हुगली तक पहुँचता सीमेंट का एक ढलुआ सोपान था जिससे कई छात्र, शिक्षकों की नजर बचा कर, नदी तक पहुँच जाते और केकड़े पकड़ लाते। पकड़े जाने पर खूब डाँट पड़ती।

पीछे की तरफ मैदान के अगले सिरे पर विज्ञान की प्रयोगशालाएँ थीं जिनके इर्द-गिर्द इमली और आम के विशालकाय वृक्ष थे। पिछला गेट उन्हीं प्रयोगशालाओं के अंतिम सिरे पर था, जहाँ भोजनावकाश के समय फेरी वाले आकर खड़े होते। एक तो विक्रम था, जो झाल-चने, चिटगुड़, हज़मी, बेर इत्यादि बेचता था और एक, आलू-कटा बेचता था। जिसका आलू-कटा खाने के बाद लोग अलग से उससे इमली का पानी लेकर पीते। सब दस, पंद्रह, पच्चीस और पचास पैसे का कमाल होता। आज भूनी भाँग नहीं मिलती पर जो, तब दस पैसे में मिलता था वो आज दस करोड़ में भी नहीं मिल सकता

और जो दस करोड़ में आज मिलता है, उस समय कोई भूनी भांग देकर भी न लेता।। इसे अर्थशास्त्र कहते हैं।

पूरा विद्यालय भवन, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय, सब अँग्रेजों द्वारा निर्मित इमारतें थीं। पुस्तकालय की फर्श पूरी लकड़ी की थी, माना जाता था वो अँग्रेजों के समय का " बॉल रूम" था। दबी ज़बान में एक रहस्यमयी फाँसीघर, जिसे अँग्रेज स्वाधीनता सेनानियों को फाँसी देने के लिए प्रयोग में लाते थे, की भी चर्चा होती, जिसे पता नहीं किसी ने देखा भी था या नहीं। कहते थे उसमें हमेशा ताला लगा रहता था। विद्यालय की इमारत, दो मंजिला थी और शायद फाँसी घर, उससे भी ऊपर। पता नहीं।

पर कुछ अलौकिक था उस परिसर में।

स्वतंत्रता की बलिवेदी पर दी गई आहुतियों और समिधाओं के कुछ अंश, वहाँ की हवाओं में गतिशील थे। शायद इसीलिए विद्यालय की प्रार्थना सभा से लेकर सांस्कृतिक कार्यक्रमों और वार्षिकोत्सव में राष्ट्रभक्ति कूट-कूट कर भरी रहती।

हुगली की शांत लहरों पर तैरती नावों में माँझी की जीवन-शैली का तारतम्य केंद्रीय विद्यालय, ईशापुर में मौजूद इस देश के लगभग सभी प्रांतों से आए शिक्षकों और छात्रों से बैठ ही जाता था और लहरों के कल-कल निनाद के बीच "तमसोमाज्योतिर्गमय" की प्रार्थना हो या "भारत का स्वर्णिम गौरव केंद्रीय विद्यालय लाएगा" या "ऐ, मालिक, तेरे बंदे हम" सब अपनी सुर-ताल तलाश ही लेते और फिर गगनभेदी तालियों की गड़गड़ाहट से, हुगली शर्म से लाल हो जाती और कहती " ओ, माँ गो"!

एक साथ सैकड़ों बच्चों के सुर, जब राष्ट्रगीत में पिरो उठते तो ऐसा लगता मानो फाँसी घर से भी असंख्य सुर निकल कर साथ दे रहें हों, इस बार "ऐकला चलो रे" नहीं "हम होंगे कामयाब"।

कलकत्ता हमारे साथ और हम कलकत्ता के साथ बड़े होते गए। वहाँ की शैली, वहाँ की भाषा धीरे-धीरे हमारे व्यवहार में उतरती गई। सुनते-समझते बांग्ला भाषा मेरे लिए सहज हो गई और आज भी उसी सहजता से बांग्ला बोल सकता हूँ और थोड़ा बहुत लिख भी सकता हूँ। भाषा की ये सहजता यूँ ही नहीं आई, इसका काफी कुछ श्रेय मेरे बंगाली मित्रों और हमारी संगीत शिक्षिका स्वर्गीय सपना भट्टाचार्य (विवाह उपरांत चौधरी) मैडम को जाता है। संगीत पर उनकी पकड़ अद्भुत थी और सुर और स्वर दोनों में सरस्वती विराजती थीं। गुजराती, पंजाबी, मराठी, तमिल, तेलुगु, हिंदी, बंगाली, मलयालम, ओड़िया, अवधी, भोजपुरी, ऐसी कौन सी भाषा रही होगी जिसके गीत उन्होंने नहीं सिखाए और अलग-अलग सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रस्तुत नहीं करवाए। समूह गान हो, एकल गायन हो, सामूहिक नृत्य हो या एकल नृत्य, सपना मैडम की छाप रहती।

औऽऽर भाई, जब विद्यालय का वार्षिकोत्सव होता तो मानो भारत की सांस्कृतिक छटा की विविधता उसके आँचल में लहर उठती। सरस्वती, ज्योत्सना भरी हुगली के आँचल में लहर उठतीं। साक्षात् स्वर्ग उतर आता, ए. टी. एस. हॉल में। वहीं हमारा वार्षिकोत्सव होता। सारा शहर उमड़ पड़ता। दो, तीन महीने पहले से ही तैयारियाँ शुरू हो जातीं। रोज़ाना, दिन में तीन-चार बार रिहर्सल होता। क्या जोश, क्या जुनून था वो! साहित्यिक -शुचिता का वो सामर्थ्य संभालने की रीढ़, विद्यालय-प्रशासन और उदासीन छात्रों की कुंठाग्रस्त सद्गति की, दुखिया लाश है, जिसके पैरों के अँगूठे में रस्सी बाँध, बुद्धिजीवी और चिंतनशील समाज,खींच कर ले गया और गिद्धो और वायसों के लिए छोड़ आया। अब कहाँ देखने को मिलता है?

पूरा हॉल बेला, गुलाब की महक से आंदोलित रहता। नृत्य, एकांकी, नाटक, गीत, प्रस्तुत करने वालों की वेश-भूषा का विशेष ख्याल रखा जाता ।सारा प्रबंध विद्यालय-प्रशासन की तरफ से ही होता। सबसे रोचक होता पुरस्कार-वितरण समारोह। साल भर के सांस्कृतिक, अकादमिक और क्रीड़ा क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वालों के नाम होता यह दिन। एक-एक कर नाम बुलाए

जाते, कैमरे के चमकते फ्लैश और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच जब छात्र-छात्राएँ अपने पुरस्कार ग्रहण करते, क्या गर्व होता, क्या उत्साह, क्या उमंग और क्या वैभव होता! ''थ्री चियर्स'' और ''हिप हिप हुर्रे'' की गूँज को हुगली स्वयं में तिरोहित कर सुनसान पड़े विद्यालय परिसर के चरण पखारते हुए मानो कहती ''सब तुम्हारा ही है, केन्द्रीय विद्यालय ईशापुर। इट्स आल योर्स ।सौब तोमार''।

फिर वो रक्षित मैडम के आँग्ल भाषा के ''जूलियस सीजर'' सरीखे नाटक हों या पापा द्वारा करवाए गए ''राखी का मूल्य'' ''दीपदान'' और'' काबुलीवाला'' सरीखे हिंदी के नाटक। अनंदिया, विजय साव, बृज, ममता अवस्थी, सीमा सिंह, अदिती पाल और विदिशा बरुआ का अभिनय पूरे परिसर को सम्मोहित कर लेता। शिलाज़ चक्रवर्ती का ''मेरा जूता है जापानी'' हो या सपना मैडम द्वारा संचालित ''महिषासुर मर्दिनी'' में रीना दीदी और बृज भैया का सामंजस्य या ''सोहाग चाँद बोदीनी '' पर झूमता समस्त हॉल, इंद्र को अपनी सभाओं पर अवश्य लज्जित कर देता होगा।

पूरे वार्षिकोत्सव के संचालन की जिम्मेदारी प्रारंभ से अंत तक, पी. जी. टी. हिंदी श्री राम आसरे सिंह की होती।

सपना मैडम अब नहीं रहीं। और भी कई शिक्षक डी.के.मुखर्जी, रेवा बसु (प्राचार्या), राम लखन यादव, माया चटर्जी आज नहीं हैं। विद्यालय का का पुराना भवन भी तोड़ कर नए का निर्माण हो गया। उसके साथ ही हजारों छात्र-छात्राओं, शिक्षक -शिक्षिकाओं के सुख-दुःख, हास-परिहास के सूक्ष्म तंतु से निर्मित एक युग का अवसान हो गया।हुगली अपनी थाती छाती से लगाए अब भी बहती है । इस बार ''ऐकला चौलो रे''।

अम्मा कैसे कर लेती थीं सब?असंभव को संभव बना देती थीं! अम्मा, पापा, रजनीश भइया, पूर्णिमा दीदी, सुधा दीदी, मैं, प्रतिभा और सुमन।८ लोगों का

परिवार, जिसमें सात लोगों को सुबह- सुबह विद्यालय जाना पड़ता था। घर के सारे कामों के लिए पूरी तरह सब के सब अम्मा पर निर्भर। कोई नौकर-चाकर नहीं। सुबह चार बजे उठ जाते थे, पापा और अम्मा दोनों। पापा दूध लेने चले जाते और अम्मा घर के कामों में व्यस्त हो जाती। पापा सबको पढ़ने के लिए जगा देते। लेकिन जैसे ही पापा जाते, जो जहाँ बैठा रहता, वहीं बैठे-बैठे सो जाता। जब पापा के आने का समय होने वाला होता, अम्मा सबको एक आवाज दे देतीं। कभी-कभी हम सोते ही रह जाते, तब सुबह-सुबह डाँट पड़ती।

वहाँ की जलवायु बेहतरीन थी। गर्मियों में नाम मात्र की गर्मी और सर्दियों में नाम मात्र की सर्दी। अलसाई सुबह अंगीठी में जलते कोयलों की महक में लिपटी होती। बचपन से यही सुगंध मेरे लिए सब सुगंधों से सर्वोपरि थी। अजीब सा नशा होता है इसमें। इतना इत्मीनान और सुकून किसी और महक में कभी नहीं मिला। और फिर जलते कोयलों की महक, मेरी रचनाओं का अविभाज्य अंग बन गई। ठेठ देसीपन है, इसमें। अम्मा की महक है इसमें।कभी-कभी छुट्टियों में जब सो कर उठता, घर की साफ-सफाई हो चुकी होती, अम्मा नहा चुकी होतीं। केश धुले और खुले होते और अँगीठी अपने तप्त यौवन की सोंधी महक से चाय को खौला रही होती। उसकी खुश्बू समय से कहती “कभी तो पास बैठो। इत्मीनान का एक साँस तो लेकर देखो”। संतुष्टि का, इससे प्रगाढ़ भाव, कभी और नहीं महसूस किया। अँगीठियों ने कई रूप बदले तो चाय ने भी उदासी के ऐसे परिधान डाल लिए कि वो खुश्बू सदैव के लिए विलुप्त हो गई और क्रोधित समय ने फिर कभी इत्मीनान का कोई साँस न लिया।

आठ बजे सुबह तक हमें किताबों के सामने बैठना पड़ता। जैसे ही पापा रेडियो पर आठ बजे का समाचार चलाते, बस इतना कहते “जाओ”। फिर विद्यालय जाने की तैयारियाँ शुरू होती। “अम्मा, हमारा ये कहाँ है, अम्मा हमारा वो कहाँ है”? “ अम्मा, अम्मा” की पुकार मच जाती। अम्मा सबके नहाने की व्यवस्था करें, अम्मा सबको विद्यालय के परिधान दें, अम्मा सबको खाना दें।अम्मा को

कभी भी झुंझलाते या आपा खोते नहीं देखा।बड़े संयम से सबकी बात सुनती और सबका काम करतीं।

सुबह नाश्ते में रोटी-सब्जी या पराठा सब्जी खा कर सब जाते और भोजनावकाश में फिर घर आकर खाना खाते। जिनका घर पास में था, वे सब भोजनावकाश में घर जाकर खाना खाते। शिक्षक भी होते और छात्र भी।तब विद्यालयों ने इतनी सहूलियत दे रखी थीं। हमारे जाने के बाद अम्मा पूरा घर का काम निबटातीं। सब अस्त-व्यस्त रहता, उसको करीने से रखतीं। झाड़ू-पोंछा करतीं। लोहे की बड़ी-बड़ी बाल्टियाँ भर-भर कपड़े रहते उन्हें धोतीं, सारे जूठे बर्तन साफ करतीं फिर नहा कर, पूजा कर, दोपहर का खाना हमारे आने से पहले तैयार कर लेतीं।

घर पहुँचने से पहले जो आखिरी मोड़ था, वहाँ से अम्मा के खाने की सुगंध पहचान लेता था, मैं। खासकर अम्मा, जो घी, घर में निकालतीं उससे छौंकी दाल की महक वहाँ तक आती और भूख बढ़ जाती। शाम को घर लौटता तो फिर अम्मा के हाथ से ही खाता। प्रतिभा भी साथ में बैठ जाती, तो मुझे गुस्सा आता। मैं अम्मा से कहता "ये मेरे आने से पहले क्यों नहीं खा लेती"? अम्मा प्यार से कहती "तुम्हारी छोटी बहन है।ऐसा क्यों कहते हो? तुम्हारा इंतजार करती है कि तुम्हारे साथ ही खाएगी"। उस समय इन छोटी-छोटी बातों की अहमियत क्या समझता ? पर आज ये छोटी-छोटी बातें क्या मायने रखतीं हैं, बिखरते परिवारों से पूछिए।

खाने-पीने के बाद हमारा अपना समय होता, जो चाहे करें, जब तक पापा घर न लौटते। कभी बाहर मैदान में तो कभी लॉन में हम सब बच्चे, जिसमें बॉबी, मिली, अपर्णा, अंजू, प्रतिभा और सुधा दी के अलावा कुछ सर्वेंट्स क्वार्टर के बच्चे भी होते। दीदी का अपना अलग गुट होता, अर्चना दी या जयश्री दी के साथ। क्रिकेट खेलते समय कभी-कभी पापा या चंद्रा अंकल या कभी-कभी दोनों शामिल हो जाते। राजा अंकल बैडमिंटन अच्छा खेलते थे। उनके साथ हम बैडमिंटन खेलते। आपस में हम बच्चे कभी खो-खो, कभी कबड्डी, कभी

विष-अमृत, कभी हरा-समंदर, कभी पिट्ठू, जैसे अनगिनत खेल खेलते। इनमें से कई देसी खेल तो विलुप्त हो चुके हैं या विलुप्तप्राय हैं। कभी-कभी विद्यालय से आपस में अदला-बदली कर के लाई गई कहानी की किताबों में खोए रहते।

इंद्रजाल कॉमिक्स, डायमंड कॉमिक्स, अमर-चित्र-कथा, पॉकेटबुक्स, नंदन, चंदामामा, टिंकल, चंपक, पराग, लोटपोट और भी न जाने कितनी पत्रिकाओं के दीवाने थे। शनिवार को पापा भी विद्यालय के पुस्तकालय से "धर्मयुग", "द इलस्ट्रेटेड वीकली", "सरिता", "कादम्बिनी" या कोई साहित्यिक उपन्यास अवश्य लाते। कॉमिक्स वगैरह के लिए बहुत मिन्नतें करनी पड़तीं। पर जब नई किताब मिलती तो उसके रंग-रोगन और महक की उत्तेजना, बिना पंख आसमानों में उड़ा ले जाती। हमारे घर में, बस मैं और दीदी इनके शौकीन थे। पापा से बहुत डाँट खाई, इन सब के लिए। छिप कर पढ़ते। पूरी चादर ओढ़, चादर के नीचे कहानियों की किताब पढ़ते। आज की पत्रिकाओं और कहानियों में केवल कचूमर भरा है। पता नहीं कब, किसने इन्हें मार-मार कर अधमरा कर दिया।

भइया बहुत शांत रहते। ज्यादातर वो अपनी पढ़ाई में ही लगे रहते। कभी-कभी जब क्रिकेट मैच की कमेंट्री, रेडियो पर आती और पापा घर पर न होते तो हम दोनों रेडियो और गेट, दोनों पर कान लगाए रहते। सुशील दोषी की कमेंट्री के कायल थे भइया, उनकी नकल भी उतारते । क्रिकेट से परिचय भइया ने ही करवाया। कमेंट्री सुनते जाते और मुझे बताते जाते, कैसे क्या होता है? कौन खिलाड़ी बेहतरीन बल्लेबाज है और कौन घातक गेंदबाज, ये सब बताते।

पापा नहीं रहते तो सामने आँगन में या कभी-कभी घर के अंदर ही, किनारे हम क्रिकेट खेलते। बैट पकड़ना, गेंद फेंकना सब उन्होंने ही सिखाया। गुंडप्पा विश्वनाथ के स्क्वायर कट के बारे में वो अक्सर बताते और गावस्कर की बैटिंग के वक्त सिकंदर बख्त और इमरान खान या मैलकम मार्शल की बाउंसर से डराते।

भइया ज्यादातर अपनी पढ़ाई में व्यस्त रहते। कभी-कभी राशन या सब्जी लेने जाना होता, उन्हें। क्लब भी, वो हमारे साथ बहुत कम जाते। उनके बस एक मित्र, तरुण खन्ना, उनसे मिलने घर पर आते तो उनसे काफी देर बातचीत करते।

एक बार भइया को दोस्तों के साथ "दोस्ताना" फिल्म देखने जाना था। अम्मा से पैसे माँगे तो अम्मा के पास सौ का नोट था। उस समय सौ ₹ बड़ी रकम होती थी। भैया ने कहा, इतने की जरूरत नहीं है। अम्मा बोलीं कि कहीं से सौ का नोट तुड़वा लें। भइया ने आस-पास कोशिश की, फुटकर नहीं हुआ ।भइया नहीं गए, हालाँकि अम्मा ने कहा "चले जाओ, बाकी पैसे वापस आने पर लौटा देना"। लेकिन भइया नहीं गए। भइया को भी फिल्मों का शौक था।अमिताभ बच्चन के कतई फैन थे, भइया। "शोले" और "मुकद्दर का सिकंदर" के डायलॉग सुनाते मुझे।कुछ दिन तक अमिताभ बच्चन की हेयर स्टाइल की नकल की भइया ने। नाखून भी बड़े रखें। लेकिन हमारे पापा का आतंक रहता था। ज्यादा दिन नहीं चल पाता था ।

हम चिड़िया के बच्चों से, अपने घोंसले को ही संसार मानते।

जो था, जितना था, अम्मा ने सबको उसमें प्रसन्न रखने का प्रयास किया, पर कभी भी अपने लिए किसी भी वस्तु की माँग नहीं की। घर में कोई नौकर-चाकर नहीं था, गैस नहीं थी, प्रेशर कुकर भी नहीं था यहाँ तक कि बाहर जाने के लिए अम्मा के पास मात्र दो साड़ियाँ थीं, एक हल्की नीली और एक हरी, बस। अम्मा बाहर जाते समय, अक्सर, वही हल्की नीली साड़ी पहनतीं। दूध लेने जाना हो, सब्जी लेने जाना हो, किसी के यहाँ जाना हो। आसमानी फितरत, आसमानी कपड़े, आसमानी रूह।

पापा को गाँव का मकान पूरा करने की धुन थी। हर महीने, गाँव पैसे जरूर भेजते। बाबू की चिट्ठी आती तो उसमें पूरा हिसाब होता, यहाँ तक कि बाजार से आई सब्जियों का भी ।तीनों भाइयों में अनंत स्नेह था। इतना दीगर स्नेह कि

जब भी तीनों एक साथ होते बहस, बहस और सिर्फ बहस। किंतु तीनों में से कोई भी किसी और के मुँह से एक दूसरे की आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकता। चाचा की ईमानदारी की वजह से कई बार उनके शीर्षस्थ अधिकारी उनकी तनख्वाह रुकवा देते। तब पापा उनकी मदद के लिए पैसे अवश्य भेजते।

चंद्रा आंटी के दबाव में, पहले अम्मा ने, दीपू को फिर मेनका को झाड़ू-पोंछे और बर्तन के लिए रखा। चन्द्रा आंटी, अम्मा का बहुत ख्याल रखतीं थीं।

हम शुरू से ही अम्मा को अम्मा कहते आए थे। थोड़े समझदार हुए तो आसपास, खासकर, कलकत्ता जैसे शहर में ये संबोधन नहीं सुनाई पड़ता था। अधिकांशतः "मम्मी" और बंगाली परिवारों में "माँ" का संबोधन ही सुनाई देता। हमारे पहचान के जितने भी परिवार थे, उनमें केवल हम"अम्मा" संबोधन का प्रयोग करते थे। कभी-कभी असहज हो जाते, शंका होती कि कहीं ये गँवारू संस्कृति का परिचायक तो नहीं है?

पर जैसे-जैसे बड़े होते गए, समझ और संस्कृति के नए रोशनदान खुलते गए, शब्द में निहित ममत्व और अधिकार से परिचय, हमें और सहज बना गया। अम्मा, अम्मा ही रहीं मम्मी न हो सकीं।

अम्मा पाक-कला में विशिष्ट रूप से पारंगत थीं।नहीं, केवल विशेष पकवानों में ही नहीं, उनके हाथ की साधारण सी रोटी भी विशेष स्वाद लिए होती। यहाँ अम्मा नीचे रोटियाँ बनाना शुरू करतीं, वहाँ ऊपर चंद्रा अंकल को पता चल जाता और वो आंटी से कहते, "भाभी जी रोटियाँ बना रहीं हैं"। बिल्कुल साधारण स्तर का भोजन जिसे आप गरीबों का भोजन भी मान सकते हैं, अम्मा के हाथों का अमृत पाकर छप्पन व्यंजनों से श्रेष्ठ था, हमारे लिए। मिसाल के तौर पर सरसों के तेल और नमक में या चीनी और घी में मसली हुई बासी रोटी के लड्डू हम सब के लिए विशेष आकर्षण-बिंदु होते। कभी-कभी नून-तेल-भात, कभी घी-नमक-चावल, कभी मट्ठे में पके चावल, ये सब इतने स्वादिष्ट

होते थे कि आज बड़े-बड़े होटलों में मिलने वाले भारी-भरकम पकवानों पर भारी पड़ें।

अम्मा जब घी निकालतीं "करवनी" के लिए युद्ध छिड़ जाता। युद्ध का नियम था, जिसने पहले बोल दिया, करवनी उसकी, फिर उसकी इच्छा, वो किसके साथ उसे बाँटे या न बाँटे।

अम्मा के हाथ की बनी कढ़ी वाकई लाजवाब होती। भइया को वो बहुत पसंद आती। बाद में जब भइया, गाँव में रहने लगे और हमारा जब जाना होता तो, अम्मा से कढ़ी की फरमाइश अवश्य करते। अम्मा ने इडली, दोसा वगैरह बनाना चंद्रा आंटी से ही सीखा मगर जब अम्मा दोसा बनाने लगीं तो बॉबी, मिली को अम्मा के हाथों का दोसा और सांभर ज्यादा पसंद आता, इसलिए अम्मा जब भी दोसा बनातीं बॉबी, मिली को अवश्य बुलातीं।

गर्मी की छुट्टियों में हम उतुरी अवश्य जाते। वार्षिक परीक्षाएँ खत्म होते ही पापा सीटें आरक्षित करा लेते। "हम खिड़की के पास बैठेंगे", जैसे ही पापा सफर की तिथि बताते, ये बोलने की होड़ लग जाती। जो पहले बोल देता, खिड़की के बगल वाली सीटें उसकी हो जातीं। अम्मा को गवाह बनाया जाता ।"देखो, अम्मा, हम पहले बोले हैं, ध्यान रखना"। एल. टी.सी पर भी हम कहीं घूमने जाते तो पापा इस बात का ध्यान रखते कि मार्ग में उतुरी का आविर्भाव अवश्य हो। यात्रा के दौरान रेलवे की समय- सारिणी सदैव पापा के पास रहती। किस रूट से, कितनी ब्रेक जर्नी कर हम अपने गंतव्य तक पहुँच सकेंगे, हिसाब बिठा कर रखते। कभी-कभी तो हम में से किसी को भी होश नहीं रहता कि किस रास्ते, कहाँ पहुँच गए। बस, खुद को पापा के हवाले किए रहते, " ले चलो, जहाँ ले चलना हो"। पर पापा सिद्धहस्त थे। ट्रक हो, बस हो, ट्राम हो, ट्रेन हो, नाव हो, इक्का हो, ताँगा हो, पापा ने कहा "चढ़ो" तो चढ़ना है। भीड़-भाड़, आँधी- पानी, लू, शीत-लहर कोई मायने नहीं रखते थे।

जिस दिन जाना होता, उसके पहले दिन से सामान बाँधना शुरू हो जाता। सामान बाँधना ही इतना रोमांचकारी होता था।अटैची और होल्ड-ऑल जादुई चिराग से लगते। उनके दर्शन मात्र से ही हम रात्रि -कालीन पर उड़ते अलादीन हो जाते। हट्! नींद कहाँ आती थी?उस साधारण सी यात्रा में एक सुकून भरा ठहराव था इसलिए स्मृतियों ने वहीं पैर पसार रखें हैं।आगे नहीं बढ़ पातीं। कहतीं हैं "तुम्हें जहाँ जाना हो जाओ हम तो यहीं अप-डाउन करेंगे"। कितनी गुदगुदी होती थी, क्या बताएँ? ट्रेन का सफर किसी रोमांच से कम नहीं था हमारे लिए, जो कि अम्मा के हाथों की नेमतें और बढ़ा देती। पूरी और आलू-टमाटर की सूखी, लटपटी सब्ज़ी, आम का अचार या भरा-मिर्च, मठरी, ठेकुआ वगैरह, वगैरह।

बक्सा, अटैची, बैग, पानी वगैरह लेकर रिक्शे पर लद कर हम घाट तक आते।

वहाँ से नाव, स्टीमर या लॉन्च से हुगली पार करनी पड़ती। सफर का ये हिस्सा मेरे प्राण सुखा देता। नाव पर बैठते ही कलेजा मुँह को आ जाता। नाव जरा सा भी ऊपर-नीचे क्या होती मेरा चीखना-चिल्लाना शुरू हो जाता। जब तक नाव उस पार नहीं पहुँचती, साँसें अटकी रहतीं। कई बार पापा से कहा कि हम लोग रिक्शे से ही क्यों नहीं चलते स्टेशन तक? पापा हँस देते, जबकि मेरा बस चलता तो उतुरी तक रिक्शे से ही जाता। सबसे सुरक्षित। कोई भीड़-भाड़ नहीं, कोई जोखिम नहीं। पापा समझते ही नहीं थे।

ट्रेन, हम सियालदाह या हावड़ा या श्रीरामपुर से पकड़ते। हावड़ा का पानी बेहद खारा किस्म का होता। वो पानी बिल्कुल पिया नहीं जाता था। स्टेशन पहुँचते ही पेट में गुड़गुड़ शुरू हो जाती। स्टेशन की भीड़ देख कर लगता, चढ़ भी पाएँगे या नहीं ? एक बार भीड़ भरी ट्राम में चढ़ने के प्रयास में दीदी इतनी तेज चिल्लाने लगीं, सब घबरा गए। कोई नहीं चढ़ा। कभी-कभी सब पर क्रोध भी आता कि सबको जाने के लिए आज ही का दिन मिला था, क्या? भीड़ में सदैव मैं असहज रहता हूँ। जब गाड़ियों की छत पर सवार यात्रियों को देखता साँसें फूल जातीं। उन दिनों बिहार से जब ट्रेन गुजरती आरक्षित डिब्बों की

खिड़कियों को लोग बंद करने लगते।लोग जबरदस्ती अंदर घुस कर सीटों पर काबिज हो जाते। फर्स्ट क्लास हो या द्वितीय श्रेणी का आरक्षित कूपा, जब तक बिहार से ट्रेन निकल न जाती लोग आशंकित रहते।

दीदी हमारी लीडर होतीं। उनकी बहादुरी पर हम सबको भरोसा था। बक्से को कौन- कौन पकड़ेगा, कौन सी अटैची, कौन सा बैग किसकी जिम्मेदारी है तय कर देतीं। पहले कौन चढ़ेगा, फिर कौन चढ़ेगा सब दीदी तय कर देतीं। हम सब उनके निर्देशों का अक्षरशः पालन करते।

ट्रेन के आते ही हाथ-पैर फूल जाते। इतनी भीड़? उफ्फ! जब तक अपनी आरक्षित सीट पर बैठ न जाते, आशंकाएँ बनी रहतीं। पापा से बहुत डर लगता। कभी-कभी आरक्षित कूपे में भी लोग जबरदस्ती घुस जाते और बैठ जाते, कहते आरक्षण रात ९ बजे से सुबह ६ बजे तक के लिए ही होता है।कई बार सीटों को लेकर पापा की लोगों से तू-तू, मैं-मैं, होती। तब मुझे लगता, रिक्शे का चुनाव गलत नहीं है पर पापा क्यों नहीं मेरी बात सुनते?

अम्मा को, पहले, किसी भी तरह के सफर में चक्कर आता था।तब अम्मा शारीरिक रूप से काफी कमजोर थीं। बर्थ पर पहुँचते ही अम्मा लेट जातीं। अम्मा का सफर ज्यादातर लेटे-लेटे ही कटता।

ट्रेन चलने के उपरांत हमारी नजरें बाहर होतीं या फिर अलग-अलग सामान लेकर बेचने आने वाले वेंडरों पर रहतीं। कभी नजर उनपर तो कभी पापा पर। बड़ी उम्मीद भरी निगाहें होती, यदि वस्तु हमारी पसंद की होती।जब पापा से उम्मीद टूट जाती तो अम्मा को कोंचते।

बाहर तेजी से दौड़ते पेड़ और बिजली के खंभों के बीच, बिजली के तारों का झटके से ऊपर-नीचे होना कौतूहल का विषय होता, भौतिकी के सिद्धांत कहाँ हमारी समझदानी में समाते? कच्चे घरों के झुरमुट और इधर-उधर चरते जानवर देख कर लगता, बस, अपने गाँव पहुँचने ही वाले हैं।

जब कोई जंक्शन आने वाला होता तो मन प्रफ्फुलित रहता। खासकर मुगल-सराय।नाम में ही विलक्षण वैभव था।हमारे मार्ग में आने वाला सबसे आलीशान स्टेशन। सोते रहते तब भी मुगल-सराय के नाम से उठ बैठते। काफी चमक-दमक रहती। अच्छी-अच्छी चीजें मिलती। मेरा ध्यान, बस, बुक-स्टॉल पर रहता। बड़ी ही आशा भरी नज़रों से रंग-बिरंगी कॉमिक्स और अमर-चित्र-कथाओं को देखता। जी में आता, सब खरीद लूँ। बहुत चिरौरी करनी पड़ती, डाँट सुननी पड़ती तब जाकर, यदा-कदा कोई कॉमिक्स या अमर-चित्र-कथा खरीद पाता। कितने जतन से उन्हें संभाल कर रखता। कहीं कोई पन्ना, जरा सा भी मुड़ने न पाता।बड़े शौक से अपने खजाने के एक-एक मोती संजोता।

खाना खाने का समय सबसे अच्छा रहता। अम्मा अपने हाथ से सबको निकाल-निकाल देतीं। अम्मा को चक्कर आता था इसलिए बहुत जोर-जबरदस्ती करने पर ही थोड़ा सा ख़ातीं।

बनारस में ट्रेन रात में पहुँचती। चाचा वहीं रहते था। वो जरूर मिलने आते। ट्रेन जैसे ही वाराणसी में रूकती, सब खिड़की से उन्हें ढूँढ़ते और वो नजर आते, हाथों में आम का पैकेट उठाए, हमारे कूपे की तरफ बढ़ते हुए। कभी खाली हाथ नहीं आते थे। हम सब बच्चे उनके पैर छूते और वो पापा और अम्मा के । जब तक ट्रेन रुकी रहती पापा और चाचा आपस में बातें करते ।ट्रेन की सीटी बजते ही पैर छूने का सिलसिला फिर शुरू हो जाता और फिर चाचा उतर जाते। जब तक ट्रेन चली न जाती चाचा वहीं खड़े रहते।

कुल्हड़ की चाय और दोने में गर्म समोसे ट्रेन के सफर का अभिन्न अंग होते। झिलमिलाते शहरों की तरफ लपकती सीटी बजाती रेलगाड़ी टिमटिमाती ढ़िबरियों में शांतिपाठ में लीन गाँवों से जब गुजरती तो समझ नहीं आता आता था कि हमें कहाँ से कहाँ की तरफ जाना चाहिए? चाय के कुल्हड़ और समोसों के दोनों में क्या ये रास्ता दृष्टिगत होता था? शायद था, अब नहीं है। पता नहीं ,चलती गाड़ी से, कब उतर गए, दोनों?

६. सुल्तानपुर(उतुरी)

करीब दूसरी सुबह ८-१० बजे हमारी ट्रेन सुल्तानपुर पहुँचती। कोई हमसे पूछता कि हम कहाँ के रहने वाले हैं, सुल्तानपुर बताने पर सामने वाले के चेहरे पर के रिक्त भाव कभी-कभी हमें ही रिक्त कर देते। छोटा शहर, मगर ऐतिहासिक, आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण। महर्षि दुर्वासा, वाल्मीकि और वशिष्ठ की तपोभूमि रही है, सुल्तानपुर।

ह्वेनसांग ने, अपनी यात्रा विवरण में, यहाँ पर गौतम बुद्ध के छह महीने के प्रवास के दौरान दी गई दीक्षाओं का उल्लेख किया है। सुल्तानपुर के उत्तर-पश्चिम में ८ किलोमीटर दूर महमूदपुर गाँव में बौद्ध अवशेष हैं। सम्राट अशोक द्वारा निर्मित स्तूप का विवरण भी है। उस समय इसका नाम केशीपुत्र था। उस समय कौशल का राजा प्रसेनजीत था, जब बुद्ध का यहाँ आगमन हुआ था। मान्यता है कि भदैया और बूधापुर जैसे ग्रामों का नाम बुद्धयान का अपभ्रंश स्वरूप ही है।

इसका प्राचीन नाम कुशभवनपुर भी है। राजा राम के कनिष्ठ पुत्र ने इस नगर की स्थापना की थी। यहाँ का कुश कसा से बना बाध काफी प्रचलित है, जिसके नाम पर यहाँ बाध-मंडी भी है।

१२०० ईसवी तक, यहाँ भरों का राज्य था, तत्पश्चात मुहम्मद गौरी की सेना द्वारा इन्हें परास्त कर, इसे उन राजपूतों के सुपुर्द कर दिया गया जो भाला चलाने में अत्यंत निपुण थे। उन्हें भालेसुल्तान कहा जाता था। मान्यता ये भी है कि उन्हीं के नाम पर इसका नाम बदल कर सुल्तानपुर कर दिया गया।

एक अन्य मान्यता के अनुसार, इसका नाम अलाउद्दीन खिलजी द्वारा सुल्तान की उपाधि ग्रहण करने के उपरांत बदल कर, सुल्तानपुर किया गया क्योंकि तब यहाँ खिलजी के प्रतिनिधि का शासन था।

सुल्तानपुर भूमि पर मुख्यतः राजपूतों का अधिग्रहण रहा है, जिनमें मुख्यतः राजकुमार, बजगौती और रजवार रहे हैं। सबसे अधिक संपत्ति वाले राजपूत, भालेसुल्तान माने जाते हैं। इसके अलावा कान्हपुरिया और बैस राजपूत थे। भाले सुल्तान इसौली, जगदीशपुर और मुसाफिरखाना परगनाओं में रहते थे, जबकि कान्हपुरिया गौराजामो तक सीमित थे। बैस राजपूत छोटे-छोटे समूहों में बिखरे थे। जमीन मालिकों का एक महत्वपूर्ण घराना राज शाह का था। जिसमें हरकरण देव, जीत नारायण और जियो नारायण प्रमुख थे।

जियोनारायण के चौथे वंशज ने गोमती पार, राजकुमारों की छः कॉलोनियों में से पहली का नेतृत्व किया और गोमती किनारे, डेरा में बस गए जो बाद में बजगौतियों की प्रमुख शाखाओं में से एक बना।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में, राजा माधो सिंह जोकि जियोनारायण सिंह के ग्यारहवें वंशज थे, उन्होंने १०१ गाँवों वाली इस जागीर को अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़ाया। १८२३ में उनकी मृत्यु के उपरांत उनकी पत्नी दरियाओ कुंवर ने बड़ी कुशलता से इसका संचालन किया।

उनके नाम पर सुल्तानपुर में दरियापुर है। किंतु वंशानुगत परंपरा का समापन होने पर निजाम मान सिंह ने पूरा हिस्सा, पृथ्वीराज चौहान के भाई, चाहिर देव के बड़े बेटे रुस्तम शाह को सौंप दिया, जिसे दरियाओ कुंवर किंचित भी पसंद नहीं करतीं थीं। रुस्तम शाह को, अंग्रेजों की शरण में आने के बाद ३३६ गाँवों के डेरा का ताल्लुकदार बनाया गया। उन्होंने १८५७ विद्रोह के दौरान ब्रितानी हुकूमत को उत्कृष्ट सेवाएँ दीं। उन्हीं के छोटे भाई बरियार शाह को भी उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए बरौंसा और अल्देमऊ के २० गाँव और तीन पट्टियाँ प्रदान की गई। इसी क्षेत्र को “दामोदरा” या “सुल्तानपुर” कहा जाता है।

सुल्तानपुर स्टेशन से बाधमंडी तक ताँगे या रिक्शे से आते। बाधमंडी में पापा, फल और मिठाई खरीदते।

उन दिनों फलों की खुशबू से फलों की दुकानें लथपथ रहतीं मगर वो इतनी चमक-दमक वाली न होतीं, जितनी आज कल की फलों की दुकानें हैं।फल होते हैं, फलीभूत नहीं होते । वही हाल मिठाइयों का था। दुकानें, छोटी और साधारण होती मगर केवड़े की सुगंध और मिठाइयों से उठती सोंधी महक से लरजती रहतीं । आज बड़ी से बड़ी मिठाई की दुकानों पर विदेशी नक्काशी है मगर वो देसी महक मयस्सर नहीं। अलग-अलग डिज़ाइन की कुर्सी-मेज़ और साज-सज्जा से मिठाइयों के पाप ढँक दिए जाते हैं। बाधमंडी भी फलों की महक से बँधी होती। खरबूजे और आमों की महक से सड़क पटी पड़ी रहती। वहाँ अक्सर हमारे गाँव के रिक्शे वाले या इक्के वाले मिल जाते। उन्हीं पर सवार हो हम उतुरी के लिए निकल पड़ते। यात्रा का ये हिस्सा सबसे मनभावन होता।

पयागीपुर पार करते ही ग्राम्यदेवी लहलहा उठतीं। सड़क के दोनों ओर हरे-भरे खेत या आमों से लदे-फदे आम के विस्तृत बगीचे। प्रकृति अपने खजाने के नायाब मोती बिखेरे रहती। हरे-भरे चरागाहों में मुस्टंडे वृक्ष सुरक्षा में तैनात। गायों के झुण्ड में उछलते- कूदते बछड़े मानों हमारे आने की खबर देने दौड़े जा रहे हों। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था जो गोवत्स की ऊर्जा और हरीतिका के श्यामल और स्नेहिल आँचल से अछूता हो। कोयलों की लचीली तान और अनगिनत खगवृंदों का कलरव, जिनमें से कई अब विलुप्त हो चुके हैं, मानों कहता हो ''अच्छा हुआ आ गए, पता नहीं हम कब तक बचे रहें''।

गर्मियों में भी उस हरियाली की शीतलता मानो मुँह फ़ुला कर कहती''इतने दिन बाद आए हो। जाओ, हम नहीं बोलते''।

अहिमाने आते ही लगता गाँव के बस करीब ही पहुँच गए हैं। एक नितांत सरल, गुदगुदी, गुदगुदा जाती।

अहिमाने से एक-डेढ़ किलोमीटर पर महाराणा प्रताप स्कूल है, जहाँ से बाईं ओर की सड़क हमारे गाँव तक जाती।सड़क कच्ची रहती पर अच्छी रहती,

अपनी रहती, शांत और सौम्य रहती ।मानव विकास की गोंची हुई गाथाओं की अश्लील कथाओं से अछूती। बड़की अम्मा के किस्सों सी नर्म और मुलायम।

कारी सेमिया पार करते ही, हमारा गाँव।उतुरी। गाँव का पहला घर, सड़क के बाईं ओर, दर्जी से सटा, हमारा घर। बिल्कुल खुले आसमान सा। कभी ताला-चाबी का प्रयोग, देखा नहीं वहाँ। अब होने लगा है।

बड़की अम्मा मुस्कराते हुए, सिर पर आँचल डाले, लोटे में पानी लेकर बाहर आतीं। मुस्कान चेहरे पर नहीं समा पाती, सुनहरी धूप बन बिखर उठती है। नहीं, बिना धार उतरवाए अंदर नहीं जा सकते। एक तरह की शुद्धिकरण प्रक्रिया थी। शहर एक पिशाच सा है। सबको खा जाता है। एक-एक कर गाँवों को भी खा जाएगा। उसकी छाया से बचा कर रखने का प्रयास था। असफल रहा।

धार देने के बाद ही, अम्मा, सिर पर आँचल डाल, साड़ी का एक कोना दोनों हाथों में पकड़, बड़की अम्मा के पैर छूती। यही तरीका था, अब घुटना छूने में कमर टेढ़ी हो जाती है, पैर तक पहुँचते-पहुँचते आदमी लेट ही जाए। बड़की माई कभी रहतीं, कभी नहीं रहतीं। यदि वो रहतीं तो, उनका भी चरण-स्पर्श ऐसे ही होता था। हम सब भी, घर के सभी बड़ों के पैर छूते। पापा को, कभी किसी के पैर नहीं छूते देखा। बाबू से भी, वो बस "जय राम जी की" ही करते। चाचा सबके पैर छूते थे।

अम्मा और बहने अंदर चली जातीं, पापा बाहर आँगन में बाबू के साथ। कमीज उतार कर, कमर पर हाथ रख, इधर-उधर घूमते और प्रश्नों की झड़ी लगा देते। खेत, खलिहान, बाग, बगीचा, कुँआ, ट्यूबवेल, कुछ नहीं छोड़ते। गाँव में कौन कहाँ, क्या कर रहा है, किसका विवाह किसके साथ हुआ या होने वाला है, सब जानना रहता उन्हें।पानी पीने के लिए गुड़-चबैना आता। साथ में लहसुन -मिर्च की चटनी या भरा मिर्चा, कभी-कभी मिठाई भी आती। न, चाय वगैरह

का रिवाज बहुत ही बाद में आया, बहुत बाद में, जब गाँव शहर की देहरी लाँघ गया।

इस दौरान घर के किसी सगे-संबंधी की मृत्यु हुई होती तो उसका शोक भी, औरतें, थोड़ी देर, एक दूसरे को गले लगा कर, रोते हुए मनातीं। पापा को रोना-धोना बिल्कुल पसंद नहीं था।" ये क्या है"? तुरंत टोक देते। खौफ रहता था, पापा का।

उस समय उतुरी, उतुरी था। बड़ा सा दरजी, लबालब भरा रहता, गर्मियों में भी। चारों तरफ डार्विन के सिद्धांत को सत्यापित करते बेहया के अनगिनत पेड़, अनायास ही उग आते। किसने कहा था, इतनी सघन बेहयाई दिखाने को ? बस, इस सवाल पर इतना लजा गए कि अब दिखाई ही नहीं देते।

कच्ची सरिया की नाद में मुँह डाले, एक तरफ गाएँ और कभी-कभी एकाध भैंस और दूसरी तरफ एक जोड़ी हृष्ट-पुष्ट बैल। सरिया और दर्जी के बीच बड़ा सा हाता ।हाते मे कलमी आम, करौंदे, महुआ, अनार, बड़हल वगैरह के कई पेड़। जेठ की कड़ी दोपहरी में भी वो हिस्सा, शीतल बयार के आँचल में छिपा रहता। भरी दोपहरी में खटिया लेकर करौंदे के पेड़ के पास, जहाँ सबसे अधिक शीतलता होती, बैठते या सोते। या कभी-कभी ताश खेलते। ताश बहुत छुपा कर खेलना पड़ता। पापा देखने न पाएँ। कभी-कभी वहीं अमरूद के पेड़ के पास सियार-पत्ती खेलते ।

सरिया के सामने काफी खुली जगह थी, वह शाम का अधिकार क्षेत्र था। खुली जगह के बाद घर का बड़ा सा आँगन, जहाँ खटिया और तख्त बिछे रहते, वही घर की बैठक या ड्राइंग रूम कह लीजिए।

आँगन के दाईं और बाईं तरफ एक- एक कमरा था। जिसमें से एक कमरा बाबा का था। आँगन पार करते ही एक छोटा गलियारा, जिसके दोनों तरफ फिर एक-

एक कमरा बड़की अम्मा और अम्मा के नाम। और फिर एक दम खुली जगह । दाहिनी ओर छप्पर के नीचे चूल्हा जलता था।बाईं ओर एक हैंडपंप लगा था ।उस हैंडपंप का पानी बेहद शीतल और मीठा होता था। अब वो हैंडपंप नहीं है। वैसा पानी भी कहीं नहीं है। कहीं नहीं मतलब कहीं नहीं। अतिशयोक्ति नहीं समय का यथार्थ था, जो समय के साथ बह गया।बाईं ओर तीन कमरे और थे, उनमें से एक कमरा चाची का था। बाईं ओर ही उत्तर वाले कमरे से सटी सीढ़ियाँ, छत को जाती हुई।

छत सपाट और खुली, किनारे किसी भी तरह का अवरोध नहीं। कितने बच्चे उस छत पर खेलते-कूदते बड़े हो गए, पर कभी कोई गिरा नहीं। गेहूँ, अचार, दाल, अमावट, खटाई, मसाले सुखाने की वाजिब जगह और रात में बच्चों और किशोरों का एम्यूज़मेंट पार्क। कितनी कहानियाँ, कितने किस्से, उस छत पर, फिसलती रात के हिस्से में आए और सितारों की झोली भर दी। चाँद टुकड़ों में, जेठ की दोपहरी, उतुरी की गलियों की धूल फाँकता और उनींदी दूध-रोटी की मिठास बटोर उसी छत पर पसर जाता। जमीन के किस्से, चूल्हे पर चढ़ी कढ़ाई में छौंक उठते और रोटियों की सोंधी महक घूँघट से निकल दुआरे से मनसेधुअन की चौपाल तक हो आती। खाने का समय हो गया। एक बार नहीं, कई बार बुलाहट होती तब एक-एक कर सब उठते।

सुबह उतुरी की आँखें क्या खुलती मानो विधाता की चक्की चलनी शुरू हो जाती। तिलस्म के डिब्बे से मानो सैकड़ों जिन्न एक साथ प्रकट हो गए हों और विधाता के हुक्म का अक्षरशः पालन करने की कवायद में जुट गए हों।

सबके बिस्तर समेटे जा रहे हैं। खटिया उठा कर एक तरफ खड़ी करो, सब। द्वार बुहारा जा रहा है। सुलई आए हैं, उनको खर मारने को कुछ दे दो, बैल लेकर खेत जोतने जाएँगे, वरना दोपहर हो जाएगी। दोपहर मतलब सूरज निकलना होता था।

बड़की अम्मा का तड़कता, भड़कता स्वर "का, लोगन, आज हमरे हियाँ आग न बारि जाय, का?ज्ज्ज"!

चूल्हा लीपा पड़ा है। बहुत सुंदर लग रहा है। कोई रहट्ठा लेकर आ रहा है, कोई उपले। रहट्ठा, अरहर के सूखे पेड़ होते थे, जिन्हें ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।

स्वर फिर गरजता "मनसेधुअन का खर मारे का केहू कुछु दिहिस"?

औरतों और लड़कियों की आफत रहती। घर में शौचालय नहीं था। दिशा-मैदान के लिए सूरज निकलने से पहले जाना पड़ता और फिर सूरज ढलने का इंतजार करना पड़ता। बड़ी कष्टदायक स्थिति थी।

घर में पहला शौचालय बनवाने के लिए, भाभी को पापा ने ५००० ₹ दिए थे, जब भइया की शादी हुई थी।

तब दरजी के पास घर का पहला शौचालय बना था।

गाँव में दिन भर कोई न कोई काम रहता। गेंहू, चावल, अरहर, उड़द, मूँग, मसूर तैयार करना। अचार, खटाई, सिरका, अमावट, बनाना। चबैना भुनाना, छीमी तोड़ना ,वगैरह,वगैरह। चक्की में दाल दरी जाती। एक साथ दो औरतें एक दूसरे की तरफ मुँह कर बैठतीं, बीच में चक्की। बारी-बारी से चक्की का हत्था थामतीं। चक्की चलती रहती, चलती रहती।साथ ही चलता रहता वार्ता-चक्र। ऐसे ही मूसलों के साथ उठते-गिरते मनोभावों में उन्मुक्त हँसी से छलछलाती पसीने की बूँदों में श्रम का सौंदर्य निखर उठता।कोई मेकअप नहीं।

कंट्रोल रूम थीं बड़की अम्मा।सबका संचालन बड़ी कुशलता से बड़की अम्मा ही करतीं। अम्मा, बड़की अम्मा से सलाह लेकर ही कोई भी काम करतीं। कभी-कभी बड़की अम्मा, अम्मा से भी सलाह लेती थीं। बड़की अम्मा के क्रोध से सब वाकिफ थे, पर अम्मा पर उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा। अम्मा

और चाची को दुलहिन कह कर बुलाती थीं, बड़की अम्मा, बड़की माई और बाबू।

बड़की अम्मा की “झपोलिया” बड़े आकर्षण की वस्तु थी। उसमें वो अपना पान, कत्था, सुपारी, चूना, जर्दा, सरौता रखती थीं। बेंत की बनी छोटी सी डोलची। कभी-कभी उनके पास बैठ कर उनसे सादे पान की फरमाइश करता, मना नहीं करतीं, बस कहतीं “तोहार पापा न बिगड़िहैं?” मैं कहता “ओनका जिन बताऊ”। खुल कर हँसतीं।

जैसा बड़की अम्मा का क्रोध था वैसी ही उनकी हँसी। हँसती तो बेबाक हँसती, खुल के। सरल, निर्द्वंद, उन्मुक्त। पूरा शरीर हिलता।

उतुरी के नामकरण की भी अलग-अलग कहानियाँ हैं। गाँव में एक उत्तरा कुँवर का मंदिर है। माताबदल, जिन्हें काना मुंशी कहा जाता था, उन्हीं के घर के सामने। कहते हैं गाँव का नाम उत्तरा कुँवर के नाम पर पड़ा।

वहीं एक मान्यता है, लंका-विजय के उपरांत, अयोध्या जाते समय, सीता यहीं उतरीं थीं। यहाँ से ५-७ किलोमीटर दूर गोमती के किनारे, सीता कुंड है, जहाँ उन्होंने स्नान किया था। वहीं से कुछ दूर पर धोपाप भी है, जहाँ रावण-वध के बाद श्री राम ने ब्रह्म-हत्या का पाप धोया था। कादीपुर में बिजेठुआ हनुमान मंदिर और महावीरन भी है। कहा जाता है संजीवनी लेकर लौटते, हनुमान जी को, असुर समझ भरत ने तिनके पर मंत्र पढ़कर, वार किया था और हनुमान घायल हो कर गिर पड़े थे।

एक मान्यता ये भी है कि अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा, विराटनगर जाते समय यहीं उतरी थीं, जिससे इसका नाम उतुरी पड़ा।

कुछ भी हो, राजनैतिक संवेदनशीलता और इच्छाशक्ति की उपेक्षा के बावजूद, ये शहर और ये गाँव अब भी साँसें ले रहा है और अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासतों की तह में न जाने कितने नायकों और नायिकाओं के

उपेक्षित संस्करणों को हृदय से लगाए बैठा है। ऐसे कितने अनाम चरित्र और स्थान हैं जिनके मस्तक पर स्वर्ण मुकुट या उत्कृष्ट शब्दालंकारों की मुहर नहीं है। बस है तो अपने ही पसीने की बू, धूल से सने गंदे, मटमैले चरण और हथेलियों में अपनी किस्मत की रेखाओं को धूल चटा, उन्हीं की जमीन पर खड़ा संघर्ष। कोई है, जो समझ सके? गूगल? आर यू देयर? नहीं।

काफी समय फिसल कर, काई बन, जम गया था। फिसलन इतनी बढ़ गई, नया समय पैर बचा कर निकल रहा है। सूखते दरजी के साथ कहानियों के प्राण भी सूखने लगे हैं। बड़की अम्मा के किस्सों से बच्चे निकल भागे। रोज शाम लोग बड़की अम्मा से नजर उतरवाने आते थे। क्या अम्मा उतुरी की नजर उतार पातीं? जवाब में वही खुली हँसी और फिर "ज्ज्ज"।

उतुरी बजगौती ठाकुरों का गाँव है। सोमवंशी और बघेल भी हैं। अब कान्हपुरिया भी आ गए हैं। मुख्यतः यहाँ क्षत्रियों का संख्याबल अधिक है। हमारे यहाँ किसी एक घर में यदि विवाह होता, विशेषकर कन्या का, पूरा गाँव सहयोग करता। खटिया, चादर, तकिया, रजाई, कंबल पूरे गाँव से, उस घर में पहुँच जाते ।मौसम के मिजाज के हिसाब से इंतजाम होता। बारात या तो प्राइमरी स्कूल में रूकती या बगिया में। बर्फ की बड़ी-बड़ी सिल्लियाँ मँगवाई जातीं। बड़े ड्रम में रूह-आफ़जा घोला जाता। बारात के पहुँचते ही उनका स्वागत शरबत और घर की बनी मिठाइयों और नमकीन से होता। स्वागत में पूरा गाँव रहता। नौजवान लड़के, बच्चे, बुजुर्ग, प्रौढ़ सब अपनी-अपनी जिम्मेदारी पर मुस्तैद। पूरे गाँव का उत्सव होता था। द्वार-चार के समय गजब भीड़ होती थी। छत पर महिलाओं और लड़कियों की उत्सुकता दूल्हे को ढूँढती। वहीं से दूल्हे और बारातियों को बीड़े मारतीं। बाद में अपने-अपने तरीके से विश्लेषण होता। दूल्हे के आगे नाचते नौजवान और बच्चे, अलग ही रौनक रहती। इत्रदान से बारातियों पर इत्र और गुलाब जल छिड़कता स्वागताकांक्षी वधू-पक्ष। कहीं कोई कमी न रह जाए। वर-पक्ष गाल भर कर आता। कमी बहुत बारीकी से ढूँढ़ता। आज गाल फुलाने का मौसम है। ढूँढ़ो, कोई तो कमी होगी? क्या कहा?

बाईजी का नाच नहीं होगा? घोर अपमान। बारात लौटा लो। दाल में नमक कम, कचौड़ियाँ खस्ता नहीं हैं, चढ़ावे में नकद कम है, दूल्हे को नहाने का पानी देर से मिला, ऐसे अनगिनत मुद्दों पर गाल फूल जाते।पर बारात वापस न जाती।न। वधू-पक्ष वाले भी अपनी तरफ से तैयार रहते। बुद्धिजीवियों की एक जमात, मय उदाहरण और साहित्य, फूले गालों को पिचकाने की रूपरेखा तैयार कर डालती। हमारे बाबू की सुप्रसिद्ध उक्ति "बियहवा तो होइबै करे"। और विवाह हो जाता था। कितनी भी मुँह फुलौवल हो, ब्याह नहीं रुकता था।

महिलाओं की विशेष रुचि, चढ़ने वाले थाल पर होती। बाद में यही सब चीजें गंभीर चर्चा का विषय बनतीं। तरकश में तीर जमा रखने का यही मौका होता। एक-एक आभूषण हाथों और आँखों से तौले जाते।वस्त्रों के रंग और डिजाइन की बारीकी से जाँच होती। बाद में ससुराल से लेकर मायके तक के सफर में इन्हीं पर अनुसंधान होगा।

द्वार-चार के उपरांत बारातियों के खाने की व्यवस्था की जाती। पंगत बैठती। दोने-पत्तल सजाए जाते। बड़े कुल्हड़ों में शीतल जल परोसा जाता।

कोई दाल की बाल्टी लिए परोस रहा है, कोई सूखी सब्जी, कोई तरावट वाली। किसी ने रोटी की टोकरी सम्भाल रखी है, कोई दही-बड़े लेकर दौड़ रहा है। सलाद, पिसी शक्कर और पानी परोसने वाले भी रहते और हाँ, घी परोसने के लिए एक आदमी अलग रहता। नहीं, ठेके पर नहीं। सब अपने ही गाँव के, अपने नात- बाँत, रिश्तेदार होते। अंदर मर्दों ने आटा गूँथने का बीड़ा उठाया होता। लोई पर लोई गूँथ कर हलवाई की तरफ उछाल दी जाती। गर्मागर्म रोटियों की आपूर्ति होती। हमारे यहाँ अक्सर भवानी गुप्ता ही हलवाई का काम करते। पापा के सहपाठी रह चुके थे। कहा जाता है मेलों में उनके द्वारा बनाई गईं गुड़ की जलेबियों और समोसों का कोई सानी नहीं था। कमाल का तारतम्य रहता सबमें। बाहर से कद्दू की गुहार हो रही है, कोई परवल माँग रहा है, कहीं पानी, कहीं दही-बड़ा, कहीं रोटी, कहीं दाल, कहीं चावल, कहीं अचार की गुहार

मची । ये गुहार सिर्फ अपने लिए नहीं मचाई जाती थी।नहीं साहब, अगल-बगल वालों पर भी नजर रहती।किसी की पत्तल में कहीं कुछ कम हुआ नहीं कि भइया, बाबू की पुकार होती। पर परोसने वाले संयम नहीं खोते। यंत्रचालित गति से सारी माँगे पूरी करते। गाँव की प्रतिष्ठा का सवाल है। कोई चूक नहीं होनी चाहिए।

और हाँ, वैसी ही यंत्रचालित गति से ,ओट से बारातियों पर गालियों की बौछार होती रहती । षटरस भोजन का सातवाँ रस। बाराती एक दूसरे को कोहनी मारते, चुहलबाज़ी करते और अंदर से महिलाओं और लड़कियों द्वारा समवेत स्वर में गाई जा रही गालियों से अपने- अपने हिस्से की चुन लेते या एक दूसरे पर थोप देते । वैसे तो उतुरी की कई महिलाएँ इस कला में निपुण थीं पर साहब____!

जगदीश मास्टर की माई जब गाली गाना शुरू करतीं, तो बस गाली ही गातीं। भागते भूत लंगोटी न जोहते। उन गालियों के द्रुतवेग से गोली भी लजा जाए। सब तौबा कर लेते।कान में पिघले सीसे सी उतर जाती थीं। जिसपर शुरू हो जातीं उसके पुरखों तक को तार देतीं। वो एक बार शुरू हो जातीं तो सारे कसबल ढीले कर देतीं।बाराती सचमुच अघा जाते, पानी भी नहीं माँगते थे। पर मुँह में पान का बीड़ा दबाए, जगदीश की माई गिलौरियों से गालियों के ऐसे-ऐसे रंग निकालतीं, हँसी की फुहार में इंद्रधनुष डकारने लगता। अगल-बगल वाली स्त्रियाँ, लड़कियाँ, सब हँसते-हँसते दोहरी हो जातीं। उन्हें कोहनी मारतीं “जाय द्या, अब बस करा हो”। और उनकी गालियाँ और तीव्र हो जातीं।ससुर, भसुर, सास, ननद, देवर, भौजाई, कोई बचा क्या? नहीं।सब तर गए। अब उठ जाओ।

बाराती एक साथ खाना शुरू करते और एक साथ ही पंगत से उठते। भले ही, आपने कितना पहले भोजन समाप्त कर लिया हो, जब तक एक भी आदमी भोजन कर रहा हो, आप उठ नहीं सकते। सामान्य शिष्टाचार ।

अब सब विलुप्त हो गया। शहर, गाँव की आत्मा में प्रवेश कर गया। शहरी सभ्यता में दोना-पत्तल असभ्य है, मेज पर सजे भोज्य पदार्थों पर खड़े-खड़े ,भूखे भेड़ियों से टूट पड़ो।अब यही सूट-बूट वाली सभ्यता है।

बारातियों को गाली गाना अशोभनीय और गँवारू कृत्य है पर सामान्य से वाक्य में, भर-भर के गालियों का रिवाज, शिष्टाचार है।

गाँव शहर के इतना करीब जा चुका है कि उसकी अपनी परछाईं शहर की परछाइयों में विलुप्त होने लगी है।और धीरे-धीरे वो लोग भी विलुप्त हो गए जिन्होंने गाँव को मरते दम तक जिन्दा रखने का प्रयास किया। जगदीश मास्टर की माई अब नहीं हैं। एक परंपरा अब नहीं है।

विवाह की विधि और संचालन, लड़कियों और स्त्रियों के लिए कौतुक का विषय होती। विवाह के प्रत्येक चरण के लिए गीत उनके सुरों में गुँथे होते। संगीत का कोई रियाज़ नहीं, कोई उस्ताद नहीं किंतु ढोलक की थाप और तालियों की लय पर उनके सुर थिरक उठते। फिर वो द्वार-चार हो, मंत्री-पूजा हो, तेलवाई हो, सिंदूर-दान हो या लावा परखना, खिचड़ी या कन्या की विदाई हो, उन्मुक्त कंठों से निकले ठेठ देसी स्वर, न जाने कितने दिलों में घर कर जाते। रेडियो प्रोग्राम में नहीं, टी.वी पर नहीं और सिनेमा में तो बिल्कुल भी नहीं। गाँव की मिट्टी अपना सोंधापन लिए गँवार हवाओं में बल खाती और अतीत के ओसारे में छींके पर चढ़ा कर रख दी जाती। वैसी ही निष्पाप।

मंत्री-पूजा करने वाले, दिन भर उपवास रखते। दूल्हे के पैर पूजने के बाद उन्हें व्रत तोड़ने के लिए कचालू और रस दिया जाता। गाँव का महिला-वर्ग सारी रात होते वैवाहिक कार्यक्रम का गवाह होता। पलकें भी न झपकतीं। कोहबर से लेकर सिंदूर-दान और द्वार-चार से लेकर विदाई तक की प्रक्रिया उनके अनुसंधान का विषय होती।

एक प्रथा, खिचड़ी की होती थी। दूल्हा अपने कुछ साथियों के साथ औपचारिक तौर पर खिचड़ी खाने एक पंडाल के नीचे बैठता। जिसे दूल्हे को

जो उपहार देना होता वो देता। साथ में मिर्ची वाले पान भी दूल्हे को खिलाए जाते। जूता चुराने की रस्म होती। पर इन सबसे पहले दूल्हे को मनाया जाता। बैठते ही दुल्हा, मुँह फुला कर किसी न किसी चीज की माँग रखता। वधू-पक्ष वालों को या तो वो माँग पूरी करनी पड़ती या पूरा करने का आश्वासन देना पड़ता।दूल्हे को रिझाया, मनाया जाता क्योंकि जब तक दुल्हा खाना नहीं शुरू करता, साथ का कोई भी खा नहीं सकता।पहले इस फूले मुँह में रेडियो, घड़ी, साइकिल, सोने की चेन वगैरह समाए रहते थे, फिर राजदूत और बुलेट घुसे, फिर मारुति और अब? सुरसा से हनुमान जी जीत गए पर इस सुरसा से वो न पार पाते। वैवाहिक संबंधों की सद्गति अब अत्यंत हिंसात्मक है। चुटकी भर सिंदूर कब शरीर के रक्त से अपना रंग खींच लेगा, विवाह का ये आठवाँ वचन होता है।

सब होने के बाद मड़ैया हिलाई जाती और गाँव के छोटे बच्चे सुग्गा लूटने दौड़ पड़ते। सुग्गा लकड़ी के बने तोते की आकृति के खिलौने होते थे।

शिष्टाचार के बाद सबसे मार्मिक प्रसंग आता, लड़की की विदाई का।

आँचल से ढँके चेहरे, अपनी अथाह पीड़ा को स्वर देते। उसमें इतिहास होता, वर्तमान होता और भविष्य भी होता। ये चीत्कार इतना मार्मिक होता कि पुरुषों के कलेजे फट जाते, आँखें भर आतीं। मानव सभ्यता में संबंधों का सूक्ष्म अध्ययन, इसी क्रंदन में होता। पीड़ा के अनंत गह्वर को पार कर, अपने जमीनी रिश्तों से इतर एक स्त्री सामाजिक परिपाटी को कायम रखने के लिए, एक दूसरी जमीन में जाकर स्वयं को बो देती है।इस कष्ट, इस त्याग का कोई पुरस्कार नहीं।

पर अब स्त्री को घूँघट से मुक्त कर सूटकेस और डीप फ्रीजर में समेट दिया गया। नारी-मुक्ति संग्राम की विजय-गाथा अश्लीलता का राज-मुकुट बन गई। पुरुष ने समझा नारी पर उसकी विजय है, नारी ने समझा पुरुष पर उसकी विजय है। दोनो हारे हुए जुआरी हैं। जानवर बहुत खुश हैं। उनकी प्रजाति में वृद्धि हो रही है। अब अपना राज है।

७.ईशापुर

ईशापुर, हमारी इच्छाओं का अधिकार क्षेत्र तो नहीं था पर उनकी कर्तव्य-निष्ठा अवश्य बन गया। दीदी हम सब में बड़ी थी। हमारी मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक। फिल्मी-दुनिया से हम सबका, इसमें अम्मा भी शामिल हैं, परिचय कराने वाली, परम-श्रद्धेय पूर्णिमा दीदी ही थीं। एक-एक कलाकार, उसका किरदार, नाम, उपनाम, उससे जुड़ी कहानियाँ, सब दीदी को पता था। हम सब उनके इस असीम ज्ञान-भंडार के कायल थे। उनसे छन-छन कर जानकारियाँ हम तक पहुँचती।

पार्क में एक क्लब था। क्लब में लॉन-टेनिस, बैडमिंटन, टेबल-टेनिस, बिलियर्ड्स खेलने की सुविधा थी। इसके अलावा वहाँ एक तरण-ताल भी था। क्लब में हर मंगलवार, प्रोजेक्टर पर फिल्म दिखाई जाती। चंद्रा अंकल क्लब के सदस्य थे। हम उनके अतिथि बनकर जाते। फिल्मों का भूत इस कदर हावी था कि जिद कर के हमने भी पापा से भी क्लब की सदस्यता ग्रहण करवाई।

मंगलवार की तैयारी बहुत सोच-समझकर की जाती। सबसे पहला काम होता, अम्मा को मनाना। “चलोगी न अम्मा, बहुत अच्छी पिक्चर है” अम्मा से विनती की जाती। फिल्म कोई भी हो, हमारे लिए बहुत अच्छी पिक्चर होती। अम्मा कहतीं “अच्छा देखेंगे”। बस, मन शंकालु रहता । नहीं, जब तक अम्मा पूरी तरह ‘हाँ’ न कर दें, लगे रहो। बाद में अम्मा को पलटने का मौका न मिले। खास कर मैं, अम्मा के पीछे पड़ा रहता। अम्मा के बिना कहीं नहीं आता-जाता था। “चलना न अम्मा, देखो तुम बोली थी” चिरौरी होती, तब तक, जब तक अम्मा ‘हाँ’ न कर दें।

फिर पापा का नंबर आता। मंगलवार को धूनी रमा कर पढ़ते। खेलने भी नहीं जाते।। खूब सारा काम, पहले से ही किए रहते। बचा के रखते। मंगलवार को

दिखाना है। बड़े शरीफ बनकर, कॉपी पापा के आगे कर देते। फिर जब समय होने लगता, धीरे से पापा से पूछते "पापा जाएँ "?पूछने की जिम्मेदारी या मुझ पर होती या प्रतिभा पर। पापा सब जानते थे। सब समझते थे । मना कर देते। कितना मन मसोस कर रह जाते। लगता, इस बार फिल्म हाथ से निकल ही जाएगी। तब तक पापा धीरे से कहते "अच्छा, जाओ"। आह! हृदय में उठती, उन धन्यवाद की लहरों को शायद पापा न पहचान पाते हों पर जो आह्लाद हमारे भावों से रिसता, क्या पापा उससे अंजान रहे होंगे? असंभव।बड़ी शराफत से उठते। दीदी, सब पहले ही तय कर के रखतीं, कौन क्या पहनेगा? अम्मा पहले ही खाना बना चुकी होतीं।उन्हें पहले से ही सहेज दिया जाता। लौटते-लौटते नौ बज जाते । पापा नौ बजे खा कर सोने चले जाते थे।

फिल्म देखने जाते समय क्या उमंग, क्या उत्साह रहता।कदम जमीन पर पड़ते ही नहीं थे। रुपहले पर्दे पर नायक और नायिकाओं में स्वयं को ही महसूस करने लगते।हीरो- हिरोइन पहचानते थे नहीं, जो अच्छा लगता उसी को हीरो-हिरोइन मान लेते। बाद में दीदी हमारी सारी गलतफहमियाँ दूर करतीं। "जो डाकू था, वो सुनील दत्त था या जो फौजी बना था वहीं विनोद खन्ना था या काले कोट वाला धर्मेंद्र था और सफेद कोट वाला फिरोज खान"। हम अपने सामान्य-ज्ञान की इस वृद्धि से धन्य हो जाते। फिल्म देख कर लौटते तो उस पर गहन चर्चा होती। दीदी के सामान्य-ज्ञान के समक्ष सब सिर झुकाते। उनकी टीका-टिप्पणी को विशेष महत्व दिया जाता। उन्होंने अगर कह दिया फिल्म अच्छी थी तो हम मान लेते, हाँ, अच्छी थी, भले ही पल्ले कुछ न पड़ा हो, और अगर उन्होंने कहा बुरी है तो फिर बुरी ही है, हमें कितनी भी अच्छी लगी हो। "मृगया" देख कर आए थे। कुछ पल्ले नहीं पड़ा। दीदी ने कहा, बहुत अच्छी फिल्म थी। आज तक मानते हैं बहुत अच्छी फिल्म थी। कई दिनों तक उस फिल्म के गीत, उल्टी-सीधी शब्दावली के साथ हमारी ज़बान पर रहते, जब तक क्लब में दूसरी फिल्म का पोस्टर नहीं लगता था। यहाँ तक कि ट्रेन वगैरह से आते-जाते फिल्मों के पोस्टरों पर ध्यान रहता। मनपसंद सितारों को

देख रूह गदगदा उठती। हम सब में से किसी को किसी विशेष सितारे से कोई खास लगाव नहीं था पर सुधा दी विनोद खन्ना पर फिदा थीं। विनोद खन्ना का “सिंथॉल” का विज्ञापन देख पगला जातीं। बाद में प्रतिभा कुछ दिनों तक गोविंदा और सिम्मी, संजय दत्त की घनघोर प्रशंसक रहीं। सुमन, हेमा मालिनी की प्रशंसक तब भी थीं, आज भी हैं।

सिनेमा हॉल में पापा, अम्मा को एक ही फिल्म दिखाने ले गए थे।“जय संतोषी माँ“। पापा को कभी भी फिल्मों से लगाव नहीं रहा। सख़्त खिलाफ थे, फिल्मों के। पर अम्मा को शौक था, फिल्मों का।

८.

दीदी घर में सबसे बड़ी थीं। उनकी जरूरतें हमसे अलग, हमसे ज्यादा रही होंगी। इतना बड़ा परिवार और सीमित आय के बावजूद अम्मा दीदी का यथासंभव ख्याल रखती थी। मुझे याद है, अम्मा ने, पहला हील वाला सैंडल, दीदी के लिए चंद्रा आंटी से ₹४0 में खरीदा था। कितना हंगामा मचाया था मैंने! इतना पक्षपात ! इतना अन्याय ! कितना लड़ा था अम्मा से मैं ! बाल-बुद्धि, सही और गलत में अंतर नहीं देखती । वह तय कर लेती है, यही सही है, और उसी खूँटे से स्वयं को बाँध लेती है। आज सोचता हूँ, तो अम्मा की वो निर्विकार आँखें याद आती हैं, जिसमें वो सिहरन थी, जो पूरी सर्दियों को एक स्वेटर में काट देती थी । वह झिझक थी, जो मात्र दो साड़ियों, एक नीली और एक हरी, में लिपटी रहती थी। बाहर जाते, चंद्रा आंटी को देखते, दूसरी आंटियों को देखते, मन में एक कसक उठती, एक खीज रहती, एक अवसाद रहता, अम्मा, उनकी तरह अलग-अलग रंग की साड़ियाँ क्यों नहीं पहनतीं? अम्मा के पास उनकी तरह सुंदर कोमल और मँहगे शॉल, स्वेटर, साड़ियाँ क्यों नहीं है? ऐसी पीड़ा, बहुत गहराई में जाकर जम जाती है और पता नहीं कितने विक्षोभों की गाँठ बन जाती है। उन गाँठों को मैंने कभी खुलने नहीं दिया। आज भी उन्ही गाँठों से मैं जीवन- प्राण अवशोषित करता हूँ और उस बच्चे की ग्लानि मेरे अंदर आज भी जीवित है, शायद मुझसे ज्यादा सशक्त, मेरे अंदर का वो बच्चा है। दुर्गा- पूजा में सबके लिए कपड़े आते, अम्मा-पापा के लिए कुछ नहीं ।अम्मा चुप रहतीं। कभी कुछ बोलती ही नहीं थी। दीदी को पहला बेल-बॉटम अम्मा ने ही दिलवाया था। गाढ़े नीले रंग का। जरिया? वही चंद्रा आंटी। उस पर भी अम्मा से खूब लड़ा था मैं। पर जब, चंद्रा आंटी ने पापा से जिद कर, अम्मा के लिए पहली सिल्क की साड़ी, खादी ग्राम उद्योग से खरिदवाई, तब जाना आत्म संतोष क्या होता है। ३७५₹ की वह साड़ी हमारे लिए गर्व की

पराकाष्ठा थी। अम्मा जब भी अपना बक्सा खोलतीं, सब उस साड़ी को देख गदगद हो उठते। लगता, नहीं, हम कतार में इतने पीछे नहीं हैं। आज अम्मा नहीं है, किंतु वह साड़ी उनकी अलमारी में वैसी ही नई की नई रखी हुई है।

कोलकाता में वह साड़ी ,अम्मा के बक्से में रखी जाती। अम्मा का बक्सा, बेहद कौतुहल की वस्तु थी, हम बच्चों के लिए। तिलस्म का पिटारा। जैसे ही अम्मा बक्सा खोलती, हम सब उन्हें घेर लेते। अजीब से खुशबू आती, उस बक्से से । मंथर-मंथर, वह महक हमारे मनोमस्तिष्क को मानो पालने में झूलाती। अम्मा बड़े चाव से एक-एक चीज के बारे में बताती। हाथों से बने हुए पर्स, हाथ के पंखे, गाने की कॉपी, बटुए और न जाने क्या-क्या? अम्मा कभी स्कूल नहीं गईं थीं मगर गाने की कॉपी में उनकी लिखावट, बिल्कुल मोतियों के अक्षर सी थी। कजरी, फाग, देवी-गीत सब तो थे, उस कॉपी में। हर वस्तु से जुड़ा, एक संस्करण, एक अध्याय, जब अम्मा अपनी सादी, सरल भाषा में बतातीं हम सब भी बड़े चाव से सुनते। अब भी लगता है अम्मा के पास कहने को कितना कुछ था, सुनकर भी शायद, हम नहीं सुन पाए ।वह बक्सा, अम्मा के लिए, उन्हें उनकी जड़ों से जोड़ने वाला सूत्र था। अम्मा के मायके की निशानी। बहुत सहेज कर रखा था, अम्मा ने, उसे। उसकी सारी वस्तुएँ आज भी हैं, बस वह गाने की कॉपी, दीदी ले गई थी। पता नहीं वह कॉपी अब कहाँ है?

वह बक्सा, तीन-चार साल पहले मैंने कामवाली को बेच दिया। आज अपने गिरेबान में झाँकने की हिम्मत नहीं है? क्यों किया ऐसा मैंने ?जगह की कमी के कारण! पड़ा रहता कहीं भी किसी कोने में । एक छोटा बक्सा ही तो था!

पर नहीं! घर को सुंदर रखने के प्रयास में, मन को कितना असुंदर कर लिया था मैंने। मन का विकृत स्वरूप, मन के सुंदर स्वरूप को नहीं पहचान सकता और मैं भी नहीं पहचान पाया, जब अम्मा ने कहा "किसलिए उसे बेचने लगे? रहने दिए होते, किसी कोने में"। अपनी मूर्खता पर आज कोई संदेह नहीं।

सुमन को गलघोंटू (डिप्थीरिया) हुआ था। हम बच्चे, इस बीमारी की गंभीरता से, इसके वैज्ञानिक स्वरूप से, अवगत नहीं थे । सुमन छः साल की ही थी। बोलने में तकलीफ हो रही थी। साँस लेने में बहुत ज्यादा तकलीफ थी। साँसों मैं हल्की-हल्की घरघराहट की तीव्रता, बीमारी की गंभीरता बता रही थी। कई दिनों से सुमन को यह तकलीफ थी। लेकिन वो रोती नहीं थी, शिकायत भी नहीं करती थी। अम्मा, बार-बार पापा से किसी डॉक्टर को दिखाने को कहतीं पर पापा बीमारी को सर्दी-खाँसी कहकर टाल-मटोल करते थे। हमारे पापा या हमारे खानदान में कह लीजिए डॉक्टर तक पहुँचने के रास्ते, कई तर्कों और कुतर्कों से गुजरते हैं। हमारे ताऊजी और चाचा भी उन्ही सिद्धांतों की परिपाटी पर खींची लकीरें हैं जो डॉक्टर के पाले में गेंद नहीं जाने देना चाहते पर जाना पड़ता है ।समय सबको झुका देता है। इनको भी समय बा-समय, समय ने ही झुकाया। बहरहाल उस शाम, जब सुमन की साँसें एकदम रुकने को थी तब पापा और अम्मा उसे लेकर डॉक्टर साहा की क्लीनिक में पहुँचे ।डॉक्टर साहा ने पापा को खूब खरी-खोटी सुनाई थी और फौरन सुमन को किसी अस्पताल में भर्ती करने को कहा था। छोटी सी सुमन कुछ बोल नहीं पा रही थी, बस टुकुर-टुकुर इधर-उधर देख रही थी। वो नहीं, अम्मा रो रहीं थीं। अम्मा की असह्य पीड़ा का भाव उसकी ख़ामोशी में था। अम्मा, पापा और कुशवाहा अंकल उसे भर्ती कराने कलकत्ता गए। कलकत्ता के एस.एन. हॉस्पिटल में सुमन को भर्ती किया गया। वहाँ किसी को रुकने की इजाजत नहीं मिली। लौटते समय, अम्मा ने खिड़की के पास खड़ी सुमन को देखा। चुपचाप अम्मा को देख रही थी। उस समय भी सुमन रोती नहीं थी। अम्मा रोती जा रही थीं और रोते-रोते ही अम्मा घर आईं थीं। सुमन को अधिकार था रोने का, अम्मा का कर्तव्य। सुमन ने कभी अधिकार माँगा नहीं, अम्मा कर्तव्यों से कभी पीछे नहीं हटीं।

घर की खामोशी, अम्मा की पीड़ा को आत्मसात कर घर के बच्चों में बाँटती रही ।अम्मा की विवशता कितनी भयानक थी और उससे भी भयानक थी, किसी से अपना दुख ना बाँट पाने का संकोच। किससे बाँटती? हम सब बच्चे

ही थे। पापा भावुकता से बहुत परे थे। हाँ, चंद्रा आंटी। कैसे भूल सकते हैं उनको ? वह हमारी, दूसरी अम्मा ही थी। अम्मा के सुख-दुख में सदैव अम्मा का सहारा बनी। बिल्कुल पारिवारिक रिश्ता था, उनसे। अम्मा-पापा रोज अस्पताल जाते। सुमन की हालत में लगातार सुधार होता जा रहा था और एक दिन अम्मा-पापा जब लौट कर आए, साथ में सुमन थी। हरी- काली ऊनी मिडी में, सुमन। दीदी ने ही वो ऊनी मिडी बुनी थी। वैसे ही शांत, जैसे गई थी ।अद्भुत थी उसकी सहनशक्ति। आज भी वैसी ही सहनशक्ति है। हम सबको यह सहनशक्ति विरासत में मिली है। अम्मा भावुक थीं पर परिस्थितियों पर भावुकता को कभी हावी नहीं होने देती थी। अपना कष्ट, अपनी तकलीफ, कतार के अंत में रखतीं, कभी-कभी वहाँ भी नहीं। आत्मसात कर लेतीं। पापा कभी भी भावुक नहीं होते थे। हमारी आजी को लेकर सुल्तानपुर जिला अस्पताल गए थे। दिखाकर लौट रहे थे। ईंटों का बयाना भी देकर आ रहे थे। रिक्शे पर थे। रास्ते में आजी ने बच्चों के लिए कुछ फल खरीदने को कहा। पापा फल खरीद कर रिक्शे पर बैठे और आजी उनके कंधे पर लुढ़क गईं।पापा ने समझा थकान है, पर कोलई, जो हमारे गाँव का ही रिक्शेवाला था, उसने कहा" बाबू, अम्मा त खतम होइ गईं" ।वैसे ही आजी को लेकर गाँव तक आए। आँखों से आँसू की एक बूँद भी नहीं गिरी। ऐसा हो सकता है? हाँ, ऐसा भी हो सकता है, जब आदमी सिर से पाँव तक जिम्मेदारियों का आवरण ओढ़ ले और उसे पता हो भवन का सबसे मजबूत स्तंभ वही है, उसके डाँवाडोल होने पर पूरा भवन जमींदोज हो सकता है तो वह तन जाता है और तना ही रह जाता है जब तक भवन के दूसरे स्तंभ तैयार ना हो जाएँ। अम्मा समझतीं थीं, पापा का व्यक्तित्व। पर पापा, अम्मा के मनोभाव से डरते थे कि कहीं वे उन्हें कमजोर ना कर दें । इसलिए उन भावों के अक्षरों से अपरिचित बने रहे। अम्मा अनपढ़ थीं, सब पढ़तीं थीं। पापा बहुत पढ़े- लिखे थे, अनपढ़ रहना चाहते थे। इन दोनों सहन-शक्तियों का सामंजस्य हम संतानों में स्पष्ट रूप से विकसित होता गया। सुमन इसका पहला चरण थी।

९.

उतुरी के घर के गलियारे में खड़ा, एक गोरा-चिट्टा नौजवान, बेल-बॉटम पहने, रूमाल से बार-बार अपनी आँखें पोंछ रहा था। बगल में एक अटैची रखी थी। मुन्ना, नाम की, जेहन में बस, यही एक स्पष्ट तस्वीर है। कुछ दिनों पहले उनके चाचा, राम बली सिंह, जोकि फौज में थे, एक हादसे का शिकार हो गए थे। लद्दाख में, उनके बाकी साथी दुर्घटना ग्रस्त जीप से कूद गए किंतु जब वो कूदने को हुए, उनकी रायफल जीप के दरवाजे में फँस गई और वो जीप के साथ खाई में जा गिरे।

"मुन्ना आत्महत्या" तार में लिखा था । तार मैंने ही पढ़ा था। तार ,उस समय एक भयानक जीव का पर्याय होता था। अशुभ समाचारों का असामान्य वाहक। पापा घर पर नहीं थे। स्कूल से लौटा तो, तार अम्मा ने पढ़ने को कहा। अम्मा सन्न। मुन्ना, हमारी बड़ी बुआ सावित्री के बड़े बेटे थे । वास्तविक नाम राजेंद्र सिंह। १९-२० साल की उम्र के रहे होंगे। गोरे-चिट्टे, लंबे-चौड़े । सुल्तानपुर में रहकर पढ़ाई कर रहे थे। तार भेजने वाले का नाम, लल्लन लिखा था। लल्लन, रजनीश भइया का घरेलू नाम था । पर भइया दसवीं कक्षा में थे, हमारे साथ ही थे, तार उनके नाम से क्यों भेजा गया? क्यों हुआ? क्या हुआ? कैसे हुआ? उतुरी से ५००- ६०० किलोमीटर दूर, कलकत्ता में जानने का कोई जरिया न था। पापा जब आए, तार पढ़ कर काफी विचलित हुए। पर कोई भी घटना, कोई भी समाचार, उनकी दिनचर्या परिवर्तित नहीं करता। पापा हमेशा रेडियो पर सुबह ६:०० बजे, सुबह ८:०० बजे, दोपहर २:०० बजे और शाम ६:००बजे फिर रात ८:४५ का समाचार नियमित रूप से सुनते। उस दिन भी शाम ६:०० बजे का समाचार भी सुना और रात ८:४५ का समाचार भी सुना। सब सामान्य सा ही लग रहा था पर सच यह है कि सतह के नीचे बहुत सारे तूफान थे। तूफानों में अपने-अपने दृष्टांत थे, अपनी-अपनी सोच, अपने-अपने विचार और

अपनी-अपनी भ्रांतियाँ। पर सच अटल था। हमारे चिर-परिचित लोगों में से, एक नहीं रहा। यह पहली मृत्यु की खबर थी जिसने हम बच्चों को दहला दिया। उस समय नजदीकियाँ थीं पर समय की नितांत दूरियाँ, उन नजदीकियों को छिपा लेती थीं। आज समय सिकुड़ कर जेब में समा गया है, नजदीकियाँ, उसकी जेब से पता नहीं, कब, कहाँ गिर गईं। चवन्नी हो चुकी थीं, जो अब नहीं चलतीं। पापा नहीं जा पाए। तार काफी दिनों बाद मिला था। किंतु उतुरी का एक भयानक रहस्य हम सब के साथ बड़ा होने लगा, आज भी वह रहस्य ही बना है।

१०.

सिम्मी आ गई ।बंगाली नैन-नक्श लिए,घर में नए सदस्य का आगमन। दीदी हम सब की गुरु थीं। बेहद स्मार्ट। कुछ दिन पहले क्लब में हमने "गूँज उठी शहनाई" नाम की एक फिल्म देखी थी, जिसकी नायिका अमिता गुहा से प्रभावित होकर दीदी ने उसका नाम अमिता रखा। कुछ दिन तक हम उसे अमिता ही बुलाते रहे फिर "चलते-चलते" फिल्म में सिमी ग्रेवाल के किरदार से प्रभावित चंद्रा आंटी ने उसे "सिमी" कह कर बुलाना शुरू किया ।"सिमी" और "अमिता" में, विजय "सिमी" की हुई। फिर कोई उसे "सिमी" बुलाता कोई "सिम्मी"। बाद में पापा ने उसका नाम "चंद्रकांता "रखा। हमारे घर में एकमात्र वही है, जिसके दो अलग-अलग नाम है। अम्मा उसे सिम्मी ही बुलाती । सबसे छोटा होने की वजह से और एक कारण और है जिसे अभी लिखना उचित है कि नहीं, नहीं समझ पा रहा इसलिए नहीं लिख रहा हूँ, अम्मा की लाडली बन गई सिम्मी।

सिम्मी इस परिवार में शायद परिवर्तन की विधा थी। छोटी होने के कारण, अम्मा और घर के बाकी सदस्य उसे सिर आँखों पर बिठाते। शिशुओं के विशिष्ट उत्पाद संभवत पहली बार हमारे घर में प्रयोग में लाए गए। सिम्मी जब विद्यालय जाने लगी, उसकी माँग के अनुसार उसे टिफिन दिया जाता था। कभी संदेश, कभी जलेबी, कभी ब्रेड। मेनका को दौड़ लगानी पड़ती, पार्क के गेट तक। उन दिनों रिहायशी इलाकों में दुकानों का चलन काफी कम था। छोटे-छोटे सामान के लिए बाजार जाना आवश्यक होता था शायद इसलिए लोगों ने अपनी जरूरतों को सिकोड़ रखा था। बहुत आवश्यक वस्तु हो, तभी बाजार का रुख होता, जितनी आवश्यकता होती उतनी ही खरीदारी। आज एक सामान लेने जाते हैं, चार गैर-जरूरी सामान उसके साथ ले आते हैं।

हमारे यहाँ जन्मदिन मनाने की कोई परंपरा थी ही नहीं। दूसरों के जन्मदिन के उपलक्ष में जब हम जाते, रंग-बिरंगे रैपर में लिपटे उपहार देखते तो मन में एक कसक उठती, एक ललक सी होती कि हम भी जन्मदिन मनाएँ, अपने परिवार में। किंतु पापा का डर, अम्मा की उदासीनता और परिवार की आर्थिक स्थिति, ये तीनों इसकी इजाजत नहीं देते थे। पापा, अपनी तनख्वाह का एक हिस्सा गाँव, हर महीने, अवश्य भेजते थे। कभी-कभी चाचा को जरूरत होती, तो उन्हे भी पैसे भेजते। गाँव जाते तो घर का निर्माण कार्य भी कराते और निर्माण सतत होता रहे, उसके लिए भी पैसे देकर आते। कुल मिलाकर हम एक औसत मध्यम-वर्ग की प्रतिलिपि थे जो महीने के अंतिम सप्ताह तक धुँधली पड़ जाती। कलकत्ता में हमारा राशन,लाइन-बाजार में केदार के यहाँ से आता, जिसका हिसाब महीने की पहली तारीख को होता। कुल राशि सत्तर से पचहत्तर रूपए तक की होती। अखबार पलता-पार्क के "बोईपत्र" के यहाँ से और कॉपी-किताबें "शामली" के यहाँ से आतीं ।पूजा वगैरह के कपड़े लेने अम्मा-पापा नैहाटी जाते। दूध लेने सुबह ४:०० बजे पापा जाते थे, जब पापा नहीं रहते, अम्मा जाती थी और सब्जी लेने पापा या अम्मा में से कोई पलता-पार्क या लाइन-बाजार जाते। बस इतनी ही जरूरत के बीच हम रह रहे थे।

पर मैंने निश्चय किया, जन्मदिन मनाने का। पहला जन्मदिन सिम्मी का ही मनाया गया। अम्मा को मना लिया था। अम्मा मेरी बहुत सरल थी। मेहनत से कभी मुँह ही नहीं मोड़ा । जो कुछ भी हमने कहा, अपने सामर्थ्य अनुसार पूरा किया। नहीं, यह सब उस समय नहीं समझ में आता था। उस समय, अपने अधिकार की लड़ाई लड़ते, स्वयं में नायकत्व का अनुभव होता। अहसास हुआ। बहुत बाद में। जब दुनिया की ऊँच-नीच समझने लगा, तब लगा कि कैसी मूर्खतापूर्ण सोच थी।

कोई केक नहीं काटा था! गुब्बारे नहीं सजाए गए थे! झालर नहीं लगाई गई थी !बस दो ही मेहमान थे, बॉबी और मिली ।अम्मा ने पूरी, सब्जी, सेंवई, यही

सब बनाया था। यही सब परोसा गया और इस तरह से हमारे खानदान में पहला जन्मदिन, सिम्मी का मनाया गया।

मैंने भी यहाँ- वहाँ से इकट्ठा किए हुए, छोटे-बड़े सारे खिलौने, एक डिब्बे में पैक कर, सिम्मी को पहले जन्मदिन का उपहार दिया था। उपहार देना ही हमेशा से मेरे लिए आकर्षण का केन्द्र रहा। उसमें छिपी अनिश्चितता, उम्मीद, जिज्ञासा, उपहार के रैपर को उपहार से अधिक आकर्षक बना देती है। उपहार की कीमत, कभी उपहार नहीं होती, उसमें निहित अपनापन उपहार होता है जिसे पाने वाला हमेशा के लिए संजो लेता है।

पापा से बहुत जिद की थी ।"अरे सिम्मी का जन्मदिन है, कुछ गिफ्ट नहीं देंगे" ? बहुत जिद करने के बाद, पापा मुझे साइकिल पर बिठाकर, पलता-पार्क में पॉल की दुकान पर लेकर आए। उपहार में देने के लिए मालूम है, क्या खरीदा? एक कटोरी। स्टील की। उन दिनों हमारे घर में बर्तनों की कमी थी। ६:५० ₹ की स्टील की कटोरी। क्यों? मन में था कि अम्मा खुश होंगी। सिम्मी के लिए नहीं, अम्मा के लिए। उस दिन से लेकर, आज तक जो भी खरीदा, ध्यान में बस अम्मा रही, वो सामान देखकर अम्मा खुश होंगी या नहीं, यही मेरे सामान खरीदने का मापदंड बन गया। और पॉल की दुकान हमारे परिवार के हिस्से में आए जन्मदिन के तोहफों का आभार। पॉल की दुकान के सामने नंदी की दुकान थी। तुलनात्मक दृष्टि से छोटी थी। पॉल से उन्हें सख्त चिढ़ थी। पॉल का नाम लेते ही भड़क जाते। चूँकि पॉल की दुकान की बिक्री ज्यादा होती, नंदी की नजर उस दुकान पर रहती। पॉल की दुकान छोड़ कोई उनकी दुकान पर आ जाता तो उनकी बाँछें खिल जातीं।

वह पहला जन्मदिन था हमारे परिवार में, जो मनाया गया। फिर क्या था? सबका जन्मदिन ऐसे ही मनाते। कोई तामझाम नहीं । केक वगैरह काटने की परंपरा, हमारे यहाँ बहुत बाद में शुरू हुई। हाँ, वह भी शुरू हुई सिम्मी के जन्मदिन पर ही। बस, अम्मा कुछ अच्छा खाने को बना देती और वही पॉल की दुकान से

६:५०₹ की कटोरी का उपहार। एक बार चंद्रा आंटी ने मुझसे पूछा ‘‘क्या खरीदा’’? मैंने कहा ‘‘कटोरी।‘‘ आंटी हँसने लगीं और प्यार से बोली ’’बहुत समझदार हो’’। बहुत गर्व हुआ था। एक-एक कर कई कटोरियाँ इकट्ठी कर डालीं। अम्मा उन्हें बहुत संभाल कर रखतीं थीं । उन दिनों फ्रिज नहीं था। लकड़ी की एक अलमारी होती थी, खाना रखने के लिए। इस अलमारी में अम्मा ने सारी कटोरियाँ संभाल कर रखीं थीं । मेहमान वगैरह आने पर उन्हें निक़ालतीं। अम्मा जब भी उनका इस्तेमाल करतीं, सुकून मिलता, लगता कहीं कुछ सार्थक है।

११.

बंगाल की कुछ चीजें अविस्मरणीय है। धमनियों में प्रवाहित रक्त की तरह, जिन्हें विस्थापित नहीं किया जा सकता।

पहला, नवाबगंज में मण्डल-बाड़ी के पास लगने वाला झूलन- मेला। आज भी वो मेला पारंपरिक सौष्ठव के साथ उसी स्थान पर लगता है। मंडल-बाड़ी के पास। पूरे ईशापुर का आकर्षण केंद्र। क्या बच्चे, क्या बूढ़े! सबके लिए कुछ न कुछ लेकर आता, झूलन- मेला। हर तरह के झूले, सर्कस, जानवरों के बाड़े, कंधे पर अजगर टाँगे आदमी, शरीर से जुड़ी बहनें, पैरों से बंदूक से निशाना लगाने वाले लोग, मौत का कुआँ वगैरह-वगैरह। हर तरह की दुकानें होतीं। मिट्टी के खिलौने, लकड़ी के खिलौने, प्लास्टिक के खिलौने। साज- सज्जा, बर्तन, कपड़े, गिलट, घर की जरूरी वस्तुओं की दुकानें ।ऐसा क्या था, जो वहाँ नहीं मिलता। एक तरफ हलवाइयों की कड़ाहियाँ, जलेबी और कचौड़ी की पाजेब पहने, छम-छम करतीं, दूसरी ओर समोसा नथुने फुलाए, मारे गुस्से के खौलते तेल में कूद पड़ता। लोगों की जिह्वा के विभिन्न स्वाद केंद्र, प्रबल रूप से हिंसात्मक हो जाते। सब चबा जाने को व्याकुल।

रामायण और महाभारत की विभिन्न घटनाओं को मूर्तियों के माध्यम से प्रदर्शित करती प्रदर्शनी, इस मेले का एक प्रमुख आकर्षण होती थीं। गजब की आकर्षक एवं जीवंत मूर्तियाँ होतीं। ताड़का और राम का युद्ध, पांडवों का वन-गमन, भीम का दु:शासन की छाती चीर कर लहू-पान, सीता की अग्नि-परीक्षा, खर-दूषण वध, नवजात कृष्ण को टोकरी में रख उफनती यमुना पार करते वासुदेव, कालिया नाग के शीश पर बाँसुरी बजाते बाल-कृष्ण, राम-रावण युद्ध और भी न जाने कितनी घटनाएँ, सजग मूर्तियों के माध्यम से प्रदर्शित की जातीं। ये वो समय था जब श्रद्धा, राजनैतिक विमर्श और तिजोरियों की सीनाजोरी से कोसों दूर थी।

पुचका। “पुचका” बंगाल में गोलगप्पे को कहते थे ।ऐसा शायद ही कोई था, जो झूलन मेले से पुचका खाकर ना लौटता हो। आँख, नाक से साधारण पानी त्याग, पुचके के पानी को आत्मसात करने में सारी शर्म पानी-पानी हो जाती थी। “ भइया थोड़ा सा पानी और देना”।

अम्मा हमेशा हमें ले जातीं थीं और पुचका और जलेबी जरूर खिलातीं। कभी-कभी पापा भी साथ जाते। वहाँ की मूर्तियों में निहित सारी घटनाएँ विस्तार से बताते। अंग्रेजी, हिंदी और संस्कृत साहित्य पर पापा की पकड़ बहुत मजबूत थी। सारे श्लोक, चौपाइयाँ कंठस्थ। कभी-कभी टीवी पर बड़े-बड़े महारथियों को जब अपने पोंगे पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हुए देखता हूँ तो लगता है इस देश में पापा जैसे और न जाने कितने विद्वान होंगे जिन्हें उनका उचित सम्मान नहीं मिल पाया। भगवान श्री रामचंद्र त्रेता में ही कौवे और हंस को पहचान गए थे, हम इतने दिनों बाद भी नहीं पहचान पाए। हम राम को पहचानने में व्यस्त रहे।

मेले से कुछ न कुछ खरीद कर अवश्य लाते। ५० पैसे की मिट्टी की बिल्ली, ३:५०₹ की बाल-कृष्ण की भव्य मूर्ति, खिलौने वाली बंदूक, गुड़िया वगैरह। अम्मा ने एक बार अपनी पसंद से एक काली बिल्ली खरीदी थी। डेढ़ रुपए में ।उसकी गर्दन हवा में हिलती-डुलती थी । चिप्स काटने वाली मशीन, गुझिया का साँचा अम्मा वहीं से खरीदतीं। अम्मा ने ब्रेड में आलू का मसाला भरकर सेंकने के लिए १५ ₹ की मशीन खरीदी थी ।इन चीजों को हम बहुत संभाल कर रखा करते। हमारे लिए विलासिता की वस्तुएँ थीं।

दूसरा था दुर्गा-पूजा का आयोजन। आह, बंगाल! तेरा सारा जादू, दुर्गा-अनुष्ठान से ही उत्प्लावित होता है, रे! दस दिन बंगाल पृथ्वी से कट जाता था और सीधे मोक्ष के द्वार। स्वर्ग था, स्वर्ग !क्या जोश, क्या जुनून, क्या भक्ति, क्या सद्भाव होता था! माया और ब्रह्म के समागम से निकलती, एक अद्वितीय अनुभूति, जिसमें मनुष्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही मनुष्य है, ईश्वर के प्रथम संवाद की

सार्थकता होती। बड़ा? छोटा? कुछ नहीं। अमीर? गरीब? बिल्कुल नहीं। जाति? धर्म? अरे! साहब, किस फेर में हैं आप? ये सब चिराग लेकर भी ढूँढ़ने पर न मिलता। संसार दुर्गामयी रहता। बस।

एक से एक भव्य पंडाल। दुर्गा की भव्य, सशक्त एवं जीवंत मूर्तियाँ। मानो, साक्षात दुर्गा मनुष्य के निमंत्रण पर अवतरित हो गई हों। उफ्फ! वो ढाक के नाद! सुगंधि, धूप और हवन समिधा की परिचारिकाएँ, दुर्गा के आभा मंडल को और निखार देतीं। दुर्गा की संस्तुति में भजन, कीर्तन और संगीत की लहरी में डूबते-उतरते सैकड़ो मुख-मंडल। बंग-भूमि माँ के चरणों की पदचाप पहचानती है। विकल शिशु की भाँति दौड़ पड़ती है। "माँ____माँ" के शोर से सारा वातावरण द्रवित हो उठता है।

माँ आ गई है ।गगन, धरती पर, माँ के चरणों में लोटने लगता है। इंद्रधनुष के रंग-बिरंगे अवतरण बंगाल में प्रत्येक मनुष्य के हृदय को आह्लादित करते हैं। दस दिन, पूर्ण रूपेण माँ को समर्पित। लोग पगलाए घूम रहे हैं । इस पंडाल से उस पंडाल। यह मूर्ति अधिक भव्य है। अरे! यह तो उससे भी सुंदर है। ।नहीं, नहीं, यह अतुल्य है। माँ सभी रूपों में माया कर रहीं हैं ।मुझे पाना आसान नहीं, और ढूँढ़ो। हाँ! चलो, ढूँढ़ने। थकने का कोई औचित्य नहीं, माँ का आशीर्वाद है। आध्यात्मिक मोह है।

हर पंडाल में सुबह, दोपहर, शाम आरती होती। आरती के बाद प्रसाद वितरण।लाउडस्पीकर तो मानो थमने का नाम ही नहीं लेते । कभी "बोंधु तीन दिन तोर बाड़ी ते गेलम" कभी "बोलि ओ नोनोदी" कभी "फूलकोली रे फूलकोली" कहीं"बौड़ो लोकेर बिटियो" कहीं राजेश खन्ना, जितेंद्र, कहीं अमिताभ, कहीं धर्मेंद्र, के गीत बजते जाते हैं, बजते जाते हैं। दोपहर और रात के भोज का प्रबंध है, हर पंडाल में। बंगाल की मसालेदार खिचड़ी, पपीते की चटनी, पापड़, बेगुन-भाजा, आलू-दम, रौसोगुल्ला, संदेश, क्या नहीं है? खाने में कुछ कमी नहीं। अन्नपूर्णा का दरबार है। कोई रोक-टोक नहीं। रात में एक से

एक, भव्य जत्राओं और नाटकों या फिल्मों का आयोजन। लोग बाल सुलभ उत्कंठा लिए, आँखें गड़ाए बैठे हैं। एक अविस्मरणीय कहानी का पात्र हैं।एक यथार्थ जो कहानी बन कर रह गया। दूऽऽर् च्छाइ।

दस दिनों के स्वर्ग की अनुभूति आँखों के रास्ते बहने को है। आज भसान है, विसर्जन । लोग भारी मन से पंडाल में इकट्ठा होते हैं। आज “सिंदूर खेला” होगा। महिलाएँ लाल-पाड़ की साड़ी में, खुले हुए, धुले हुए केश। माथे पर बड़ी लाल बिंदी, हाथों में शंख की चूड़ियाँ। सिंदूर लगा रही हैं, माँ को। एक दूसरे को। हवा सुहागन हो गई। लाल रंग में इतरा रही है। धूनी और दीप प्रकोष्ठ हाथ में लिए, ढाक के उन्मत्त स्वर पर नृत्य करती महिलाएँ, बालाएँ, पुरुष और बच्चे।“लुलु__लुलु” का सांकेतिक और पवित्र स्वर गुँजायमान है ।माँ के जाने का समय हो गया। हृदय-विदारक दृश्य। महिलाएँ रोने लगती हैं, पुरुषों के नेत्र भी छलछला उठते हैं। ढाक के स्वर पर अंगारों पर थिरकता, झूमता जनमानस। माँ की मूर्ति उठाई जा रही है। “दुर्गा मइया की जय” का गगनभेदी स्वर, आवाज की गति को भेद देता है। माँ के आगे नाचते, झूमते युवक, युवतियाँ और बच्चे। कोई मुँह में आग भरकर फूँकता है, कोई अंगारों पर, कोई टूटे हुए काँच पर नाच रहा है।माँ की विदाई में कोई कमी न रहे।हुगली का घमण्ड आज देखते बनता है।आज उसे कौन पा सकता है?हुगली धन्य है। माँ को आज उसी में विसर्जित किया जाएगा। घाट पर सिर ही सिर, लोग ही लोग। पूरा का पूरा बंगाल आ गया है। धन्य है, रे! बंगाल। माँ को जयकारे के साथ धीरे-धीरे हुगली में उतार दिया जा रहा है। प्रचंड भावावेश में हुगली बह रही है। लोगों के आँसू भी इस आवेश में प्रवाहित है। माँ, बच्चों की ओर मुस्कुरा कर देखती हैं और कहती हैं ”आसची”।

१२.

छुट्टियों में प्रायः हम अम्मा के साथ ही खाने बैठते । पापा और भइया को खाना देने के बाद, हम सब अम्मा के साथ बैठते। दीदी को अम्मा की बनाई सब्जी बहुत पसंद आती। अम्मा अपने लिए ना बचा कर दीदी को दे देतीँ, बस, इस बात पर भी उनसे लड़ता और खूब लड़ता। अम्मा कहतीं “बिटिया-बेटवा होंगे तब समझोगे।“ इतना इंतजार करने की जरूरत नहीं पड़ी ।जब अम्मा से दूर, पहली बार जाना हुआ, तो बहुत कुछ समझ में आया।

दीदी के शादी के बर्तनों में, एक पानी का जग, अम्मा ने ₹१०० का लिया था, तब भी बहुत लड़ा था और खूब लड़ा। औचित्य क्या था? कुछ नहीं। जब अम्मा से लड़ता, अम्मा अपनी रिक्त आँखों से मेरी तरफ देखतीं, मानो कहतीं हों, ”मेरी रिक्त आँखों को अगर तुम नहीं पढ़ पाए, तो कौन पढ़ेगा”? उस समय, उस रिक्तता में कितनी पीड़ा भरी रहती, नहीं समझ पाता, भाव कभी नहीं समझ पाया ।पर जब बड़ा हुआ और वही रिक्त भाव अम्मा की आँखों में देखा, उस पीड़ा के गह्वर में डूबता चला गया। अपराध- बोध की गरिष्ठता, धरती का धैर्य भी ना उठा पाता, मैं उठा रहा हूँ। अम्मा के पास शायद शब्द कम थे पर भावों की प्रचुरता थी। वह कम बोलतीं थीं लेकिन उनकी आँखें उनके भावों को स्पष्टता प्रदान करतीं थीं। उन्हीं से मैंने लोगों को उनके कथनों की बजाय उनकी आँखों से पढ़ना शुरू किया।

हमारी सारी बहादुरी अम्मा पर ही खर्च होती, बाकी, उन दिनों, घर में एक तिलचट्टा, झींगुर या पतंगा भी दिख जाता, हम सब सारा काम छोड़, सिर पर पैर रख कर भागते और अम्मा की शरण लेते। अम्मा भी इन सब से घबरातीं थीं पर बड़ी हिम्मत कर, किसी बर्तन से उसे ढँक देतीं। थोड़ी देर साँसें रोके हम इंतजार करते। बर्तन में जरा सी हलचल होती और सब चीखने लगते, तब उस

बर्तन पर और एक भारी वस्तु रख दी जाती। तब जा कर हमारी जान में जान आती ।हम सब बहादुरों में बहादुर थीं, सुधा दी।

रात का समय था। पापा किसी भी वक्त लौट सकते थे। डाँट खाने का जोखिम कौन उठाए! सब दम साधे अपने अध्ययन में लगे थे। अमोघ शांति का आधिपत्य था। कमरे के दरवाजों पर काँच लगे थे। सुधा दी की पीठ ठीक प्रवेश द्वार की तरफ थी। साँसें रोके सब पापा का ही इंतजार कर रहे थे। अचानक दरवाजे पर एक परछाईं दस्तक देती है। किसी को उस तरफ देखने का मौका ही नहीं मिला। जैसे ही दस्तक हुई, सुधा दी बिना इधर-उधर देखें, डर के मारे, पूरी ताकत से लगीं मेज पीटने और लगीं चिल्लाने।

थोड़ी देर के लिए हम भी संगत में शामिल हो गए पर मैंने जाकर दरवाजा खोला, सामने चंद्रा अंकल खड़े हँस रहे थे। बस, ऐसे ही थे हम सब।

दीदी इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पत्राचार माध्यम से बी.ए. कर रही थीं। तभी उनका विवाह तय हुआ। हमारे परिवार का प्रथम विवाह। ताऊ जी की तीन लड़कियों, शैल कुमारी, कुसुम और हेमलता का विवाह हो चुका था। दीदी के लिए भी लड़का, ताऊजी ने ही देखा था। अम्मा कहती रहीं कि एक बार स्वयं जाकर देख आएँ ।पापा नहीं गए। अम्मा, पूर्णिमा दीदी को बहुत चाहती थीं।बड़ी बेटी थीं ।साध भी थी कि अपने-आप देख सुनकर उनकी शादी करें। दीदी को उन्होंने कभी, किसी चीज के लिए मना नहीं किया था। दीदी हमें नई-नई फिल्मों की कहानियाँ सुनाती तो हमें ताज्जुब होता, बाद में पता चला दीदी हॉल में फिल्में देखकर आतीं और उनकी गुप्त आय का स्रोत भी हमारी अम्मा ही होतीं।

हम सब छोटे थे। शादी की सारी व्यवस्था अम्मा को ही देखनी थी। अम्मा को कभी इतना व्यस्त, इतना उदास नहीं देखा था। दीदी पर ही क्रोध आता था। अक्ल तो थी नहीं। फिर पता चला, जो लड़का ताऊ जी ने तय किया है, यह उसका दूसरा विवाह है। पहली विवाहिता की मृत्यु, जलकर हो चुकी थी। वही

रिक्त भाव, अम्मा की आँखों में देखा, पर पापा को समझाना अम्मा के बस की बात नहीं थी और हम सबकी राय का कोई मतलब नहीं था ।

दीदी हमारी, बहुत स्मार्ट थीं। नेशनल लेवल पर कबड्डी खेल चुकी थीं। खेलकूद में हमेशा ईनाम जीततीं। और हाँ! उनकी चित्रकला बेजोड़ थी। हम सब अपनी परियोजनाएँ, उन्हीं से अनुनय-विनय कर पूरा करवाते। फिल्मों की शौकीन, आधुनिक वस्त्रों की शौकीन। सिलाई-बुनाई में बेजोड़। घर में सबके लिए नए-नए डिजाइन के वस्त्र सिल डालतीं। यहाँ तक कि हम सब का स्विमिंग सूट भी उन्होंने ही सिला था । चंद्रा अंकल और आंटी से उनकी खूब छनती ।टीवी देखने, कैरम खेलने वो हमेशा उन्हें बुलाते । जब चंद्रा अंकल नहीं होते, चंद्रा आंटी, दीदी को ही बुलातीं, सोने के लिए। उपन्यास की बेहद शौकीन ।जाने कहाँ-कहाँ से उपन्यास ले आतीं और पापा से छिपकर पढ़तीं ।“रानू” “मनोज” “गुलशन नंदा” “कर्नल रंजीत” “ रघुवंश” और न जाने कितने लेखकों के उपन्यास पढ़तीं थीं। उन्हीं से इस आदत का आविर्भाव, मुझ में हुआ। कहा ना, वो हमारी गुरु थीं।

सब सशंकित थे, क्या शहरी परिवेश में पली-बढ़ीं यह लड़की ग्रामीण परिवेश में बँध कर रह पाएगी? अम्मा चुप रहतीं। बस यही खलता था।

१३.

बाबू की बड़ी बेटी शैल कुमारी का विवाह, प्रतापगढ़ के ईसीपुर गाँव के ठाकुर शिव पूजन सिंह के साथ हुआ था। दूसरी बेटी, कुसुम का विवाह, जगदीशपुर के पास हँसवा गाँव में हुआ। उनका विवाह श्याम बहादुर सिंह के साथ हुआ। तीसरी बेटी हेमलता का विवाह भी, जगदीशपुर के पास, छतौंहा गाँव में जगदीश सिंह के साथ हुआ। हमारी दीदी, पूर्णिमा का विवाह भी, प्रतापगढ़ के सुकुलपुर गाँव के, ठाकुर ब्रजराज सिंह के बेटे, रामकृपाल सिंह के साथ तय हुआ था।

विवाह करने का बेहद अद्भुत प्रचलन था, हमारे यहाँ, उस समय। लड़कियों की राय, उनका मशवरा, कोई मायने नहीं रखता था। सांकेतिक सहमति और घर के बड़े बुजुर्गों की हिलती खोपड़ियों पर एक लड़की का पूरा भविष्य टिका रहता। कमाल की बात यह थी कि लड़की उसी को अपना प्रारब्ध मान, अपने आप को हर तरह से बदल लेती। कितनी हत्याएँ एक साथ होती थी? खेत, बगीचे, धन-धान्य, लड़के- बच्चे, सब ठीक है, दुरुस्त है, किंतु एक पूरे व्यक्तित्व को नष्ट कर समाज अपनी जिजीविषा का पोषण करता और इस तरह समाज का झंडा बुलंद रहता किंतु उसकी नींव में अक्षम्य अपराधों की एक लंबी कतार है जो अंततः समाज की पृष्ठभूमि का काला अध्याय बनकर सामने आती है।

अम्मा जानतीं थीं पर चुप्पी ही उनकी अंतिम शरण स्थली होती। वहीं जाकर अपने अंतर्मन के तूफानों को झेलतीं।

कुछ भी नहीं समझ में आया, बिल्कुल भी नहीं। हाँ, बस हंगामा था, शोर था, चहल-पहल थी ।हमारे लिए बस एक तमाशा ही तो था। हमें क्या पता विवाह की गंभीरता, उसका औचित्य ? पर आज जब यह लिख रहा हूँ, उस समय,

दीदी के अंतर्मन में उठता हुआ तूफान स्पष्ट देख पा रहा हूँ। अम्मा के दो टूक कलेजे से उठते विदाई के गीत सुन पा रहा हूँ। चुनी हुई दीवारों के बीच साँस लेना कितना मुश्किल है, दम कितना घुटता है, दीवार चुनने वाला नहीं, दीवार के अंदर चुना हुआ व्यक्ति ही बता सकता है। आज चाहे जो भी हो, उस समय क्या दीदी के मन से एक आह भी न निकली होगी ?अम्मा कितना रोई होगीं, इसका हिसाब, समय शायद पापा को ना दे पाए।

हमें तो बस घर में जमे मेहमानों का जमघट याद है। भवानी की बनाई हुई बालूशाही और इमरतियाँ याद हैं। द्वारचार पर बजता हुआ बैंड याद है, बारातियों की खाने की पंगत में जगदीश की माई की खुले स्वर में गालियों की ललकार याद है। याद है दीदी की विदाई, अम्मा का रुदन और इन सबके बीच हमारे मन-मस्तिष्क मस्तिष्क में घूमता एक प्रश्न, क्या दीदी सचमुच हमेशा के लिए चली जाएगी? अजीब था यह विवाह का प्रयोजन और औचित्य? एक आमूल चूल कष्ट को परिभाषित करने के लिए इतना बड़ा उत्सव?समाज जीवित रहे इसके लिए ,किसको मरना होगा?

कोलकाता में हाई हील और बेल बॉटम पहनने वाली, क्लब में स्विमिंग करने जाने वाली और फिल्में देखने वाली पूर्णिमा सिंह अचानक घूँघट डाल, प्रतापगढ़ के छोटे से गाँव सुकुलपुर के घर में प्रवेश करती है। अम्मा का एक हिस्सा अम्मा से अलग हो जाता है।

अम्मा अपनी आखिरी साँस तक उस हिस्से का इंतजार करती रहीं।

इधर दीदी घर से विदा हुई उधर हम कलकत्ता से। पापा का स्थानांतरण पहले धनबाद, कोयला नगर में हुआ लेकिन फिर पापा ने उसे स्थगित करवा कर बोकारो करवा लिया। उस समय बोकारो, बिहार राज्य में आता था और जानते हैं, हम कोलकाता से बोकारो तक कैसे आए? ट्रक से ।है ना कमाल! हमारे पापा जिस चीज पर अड़ जाते हैं उसे पूरा करके ही दम लेते। सामान लेकर जो ट्रक ईशापुर से बोकारो आ रहा था, उसी पर हम सबको लादा और चल दिए।

कोलकाता छोड़ने का दुख हम सबको था। पूरा बचपन वहीं बीता था। चंद्रा परिवार से जो हमारी घनिष्ठता रही, वह फिर और किसी से ना बन पाई ।अम्मा भी रोईं थी, चंद्रा आंटी भी रोईं और रोया था 77 ईस्ट, द पार्क। होली के पहले की रात। रात भर छन-छन छनती गुझियाओं की महक क्या भूल सकेगा, ७७ ईस्ट? कभी नहीं। अम्मा और आंटी एक साथ रात भर गुझिया बनातीं और अंकल बिना पहली गुझिया खाए सोते ना थे। हम बच्चे सवेरे से ही "बुरा ना मानो होली है " के नारे बुलंद करते। होली-दीवाली हम एक ही साथ मनाते ।दीवाली में फूटते पटाखों के बीच चंद्रा अंकल का कौतुहल देखते ही बनता था। बिल्कुल बच्चे बन जाते थे। ज्यादातर पटाखे वह और दीदी ही मिलकर छुड़ाते।

केन्द्रीय विद्यालय ईशापुर में आखिरी दिन एक वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। ब्ल्यू हाउस से मेरा नाम था किंतु दूसरे हाउस के कप्तानों ने इस पर ऐतराज जताया क्योंकि मैं टी.सी ले चुका था। हमारी हाउस मास्टर थीं सुधा दत्ता मैडम। छुट्टी में जब मैं जाने लगा मैडम रोने लगीं। ये वही सुधा दत्ता मैडम थीं जिनसे आए दिन मेरी लड़ाई होती थी। शिक्षक और छात्र का इतना अटूट संबंध फिर कभी नहीं दिखा, कहीं नहीं दिखा। सच पूछें तो ईशापुर ही मेरा प्रथम और अंतिम विद्यालय रहा।

कोलकाता के साथ वो अपनापन, वो बेतकल्लुफी, वो त्यौहार सब छूट गए। अपने जीवन का एक हिस्सा कलकत्ता के पास गिरवी रख, स्वयं को कछुए के सिर की तरह अंदर समेट लिया। फिर कभी, किसी भी परिवार या पड़ोसी से ऐसी नजदीकियाँ नहीं रहीं। ऐसे शिक्षक, फिर नहीं मिले।

चलते समय, चंद्रा आंटी ने अम्मा को एक स्टील की प्लेट दी थी, जिस पर "गुड लक" लिखा हुआ था। वह प्लेट अम्मा ने बहुत संभाल कर रखी थी। अभी भी वह प्लेट मेरे सामने ही रखी हुई है, पर अम्मा नहीं हैं।

१४ .बोकारो

बोकारो स्टील सिटी। एक बेहद शांत शहर। काफी साफ-सुथरा। हम करीब आधी-रात बोकारो पहुँचे थे। बिना कुछ खाए-पिए, हम सब की हालत पस्त थी। पापा को जो फ्लैट आवंटित हुआ था, पहली मंजिल पर था। हम सब बच्चे फ्लैट में पहुँचते ही, जिसको जहाँ जगह मिली, पसर गए। रात में पापा, अम्मा और लाल जी ने समान ऊपर पहुँचाया। लाल जी, कोलकाता के प्रसाद अंकल के पुत्र थे, जो हमारे साथ आए थे, अपनी ससुराल, जो कि बोकारो में ही थी। उन्हें वहीं जाना था। सामान पहुँचाते समय, एक खुले बिजली के तार के छू जाने से पापा को तीव्र झटका भी लगा, जिससे वह गिर भी पड़े थे। सामान ऊपर पहुँचाने के बाद, आधी रात में ही पापा ने, नहा कर अगरबत्ती जलाई थी। यह पापा के व्यवहार के बिलकुल खिलाफ था।हम सब सो रहे थे। अम्मा ने दूसरे दिन बताया।

हमने सोचा था, रात में पहुँचे हैं, अगले दिन तो स्कूल नहीं ही जाना पड़ेगा ।सुबह होते ही, हमारे पापा ने सब को स्कूल जाने के लिए तैयार होने को कहा। अम्मा ने ढूँढ़-ढूँढ़ कर सबके यूनिफॉर्म निकाले। सबके लिए खाना तैयार किया। हम स्कूल गए। उसी दिन गए ।ऐसे थे हमारे पापा और ऐसी थी हमारी अम्मा। रात भर दोनों जगे थे किंतु आलस जैसे छू ही नहीं गया था।

दीदी पहली बार अपनी ससुराल से मायके आई थी, बोकारो में। जीजा के साथ आई थीं।दशहरे की छुट्टियाँ थीं। खूब चकल्लस होती। फिल्में देखी गई, सर्कस देखी गई। अम्मा को मना लेते फिर पापा से बहाना कर निकल जाते, सब के सब। एक बार पापा से कह कर गए कि सर्कस देखने जा रहे हैं और गए थे देखने, फिल्म। पापा सब समझते थे। लौट कर आए । सिम्मी सबसे छोटी थी। उसे हम समझाना भूल गए थे ।पापा ने उसे बुलाया और प्यार से पूछा “कहाँ

से आ रही हो”? सिम्मी ने मासूमियत से कहा “गंगा की सौगंध” देखकर । ”खाएँगे गंगा की सौगंध, और नाचेंगे कपड़े उतार कर” पापा ने बस इतना कहा।

हमारी साँसें ऊपर नीचे हो रहीं थीं। पापा को फिल्में देखना बिल्कुल पसंद नहीं। उन्होंने अपने जीवन में बस गिनती की ही फिल्में देखीं हैं। एक बार चंद्रा अंकल के कहने पर टी.वी पर ‘सरस्वतीचंद्र’ देखी। इसके अलावा ‘तुलसीदास’ ’ बसेरा’ ‘क्रांति’ जैसी कुछ चुनिंदा फिल्में ही पापा ने देखीं। फिल्मों के सबसे बड़े आलोचक थे, हमारे पिताजी।

जिस दिन दीदी को लौटना था, मैं बहुत रोया था।

बहुत-बहुत रोया था। दीदी से लगाव तो था ही पर इतने दिन अम्मा बहुत खुश रहीं। अम्मा आज फिर उदास हैं, उनकी उदासी देखकर और रोया। बहुत जिद की कि दीदी कुछ दिन और रुक जाएँ, मगर नहीं रुकीं ।मुझे समझाया कि जल्दी ही फिर आएँगी मगर मेरी समझ में यह सब नहीं आता था। कभी-कभी लगता, इतने साल हमारे साथ रहीं फिर अचानक हम सब को छोड़कर जीजा के साथ क्यों जाना चाहतीं हैं? मुझे पूरे परिवार की आदत थी ।अम्मा का पूर्ण स्वरूप अच्छा लगता था । आधा-अधूरा क्यों लूँ?

भौतिकतावाद की छाया पिछले कुछ सालों से हावी हो रही थी। लोगों के यहाँ टी.वी है, फ्रिज है, सोफा है, टू- इन-वन है। हमारे यहाँ? कुछ भी नहीं। पापा से तो डर था, पर अम्मा को ताने देने में कोई झिझक नहीं होती थी। कलकत्ता में टीवी खरीदने की जिद में कई-कई दिनों तक खाना नहीं खाता था। अम्मा कितनी चिरौरी करतीं ।एक मन करता था, खा लूँ, भूख तो कस कर लगी रहती थी पर टी.वी का लालच रोक देता था कि शायद इस बार पापा मान जाएँ लेकिन पापा नहीं माने । कलकत्ता छूट गया। दूसरे के यहाँ जाकर टी.वी देखना, अब अच्छा नहीं लगता था। पर टी.वी नहीं खरीदी गई ।बोकारो में भी यही नाटक शुरू कर दिया। कभी टीवी के लिए, कभी सोफा के लिए, कभी टू-इन-

वन के लिए ।रोज किसी न किसी बात की जिद। खाना नहीं खाने की धमकी। आज जब अम्मा को याद करता हूँ तो लगता है कितना समय बर्बाद कर दिया था। एक अमूल्य निधि का सानिध्य था और मैं अकिंचन में सुख की तलाश कर रहा था। समय का मूल्यांकन समय बीतने के बाद ही होता है। पर मुझे लगता था कि यह सब चीज आएँगी तो अम्मा को भी अच्छा लगेगा ।चाहता था उन्हें भी वह सब मिले जो बाकी सब के पास है। बहुत जिद हुई तो एक सेंटर टेबल और एक सोफा खरीदा गया। सोफे का कवर भी सिलवाया गया।

उन दिनों पावर के स्पोर्ट्स शूज बहुत चले थे । ज्यादातर लड़कों के पास थे। हमारे पास बस स्कूल के काले और सफेद जूते थे ।एक बार मैंने अम्मा से उसके लिए जिद की। एक शाम, अम्मा मुझे लेकर सिटी सेंटर गईं। अपने पैसों से मुझे जूते दिलवाए। 105 रुपए के खूबसूरत सफेद, टखनों तक के, पावर के जूते । पापा को पता भी नहीं चला। आज भी सोचता हूँ, इस घर में कितनी घटनाएँ ऐसी हुई, जिसका पापा को पता भी नहीं ।क्या हुआ ?कब हुआ? कैसे हुआ ? अम्मा अकेले सब सँभाल लेतीं थीं। अक्सर, अम्मा, पापा के लिए ढाल का काम करतीं।

केंद्रीय विद्यालय नंबर 1 बोकारो स्टील सिटी की ट्रिप मैथन डैम गई थी। अध्यापकों के परिवार भी उसमें सम्मिलित थे ।हम सब भी गए थे।वहाँ खाने-पीने का भी प्रबंध था किंतु प्रबंध और खाना दोनों अधूरा ही रहा। कई लोग भूखे ही लौट आए। हमारा नाम भी उन्हीं में था। भीड़ में खाने वालों में हमारा परिवार सदैव ही फिसड्डी रहा है।लौटने में काफी रात हो गई थी ।घर पहुँचे, बिजली नहीं थी। लालटेन जलाई गई । सामने कमरे में एक अंतर्देशीय पत्र पड़ा था। डाकिया दरवाजे के नीचे से डाल गया था। उठाया, देखा, दीदी का था। अम्मा के पास ले गया। सारे पत्र, अम्मा को, हम ही पढ़कर सुनाते थे । पत्र में दीदी ने मुझे आकर, उन्हें लिवा लाने को कहा था। उन्हें वहाँ अच्छा नहीं लगता था। अम्मा रुँआसी हो गईं। मैंने कहा, मैं जाऊँगा लाने। अगली सुबह पापा नाश्ता कर रहे थे, उसी समय दीदी का पत्र देकर, मैंने कहा "मैं दीदी को लाने

जाऊँगा”। पापा ने आव देखा न ताव। थाली उठाकर फेंक दी। यह क्या था? पुरुष होने का दम्भ या अम्मा की शालीनता पर प्रहार? जो भी था, नृशंस था। उससे क्या हुआ? अम्मा की पीड़ा मेरे अंदर प्रतिकार बनाकर भरती जा रही थी। दीदी को लाने नहीं गया। पत्र का जवाब पापा ने दिया या नहीं, मुझे नहीं पता, पर___________।

हाँ! मैं अपने आपको सामाजिक सरोकारों और भाव-भंगिमाओं से काटता जा रहा था । इस बात का अहसास मुझे हो चुका था । विद्यालय में मेरी खामोशी, अकेलापन, इस बात का द्योतक थी। स्त्री किसी भी रूप में हो जब वह विशुद्ध स्त्री होती है, बिना रिश्ते-नाते के कलेवर के, तो वह नितांत अकेली होती है। अम्मा भी जब अम्मा नहीं होतीं, पत्नी, बहन, बिटिया नहीं होतीं, केवल चंद्रावती होतीं तो वह नितांत एकाकीपन की प्रक्रिया से गुजरतीं और मौन साध लेतीं। एकल संवाद की प्रक्रिया न समाज को समझ में आती है, न समाज में स्वीकार्य है।

बोकारो में हम ज्यादा दिन नहीं रहे। दो साल के अंदर ही पापा की प्रोन्नति नवोदय विद्यालय में प्राचार्य रूप में हुई। जिस पैंट को पहन पापा ने साक्षात्कार दिया था, वह एक किनारे से फटी थी। दूसरी पैंट थी नहीं। उनकी पहली पोस्टिंग डोडा, कश्मीर में हुई थी ।वहाँ पापा अकेले ही गए थे । वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ परिवार के रहने के अनुकूल नहीं थीं। लगभग असंभव था। उन्होंने नई नियुक्ति के लिए आवेदन किया। उन्हें नवोदय विद्यालय मसरिया में नियुक्ति मिली। एक रात, पापा जीप लेकर आए, सबको भरा और अलविदा, बोकारो। कोई भूमिका नहीं बाँधी जाती थी, बस पटाक्षेप होता था। बोकारो बोला “ये क्या था”?

१५ . गुमला (मसलिया बाँध)

सुधा दी बहुत रोई, बहुत रोई, बहुत रोई। क्यों ?पापा, हम सबको बोकारो से ले आए थे। सारा समान वहीं था। और एक दिन, पापा, फिर अचानक, बोकारो गए, हम सबको बिना बताए। केवल कुछ ही समान लेकर लौटे। नया सोफा, सेंटर टेबल, बेड, बड़ी टेबल, सब, औने-पौने दाम पर ऊपर रहने वाले, बी.आर .सिंह को बेच दिया। अम्मा के बड़े जतन से सहेजे हुए अचार के बड़े-बड़े काँच के मर्तबान, जो आजकल कहीं दिखाई भी नहीं देते, सब छोड़ आए थे ।सुधा दी, सुधा दी थीं। रोने लगीं। अम्मा नहीं, सुधा दी रोई। ऐसी ही हैं। कहाँ, कब किस बात पर रो दें, भरोसा नहीं। बोकारो में, पढ़ते-पढ़ते, कोई चीज न समझ में आती तो रोने लगतीं। बहुत बोलीं थीं ट्यूशन लगवाने के लिए, पापा ने नहीं लगवाई। नियमित कॉलेज के लिए बहुत रोई थीं लेकिन पापा ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पत्राचार से ही बी.ए में दाखिला करवाया। टू-इन-वन का बड़ा शौक था। वो भी न पूरा हो पाया। अम्मा परिस्थितियों से समझौता कर स्वयं को बेहद मजबूत रखतीं। पापा, अम्मा को नजरअंदाज तो नहीं करते थे पर सिक्का उन्हीं का चलता था। और सिक्का चलातीं थीं, अम्मा। शायद पापा को इस बात का अहसास था, वह स्वीकार करें या ना करें, पर सच यह था कि अम्मा ही पापा का संबल थीं, इसलिए पापा को ना कभी टूटते देखा ना झुकते। अम्मा को कभी पापा से अलग नहीं देखा जा सकता था। उनके निर्णय में, सही या गलत, अम्मा सदैव साथ खड़ी रहीं शायद यही विश्वास पापा को सदैव एकल निर्णय लेने की छूट देता था।

मसरिया। एक बाँध। पूर्ववत बिहार, वर्तमान झारखंड के गुमला जिले के घाघरा ब्लॉक के अंतर्गत आता था। राँची से करीब सौ किलोमीटर, गुमला शहर से २५ किलोमीटर और घाघरा से ५ किलोमीटर पर मसरिया मोड़ है, जहाँ से

ढाई-तीन किलोमीटर अंदर एक बेहद खूबसूरत प्राकृतिक रहस्य की गोद में मसरिया छिपा था। पहाड़ी की तलहटी पर बसा, बेलाघड़ा और हालमाटी गाँव के बीच। पहाड़ की दाहिनी ओर मसरिया बाँध और बाँध से ही सटा, उत्तरी हिस्से में नवोदय विद्यालय मसरिया ।जब देश में नवोदय विद्यालय प्रारंभ हुए, शुरुआती नवोदय विद्यालयों में से एक, नवोदय विद्यालय मसरिया था।

रात ७:००-८:०० बजे जीप से हम मसरिया पहुँचे। घना अँधेरा था। बिजली थी नहीं। सब थके-माँदे थे। अस्थाई निवास में ही रुके थे। ऊपर टीन शेड था। पापा ने खाना मेस से मँगवाया। थोड़ा बहुत खा-पीकर सब सो गए। पर रात जैसे गल रही थी। इतनी ठिठुरन कि क्या बताएँ ! टीन शेड से ओस बरस रही थी। पूरा बिस्तर गीला हुआ जाता था। जैसे-तैसे रात कटी।

सुबह हुई, जैसे प्रकृति ने जादुई पिटारा खोल दिया। बाहर का दृश्य अत्यंत लुभावना और मनमोहक था। शहर की बकझक से बिल्कुल दूर, एक नितांत खामोशी, प्रकृति के आंचल में, किलोल कर रही थी। ऐसा लगता था काबुलीवाले ने मिनी के लिए झोली खोल दी थी।

कोई पुराना गोदाम सा था, जिसे अस्थाई प्राचार्य निवास बना दिया गया था। ऐसे ही कई अस्थाई भवनों में छात्रावास, विद्यालय, कार्यालय, स्टोर रूम वगैरह का कार्य चल रहा था। प्राचार्य निवास और छात्रावास के बीच से कच्ची,पथरीली सड़क बाँध तक जाती।

पीने का पानी, बाँध के काफी पीछे से आता, जहाँ पंपिंग सेट लगा था । पंपिंग सेट चला कर, फिर बँहगियों में लगे कनस्तरों में भर, वो आदिवासी मजदूर, पूरे विद्यालय परिसर में जल आपूर्ति करते।

कठोर श्रम करते लेकिन मुस्कुराते रहते। काले चमचमाते बदन पर, बाँध में बँधे जल की स्वतंत्र साँसें ,पसीने की बूँदे , मोतियों सी चमकती रहतीं, यही सच्चा पारिश्रमिक था, जिसका मोल चुकाने की ताकत, रूपए में न कभी रही है, न रहेगी। रुपया, पारिश्रमिक नहीं, मजबूरी है।

उनकी अपनी आदिवासी बोली थी।कुछ लोग उराँव भाषा का प्रयोग करते। हिंदी बहुत कम ही लोग समझ पाते। वहाँ के स्थानीय कर्मचारियों से सहयोग लेना पड़ता। शहरों की व्यावसायिकता के मापदण्ड पर फिसड्डी, अत्यंत पिछड़ा पर प्राकृतिक रूप से अत्यंत संपन्न क्षेत्र। बिजली कई-कई महीने नहीं आती थी। गाँव में तो बिजली थी ही नहीं। कई जगह तो लोगों ने साइकिल वगैरह कभी देखी ही नहीं थी। लालटेन, पेट्रोमैक्स और गैसोंमैक्स पर पूरा का पूरा विद्यालय परिसर निर्भर रहता था। इतनी जटिल परिस्थितियों में सपरिवार रहना नामुमकिन था किंतु पापा को चुनौतियाँ अच्छी लगतीं थीं। संघर्षों की जमीन से उभरा हुआ व्यक्तित्व, असंभव में ही संभव का रोमांच ही देखता है। पूरी व्यवस्था खड़ी करनी थी। कोई हँसी खेल ना था। दिन में तापमान काफी सुकून भरा होता और जलवायु आकर्षक रहती।रात में हड्डियाँ गला देने वाली ठंड पड़ती और ओस टपकाता टीन शेड। पर पापा टिक गए।

अम्मा को सबसे अधिक तकलीफ हुई। पानी की भयानक समस्या थी। बड़े-बड़े ड्रमों में पानी एकत्र करना पड़ता था। रसोई के लिए अलग, शौच आदि के लिए अलग, नहाने के लिए, कपड़े धोने के लिए। पर अम्मा बेहद कुशल गृहणी थीं। जल्द ही सब व्यवस्थित कर लिया। और उन आदिवासियों से भी अपने तरीके से संवाद में पारंगत हो गईं। बंधन, चरवा, झरिया, बंदी, बुद्धदेव, ये सब पानी भरने आते थे। अम्मा इन्हें चाय पिलातीं, खाने-पीने को भी देतीं और फिर हमारी अम्मा सब की मम्मी बन गईं।क्या छोटा, क्या बड़ा? मजदूर, नौकर-चाकर, शिक्षक, लिपिक, व्यावसायी, दुकानदार, सब अम्मा को मम्मी बुलाने लगे। पापा सबके साहब थे और अम्मा सब की मम्मी। बड़ा कौन?

अम्मा १० साल बंगाल में रहीं लेकिन उनकी बोलचाल के लहजे में जो अवधी भाषा की मात्रा थी, वह जस की तस बनी रही। वहाँ के आदिवासी ज्यादातर इस भाषा में सहज रूप से बातों को समझ पाते। उनकी आदिवासी भाषा के साथ यह काफी मेल खाती थी। वे जब अपनी भाषा में हिंदी मिश्रित करते, वो, अम्मा और उनके बीच में अच्छा समन्वय स्थापित कर देता।

बाँध का पंपिंग- सेट खराब हो गया। पीने के पानी की विकराल समस्या थी। पापा ने वहाँ हैंडपंप लगवाने का निश्चय किया। अधिकारियों ने, स्थानीय अफसरों ने कहा, असंभव है, नीचे सिर्फ चट्टानें हैं। किंतु पापा अडिग रहे। ड्रिलिंग करवाई गई। बड़ी-बड़ी मशीनें आईं। काफी मेहनत के बाद, कई महीनो के बाद, पानी निकला और हैंडपंप लगा। उस इलाके का पहला हैंडपंप। इसके पहले वो बाँध ही दोनों गाँवों में जलापूर्ति का स्रोत था। पत्थर से पानी निकाला गया।

१६.

तय यह हुआ कि मुझे और प्रतिभा को कुछ साल बनारस में चाचा के यहाँ रहना होगा। मसरिया या आस-पास हमारे पढ़ने की सुविधा नहीं थी। सुधा दी, सुमन और सिम्मी यहीं पापा के पास रहेंगीं। सुधा दी पत्राचार कर रहीं थीं। सुमन का दाखिला नवोदय विद्यालय मसरिया में हो गया था और सिम्मी? बेलाघड़ा के एक प्राइमरी स्कूल में।

जिस दिन हमें जाना था, उसकी पहली रात अम्मा ने बस खिचड़ी बनाई थी, लेटी रहीं। सर दर्द हो रहा था। सिर पर कपड़ा बँधा हुआ था । हृदय का आवेग उस आवेश को पहचान रहा था जो अम्मा के हृदय में उठ रहा था। कभी अम्मा से दूर रहे नहीं, कहीं गए नहीं । अम्मा बेचैन थी। अम्मा से अलग, अम्मा से दूर, सोचकर रात भर नींद नहीं आई। सुबह जल्दी उठकर तैयार हो गए। अम्मा की आँखें रिक्त थीं और घर में खामोशी।

घर से निकलते ही बनारस का जोश काफूर हो गया। मन कर रहा था, कुछ ऐसा हो जाए, जिससे जाना रुक जाए। घर में इस समय क्या हो रहा होगा? सब क्या कर रहे होंगे? क्या अम्मा रो रही होंगीं? सुमन, सिम्मी क्या कर रहीं होंगी ? इन्हीं सब ख्यालों में, रास्ते भर, गुजरती दुकानों पर नजर रहती। लौटते समय सिम्मी, सुमन के लिए क्या लेकर जाऊँगा? अम्मा को क्या पसंद आएगा? यही सब सोच कर, अपने आप से बातें करता। अम्मा की तरह, मैं भी सदैव अंतर्मुखी रहा हूँ। बेहद घरेलू प्राणी ।जिसे अपने परिवार में उठना-बैठना, बोलना, हँसी-मजाक अच्छा लगता था।

कलकत्ता में भी पापा ७:०० बजे ट्यूशन पढ़ाने जाते और ९:०० बजे लौट कर आते। हम ७:०० बजने का इंतजार करते और जैसे ही पापा गेट के बाहर, हम सब अम्मा को घेर लेते । बस, भैया चुपचाप मेज पर बैठकर पढ़ते रहते । उनकी निश्चित जगह थी, निश्चित समय था। हम अम्मा को घेर लेते और उनकी बातें सुनते। कभी उतुरी की बातें, कभी भैरोपुर, कभी कानपुर की। कभी-कभी भैया

के साथ गलियारे में क्रिकेट खेलते। क्रिकेट, भैया ने ही सिखाया था। उसके नियम, भारत के मशहूर खिलाड़ियों से परिचय भी भैया ने ही करवाया था। क्रिकेट का मैच होता और पापा घर पर ना हो तो हम ट्रांजिस्टर चला कर कमेंट्री सुनते। गेट की आवाज होते ही ट्रांजिस्टर बंद, क्रिकेट बंद और अम्मा के किस्से बंद। सब वापस अपनी पढ़ाई में लग जाते। पापा सब जानते थे, पर हम समझते थे हम ही होशियार हैं।

बनारस से, हम, पहली बार छुट्टी में मसरिया आए थे। सब कुछ नया-नया लग रहा था। अम्मा को देखकर कितनी प्रसन्नता होती थी। हमेशा जब भी बाहर से आते और अम्मा को देखते एक अजीब सा सुकून मिलता। सिम्मी, सुमन, सुधा दी सब खुश थे। परिवार फिर एक साथ था।

चाय हमारे घर का एक बेहद अतरंगी सदस्या थी। जी, हाँ! हम एक साथ बैठकर चाय पीते, खाना खाते और खूब गपड़ताल होती ।पापा नहीं शामिल होते थे। पहले पापा को दे दिया जाता। फिर हमारी महफिल जमती। मैं जब भी बाहर से आता, सबसे पहले चाय की ही फरमाइश होती। चाय की चुस्कियों के साथ अंतर्मन के झोले खोल दिए जाते और उसमें से क्या कहानी, क्या किस्से निकलते! कुछ नमकीन, कुछ तीखे, कुछ खट्टे, कुछ मीठे। फिर नहाने-धोने के बाद, एक दौर और चाय का, और उसके साथ खुलता असली पिटारा, अपना असली पिटारा! सबके लिए कुछ ना कुछ! छोटा, बड़ा कुछ ना कुछ लेकर आता। खाली हाथ नहीं आता था। घर के लोगों की प्रतिक्रिया अच्छी लगती थी। अम्मा का चेहरा निहारता। अम्मा हमेशा कहतीं “काहे बिना मतलब इतना खर्च करते हो”? । पर मैं जानता था उन्हें अच्छा लगता था। और सिम्मी! वह इन सब से सबसे ज्यादा खुश रहती थी। उसे इन सब का बहुत शौक था । उसने मेरी दी हुई चीज बहुत करीने से संभाल कर कर रखी थीं। सुमन! वह तो इनके रैपर भी संभाल कर रखती थी और अम्मा ?आज भी उनकी अलमारी में वैसे ही व्यवस्थित रखी हैं, वो सारी चीजें। वह पुराने पर्स, वह साड़ियाँ, सब वैसे के वैसे ही रखे हैं। अम्मा नहीं हैं।

१६.

मसरिया में चाय का कोई अंत न था। दिन-रात चाय बनती । कोई ना कोई आता रहता। चाय बनती रहती। अम्मा थकती नहीं थी। अम्मा के सहयोग के लिए एक लड़की आती थी। सुशीला, १८- १९ साल की। बेहद शालीन तरीके से साड़ी पहन, बाल बनाकर आती। उसकी बोली पूरे विद्यालय परिसर में शायद सबसे मीठी बोली थी। बातें करती तो जैसे गीत गा रही हो। क्रोध में भी बोलती तो वहीं ठहराव, वही लय। उससे कोई नाराज हो सकता था भला? कुछ साल पहले पता चला उसका देहांत हो चुका है। अम्मा के साथ, उनसे जुड़े उन सभी छोटे सितारों को जगह दे रहा हूँ जिनमें चमक तो थी किंतु जिन्हें आसमान नहीं मिला। उनकी खोज नहीं हो पाई ।बड़े सितारे ढूँढ़े गए, उन्हें तराशा गया, उन्हें प्रायोजक मिल गए। नहीं मिले तो वो छोटे सितारे, जिनकी चमक में ही बड़े सितारे चमकते रहे। कितने नाम लिखूँ। झरिया, चरवा, बंदी बुद्धदेव, सूरज, बंधन । खलीफा तो ये सब थे किंतु प्राकृतिक, कुछ कृत्रिम था ही नहीं। निराश समाज ने कहा "बनाव-श्रृंगार कहाँ है"? सब के सब सामाजिक सामान्य-ज्ञान से बाहर कर दिए गए।

कोई भी हो, चाय का बर्तन इन सब के लिए चढ़ा रहता। अस्थाई निवास से सटा, एक खुला हिस्सा था चारदीवारी से घिरा। शाम की चाय की बैठक वही होती थी। कभी-कभी वहाँ, स्थानीय लोगों का मजमा भी लग जाता था। उनके किस्से सुनने को मिलते थे। इनमें सबसे प्रचलित था, बंधन उराँव का किस्सा। बंधन, रात में चौकीदारी करते। उनकी एक आँख तिरछी थी। उनके अनुसार, रात में मसरिया में एक आदमी घूमता था, जिसका सिर कटा हुआ था।बताते समय उनकी तिरछी आँख और तिरछी हो जाती और चेहरे से भय, रहस्य और तिलस्म के सारे रस टपकते। किसी साहित्यिक विधा में इतनी सजीव प्रस्तुति असंभव थी।शुरुआत में जो भी आया ,उनके इन किस्सों से डर गया, लेकिन

धीरे-धीरे यह एक मजाक बन गया और फिर मिथक। क्योंकि उस सिरकटे व्यक्ति को, सिवाय बंधन के, और किसी ने नहीं देखा था। लेकिन बाद में कई प्रतिष्ठित लोगों ने इसकी पुष्टि की कि केवल बंधन उंराँव ही नहीं और कई लोगों ने ऐसे सिरकटे व्यक्ति को देखने का दावा किया था। प्रत्येक स्थान से जुड़े कुछ ऐसे किस्से होते हैं जो उसके हिस्से होते हैं, जिन्हें उनसे अलग नहीं किया जा सकता।

एक और दिलचस्प व्यक्ति था, झरिया उराँव। अस्थायी जमादार के रूप में नियुक्ति हुई थी। ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था। उन दिनों मानव-संसाधन-विकास-मंत्रालय, स्वर्गीय नरसिंह राव के पास था। नवोदय विद्यालयों में अधिक से अधिक नियुक्ति स्थानीय लोगों में से ही हो, ऐसा सरकारी आदेश था। झरिया अनपढ़ था किंतु देखते ही देखते उसने कई क्षेत्रों में महारत हासिल कर ली। खासकर बिजली के कार्यक्षेत्र में।कहीं भी बिजली की समस्या हो, झरिया को याद किया जाता। उन दिनों इतवार को "महाभारत" आता था, दूरदर्शन पर। अगर बिजली नहीं आती तो झरिया ट्रांसफार्मर से सारी लाइनों की जाँच करता । कभी-कभी ट्रांसफार्मर से गड़बड़ी होने पर, वह ठीक भी कर देता था किंतु यदि पावर हाउस से ही बिजली कटी हो तो इनवर्टर और बैटरी का इंतजाम होता। महाभारत शुरू होने से पहले ही सारा अमला नहा-धोकर तैयार रहता ।यह जुनून ऐसा वैसा नहीं था। एक बार हमारे यहाँ कुछ ग्रामीण महिलाएँ आई थी, महाभारत देखने। टी.वी के सामने नीचे बैठी थीं, संख्या अधिक होने के कारण। जब धारावाहिक समाप्त हुआ और सब चली गईं तो हमने देखा, जहाँ वे बैठी थीं वहाँ उन्होंने पूजा के फूल चढ़ा रखे हैं। ये स्वाभाविक श्रद्धा थी, धर्म के नाम पर कान फाड़ देने वाला शोर नहीं।

१७.

दीदी ने लड़की का नाम गोल्डी रखा, दूसरा नाम एकता।

अम्मा को नातिन हुई थी। अम्मा की खुशी कौन नाप सकता था? तीसरी पीढ़ी का प्रथम चरण। सिर आँखों पर बिठाई गई। दीदी तदर्थ शिक्षक के रूप में उसी नवोदय विद्यालय में सामाजिक-उपयोगी- उत्पादन-कार्य-शिक्षिका के रूप में नियुक्त की गई थीं। हमारे साथ ही रहतीं थीं। अम्मा का जी लग गया। गोल्डी की देखभाल में वे दिन रात व्यस्त रहतीं। घर का खिलौना थी, गोल्डी। अलग-अलग पोशाकों में उसकी तस्वीरें खींची जातीं। खिलौनों की भरमार थी, उसके लिए। मैं कहीं भी जाता तो उसके लिए अलग-अलग किस्म के खिलौने जरूर लाता । इसका एक निजी कारण भी है। खिलौनों से मुझे शुरू से लगाव रहा है। आज तक है। एक भालू था जिसे हिलाने पर वह "डिंगडांग" की आवाज करता। एक दिन वो बेड से नीचे गिरा और टूट गया। गोल्डी बहुत रोई। वैसा खिलौना दोबारा ढूँढ़ने की बहुत कोशिश की, कहीं नहीं मिला। घर में कुछ ना हो, बस एक बच्चा हो, घर भर जाता है। और घर भरा हो, घर में बच्चा ना हो, घर खाली हो जाता है। हमारी अम्मा भी बच्चों में भरी-भरी रहतीं और बच्चे ना होने पर खाली हो जातीं। उनका अपना तरीका था बच्चों की परवरिश का। शायद आधुनिक समाज में उन परवरिश के तरीकों को तरजीह ना दी जाए लेकिन उनका तरीका, अपना तरीका था जिसे वह कभी नहीं बदलतीं। गोल्डी ने अपने बचपन के शुरुआती दिन, अपनी नानी के साथ बिताए। ज्यादातर वह नानी के पास रहती। कभी-कभी नाना के साथ घूमने निकल जाती थी, बाँध की तरफ या गाँव की तरफ। मसलिया के पपीते बेहद स्वादिष्ट होते थे। जैसे शक्कर घुली हो। बीज बहुत कम होते थे उसमें।की लोगों ने वो बीज अपने यहाँ लगाया किंतु वैसे शानदार पपीते नहीं हो सके। तीन-तीन , चार-चार किलो के पपीते होते थे। जो भी मसरिया आता उन पपीतों का कायल हो जाता।

गोल्डी को भी वहाँ के पपीते बेहद पसंद थे। उसे खाने के लिए पपीते छोटे-छोटे टुकड़ों में कर के लिए जाते जिन्हें वो फल खाने वाले प्लास्टिक के छोटे-छोटे, रंग-बिरंगे काँटों से उठा कर खाती। ये उसकी आदत में कुछ ऐसा शुमार हुआ कि एक बार सुल्तानपुर में जब दीदी ने उसे पपीता खाने को दिया वो उन्हीं काँटों की माँग करने लगी। जिद पर ऐसा अड़ी कि जब तक वो काँटे बाजार से नहीं लाए गए, पपीते को उसने हाथ भी न लगाया। बच्चे घर के मनोभाव को जीते हैं , बड़े मकानों के क्षेत्रफल। इन्हीं बच्चों का हाथ पकड़कर हम उन्हें घर से मकानों में ले आते हैं और फिर उनकी संवेदनहीनता का रोना रोते हैं। ऐसा नहीं चलेगा।

घर एक संकुचित मकान नहीं होता।उसमें दीवारें तो होती ही नहीं हैं। संवेदनाओं के तार में दौड़ती धड़कनों की अदृश्य विद्युत-तरंगों की चपेट में आने वाले ही घर होते हैं। कहीं भी रहें , घर में ही रहते हैं।अम्मा ने यही सिखाया,अम्मा ने यही बताया।अम्मा हमारी, रिश्तों से संतुष्ट होने वाली जीव नहीं थी, रिश्तो में संतुष्ट होने वाली जीव थीं। पर अम्मा की मृत्यु पर गोल्डी नहीं आई। अम्मा को समझना बहुत मुश्किल था।

जब हम मसरिया में थे, सुधा दी का विवाह तय हो गया था। इसे भी हमारे बाबू ने ही तय किया। सुधा दी को नियमित रूप से कॉलेज में दाखिला न ले पाने का दुख था। उन्हें नियमित रूप से कॉलेज जाने का बहुत शौक था। उनके बारहवीं के नतीजे जब आए, सब हैरान रह गए। किसी को उम्मीद नहीं थी, इतने बेहतरीन प्रदर्शन की। पढ़ते समय कुछ समझ नहीं आता तो रोतीं।रोतीं और पढ़तीं जातीं । प्रयास में कभी कोई कमी नहीं थी पर अक्सर हमारी सोचने की दिशा और दशा कागज़ी हो आवश्यक नहीं। बचपन में हिन्दी की परीक्षा में ‘ जो मिठाई बनाता हो’ के लिए एक शब्द लिखने को आया।उन्होंने लिखा ‘भवानी’। युधिष्ठिर के अर्धसत्य सा। हमारे गाँव में भवानी ही मिठाई बनाते थे।

बहरहाल उन्हें आशा थी कि अब उन्हें नियमित कॉलेज में दाखिला मिल जाएगा। उन्हें भी पापा ने पत्राचार माध्यम से बी.ए. में दाखिला दिलवाया था, इससे वह नाराज रहती थीं। विवाह के लिए उन्होंने पहले से ही कह दिया था, बिना नौकरी-पेशे वाले लड़के से विवाह न करेंगी। जगदीशपुर के पास जमोरवा गाँव के सुरेश बहादुर सिंह के दूसरे सुपुत्र उमाशंकर सिंह से उनका विवाह तय हो गया था। इस बार भी पापा तय करने नहीं गए । अम्मा कहती रहीं, अपनी लड़कियाँ हैं, कम से कम शादी ब्याह तो खुद तय करो। लेकिन पापा नहीं मानते थे। उमाशंकर सिंह भारतीय सेना में लिपिक पद पर कार्यरत थे। विवाह हुआ ।अम्मा मन मार कर रह गई। सुधा दी जब ससुराल पहुँची, उनके पैरों तले जमीन खिसक गई। पूरा घर ढहा हुआ था, बस एक कच्चा कमरा सलामत था।

किस आधार पर विवाह तय हुआ था, नहीं जानता ।इन सब मामलों में मेरी पूछ नहीं थी, बल्कि मेरी पूछ कहीं नहीं थी। पर आश्चर्य अवश्य होता था। यह कौन सा वर्ग है समाज का, जो देखकर मक्खी निगल लेता है ? पापा ने कभी भी क्यों स्त्री-जनित पीड़ा महसूस नहीं की? कैसे वह इतने निष्ठुर रहे कि शहर में पली-बढ़ी लड़कियों को ग्रामीण परिवेश में छोड़ दिया? या तो उनका लालन पोषण ही ग्रामीण परिवेश में किया गया होता। पौधे की जमीन बदलने से हो सकता है पौधा मरे नहीं, जीवित रहे किंतु उसके स्वाभाविक गुणों में आशातीत परिवर्तन होगा। वह कभी अपनी प्रकृति को नहीं जी पाएगा ।उस पौधे को हीरे-मोती, सोने-चांदी, किसी से भी सजा दिया जाए, पौधा अपनी पौध खो देता है। उसे फिर नहीं पा सकता, कभी नहीं। सामाजिक निष्ठुरता का शीर्ष वह होता है जहाँ दो परिवार एक सांस्कृतिक आयोजन को अपने अहंकार क्षेत्र में गाड़कर, आजीवन सम्मान की चक्की में कई जीवन एक साथ पीस डालते हैं। विवाह दो परिवारों का मेल होता है, इसमें कोई शंका नहीं किंतु उससे पहले दो जीवन का पुनर्जन्म होता है, जहाँ सहभागिता की समझ होनी चाहिए। स्त्री पर पुरुष के दंभ की प्रताड़ना, स्त्री का स्वयं को पीड़ित दिखा अनुचित संवेदना की भीख, दोनों ही वैवाहिक अभिशाप है। कर्तव्य के मार्ग पर एकाधिकार का लोभ मात्र

एक ही जीवन फलने-फूलने देगा। दूसरा अपने नैसर्गिक स्वरूप को त्याग कर उधार की स्मृतियों में धीरे-धीरे विलुप्त हो जाएगा। किंतु हमारे पापा और बाबू शायद इससे सहमत ना हो। हाँ, हमारे चाचा की विचारधारा उन दोनों के सापेक्ष अधिक उदार रही है।

१८.

इस देश में भ्रष्टाचार की जो हरित क्रांति हुई, वो, इतनी तीव्रता से, इतनी एकाग्रता, इतनी कर्तव्य-निष्ठा से पनपी कि ईमानदारी को खरपतवार समझकर उखाड़ फेंका गया। उदाहरण की प्रतिक्रिया मत दीजिए, गलत को गलत न कहना भ्रष्टाचार ही है, सही को गलत कहना भयानक भ्रष्टाचार है और सही और गलत की पहचान न कर पाना अक्षम्य भ्रष्टाचार है। लेखक, कवि, दार्शनिक चीखते रहे , "बस करो, भाई! देश सूख जाएगा"। लोगों ने कहा, "बक्। क्या बकवास कर रहे हो? हम ही देश हैं।हम हरे-भरे तो देश हरा-भरा "।कितना कहा गया "राम- नाम की लूट है लूट सके तो लूट"।उसे लूटने कौन जाए, देश को लूटने की कतार में हैं, एक बार हट गए तो पता नहीं कब नम्बर आए? तो राम ही के नाम पर लूट लो! हाँ, ये ठीक है, एक पंथ दो काज। धीरे – धीरे इस हरित-क्रांति ने स्वयं को जीवन के समस्त क्षेत्रों में समदर्शी भाव से,पूरी ईमानदारी से स्थापित कर लिया। इतना व्यवस्थित साम्यवाद, पूँजीवाद के अथक परिश्रम का श्रद्धा भाव ही है जिसने भक्ति- काल को ऐतिहासिक धरोहर होने से रोक दिया। तुम रहो अभी। कहीं मत जाओ। प्रेरणा तुम ही तो हो। हाँ, लूट की प्रेरणा ईमानदारी और भक्ति-भाव से ली गई और लोग कायम रहे, उसपर।सब ईश्वर ही तो करता है, गीता में कृष्ण कह गए हैं। कायम रहो उस पर। डरने की क्या बात है?

हमारे पापा, बाबू और चाचा। ईमानदारी के तीन बंदर। जिन्होंने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया पर ईमानदारी का चोला नहीं उतारा। सरकारी ठेंगे बदल गए, गाँधी जी रुपए पर छप गए, अशोक के चारों सिंहों को रूपए के खूँटे से बाँध दिया गया।तुम किधर चले? चुपचाप खड़े रहो यहीं। गाँधी नहीं भाग पाए पर उनके बंदर भाग खड़े हुए और अपने ईमानदार संघर्ष की गाथा में लुप्तप्राय हो गए। सरकार ने उन्हें विलुप्त प्रजाति मान लिया। उतुरी में जाकर मिले। ये, वो

लोग थे जो पंद्रह-बीस मील पैदल विद्यालय जाते। एक ही पायजामा महीनों पहनते। सिर पर मिट्टी ढो कर तालाब पाट दिया। रोटी और प्याज खाकर दिन गुजार दिए। वो दिन सुधर गए पर ये नहीं सुधरे। ईमानदारी के नशे की ऐसी लत लगी कि सरकार और व्यवस्था के सामने सीना तान खड़े हो गए। सरकारें ऐसे ही पाजियों के कस-बल ढीले करने के लिए तो है। कैकयी से बड़ा मुँह फुला बैठी । नतीजतन, आज भी दूर से ही दुआ-सलाम है। अपने-अपने वनवास में व्यस्त हैं तीनों।

न, सरकारें ऐसे ढीठ, ईमानदारों को नहीं पहचानतीं। सरकार को ऐसे अनपढ़ों की क्या आवश्यकता जो आज तक दो और दो चार ही बताते हों। सरकारों ने दो और दो पाँच की पूरी व्यवस्था खड़ी कर दी, कितनी सरकारों ने सिर मुँडवा डाले, मूँछों पर ताव टाँग दिए, पर ये तीनों टस से मस न हुए। तरक्की के नए फलसफे दो और दो पाँच की इबारत पढ़ने को तैयार ही नहीं। एकदम उजड्ड, गँवार और देहाती।

बाबू, मन, क्रम, वचन से ऐसे संत जैसे नाम के संतराम। बी.ए कर सुल्तानपुर में महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज में टी.जी.टी हिंदी नियुक्त हुए थे। पापा के एम.ए. करने के बाद उन्होंने पापा की किताबें ही पढ़कर संस्कृत और हिंदी में एम.ए किया। पदोन्नति पाकर उसी विद्यालय में हिंदी के प्रवक्ता नियुक्त हुए। कभी किसी से ऊँची आवाज में बात तक नहीं की। पक्के गाँधीवादी, किंतु महात्मा गाँधी की हत्या के समय सरकार ने उन्हें आर.एस.एस से जुड़ा होने के कारण जेल में डाल दिया। जेल में रेडियो माँगते थे, समाचार सुनने के लिए। हद हो गई।

बच्चों को नकल करने से रोका तो बच्चों ने रास्ते में घेर लिया। लगे उन पर पत्थर बरसाने। अपने ऊपर बरसते पत्थरों को उन्होंने हाथ से रोका। पुलिस में कोई शिकायत नहीं की। जयशंकर प्रसाद की रचनाओं की व्याख्या में घंटों लगा देते। “बीती विभावरी जाग री,ताराघट पनघट में डुबो रही” इसकी

व्याख्या वह कई घंटों तक कर सकते थे। साहित्यिक और राजनैतिक चर्चाओं पर उनकी पकड़ बहुत मजबूत थी। बी.बी.सी हिंदी सेवा के दीवाने थे। रात ८:०० बजे का "आजकल" कभी नहीं छूटता। कहीं भी रहें, रिश्तेदार के यहाँ, रास्ते में, होटल में, कहीं न कहीं से रेडियो की व्यवस्था कर ही लेते। अपनी बात हमेशा मुस्कुरा कर कहते थे। कोई कितना भी क्रोध में बोले, उनकी वाणी का संयम और सरलता, मजाल है, अपने सुर भूल जाएँ। लड़की के विवाह को अगाध पुण्य मानते थे। किसी भी लड़की का विवाह हो, अगुवा बनने को सदैव तत्पर। वर-पक्ष की सारी माँगे मान लेते। हेम जीजी की शादी तय करने गए थे तो घोड़ा और बँदूक दोनों माँगे मान ली थीं। पापा ने कहा, "क्या घोड़े पर चढ़कर बँदूक से हमारी लड़की को दागेंगे"? वह कहते "एक बार बियहवा तय होइ जाए, माँग पूरी होय ना होय, बियहवा तो होइबै करे"। इसी सिद्धांत पर चलकर ना जाने कितनी लड़कियों का विवाह उन्होंने करवा दिया। हो सकता है इनमें से कई विवाह सार्थकता की प्रथम पायदान पर ही फिसल गए हों पर निभाया सबने। आत्माहुति और त्याग की इस परंपरा को नई पीढ़ी ने ठुकरा दिया। पंचनामे बढ़ गए। अदालतों के सामने लगी कतारों में वैदिक मंत्र और सात वचन शामिल हो गए । आज नब्बे से ऊपर के हैं।आराम से उकड़ूँ बैठ लेते हैं। ईश्वर की मीमांसा उनसे बेहतर कौन कर सकता है। कहते हैं "अहं ब्रहमास्मि"।

हमारे चाचा। गणित के सवाल करने के इतने शौकीन कि जो पायजामा पहने रहते उसी पर सवाल कर डालते। जमीन पर सवाल करते।पढ़ने बैठते तो खाने-पीने की सुध न रहती। कई बार बुलाहट होती तब चौके में पहुँचते। इंटर की परीक्षा देने गए, वैसा ही पायजामा पहन कर गए। पायजामे पर गणित के कुछ अंक लिखे हुए थे। परीक्षक ने परीक्षा भवन में अंदर आने की इजाजत न दी। रोने लगे। घर पर पता चला। पापा बड़गाँव में थे। बाबू परीक्षा भवन पहुँचे। परीक्षक को काफी समझाया बुझाया, उन्हें बताया गया कि हाई स्कूल में पूरे उत्तर प्रदेश में यह द्वितीय स्थान पर रहे थे। पायजामे पर लिखे अंकों का प्रश्न

पत्र में दिए गए सवालों से कोई भी संबंध नहीं था। तब जाकर उन्हें परीक्षा देने दी। बारहवीं की परीक्षा मैं उत्कृष्ट प्रदर्शन के बाद पापा उन्हें कानपुर एच.बी.टी.आई में दाखिला दिलाने ले गए थे । चाचा ने अभियांत्रिकी की पढ़ाई वहीं से पूरी की। दु:साहस देखिए, अभियंता न बन कर ईमानदार बन गए। ऐसी हिमाकत का अब कोई क्या करे? व्यवस्था लचीली रीढ़ का विज्ञापन थी और वो सीना ताने चलने लगे।

उत्तर प्रदेश में बिजली विभाग में अभियंता के तौर पर नियुक्त हुए बाद में सहायक अभियंता और उसके बाद लखनऊ , शक्ति भवन में प्लानिंग ग्रुप के निदेशक के तौर पर कार्य किया। जहाँ भी रहे ठेकेदारों, उच्च अधिकारियों, अधीनस्थ कर्मचारियों, नेताओं और उनके दलालों की आँखों की किरकिरी बन कर रहे। सबकी नाक में नकेल डाले रहे। सबको उपवास करवाया। इसलिए उन्हें कहीं भी चैन से रहने नहीं दिया गया। उनकी ईमानदारी द्वारा लताड़े गए कई शख्स, आज प्रमुख राजनैतिक स्तंभ बन चुके हैं। जिन्होंने उनकी ईमानदारी का मोल लगाया था, आज बड़ी ईमानदारी से देश की सेवा करने में जुटे हुए हैं। उनसे कनिष्ठ, कई अधिकारी, उनसे ज्यादा ऊँचे पदों पर पहुँच गए। उनके मुख पर सरे-राह कालिख पोती गई, उन्हें पुलिस द्वारा गिरफ्तार करवाने प्रयास किया गया । यह सब पुरस्कार था, उनकी ईमानदारी का, ईमानदारी से देश की सेवा करने का, अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहने का। इन पुरस्कारों का छल, प्रपंच, द्वेष अभ्यर्थना, आज भी अवसाद बनकर उनके हृदय में एक प्रसुप्त ज्वालामुखी की तरह धधक रहा है। उसकी आँच में बहुत कुछ भस्म हो चुका और बहुत कुछ भस्म होगा। ईश्वर, उनके लिए, समस्त ब्रह्माण्ड को, एक षड्यंत्र सा संचालित करने वाला, रहस्यवाद है।

पापा ने पूरी व्यवस्था खड़ी कर डाली। अधिकारी बोरिंग वेल के लिए नहीं तैयार थे। उन्हें ये एक व्यर्थ प्रयास लग रहा था। पर पापा जिद पर अड़े थे, फंड अनुमोदित करवाया और बोरिंग वेल खुदवा डाला।पत्थर पसीज गए। पानी, पानी-पानी हो गया। लोग अचंभित थे।

जगह-जगह पपीते के पेड़ लगवाए। सब्जियों की खेती करवाई। मूँगफली, आलू लगवाई। काजू के पेड़ लगवाए। मसरिया लहलहा उठा था। विद्यालय-भवन, शिक्षक-आवास, प्राचार्य- आवास, छात्र एवं छात्राओं का छात्रावास, मेस, सब बनकर तैयार था। एक छोटा-मोटा शहर सा तैयार हो गया था।

स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की योजना के अंतर्गत, इस विद्यालय में गरीब, आदिवासी छात्रों के लिए सब कुछ मुफ्त था। शीशा- कंघी से लेकर लालटेन का तेल और घर जाने का किराया तक, सारा खर्च, सरकार ही वहन करती थी। स्थानीय व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए लोकल स्तर पर टेंडर निकाले जाते। जहाँ सूई से लेकर किताबें तक सरकार अपने खर्चे पर प्रदान करती हो, वहाँ सप्लायर की बाढ़ आ जाती थी। गुड़ इकट्ठा था, मक्खियों को भी खबर हो गई। लगीं भिनभिनाने।

केंद्र सरकार से आने वाले फंड में सबको हिस्सा चाहिए था। स्थानीय प्रशासक, नेता, शिक्षक, सबको मलाई चाहिए थी। सप्लायर सबको खुश करने को तैयार थे। हमारे पापा नहीं तैयार थे। किसी को भी उँगलियाँ घी से तर करने की इजाजत नहीं दे रहे थे। नतीजतन, ऊँगलियाँ उठने लगीं।

एक बार एक तदर्थ कर्मचारी ने घर पर आकर मुझे एक लिफाफा पकड़ाया कि मैं उसे शाम को, जब साहब घर पर आए, उन्हें दे दूँ। ऐसे कई कर्मचारी जरूरी कागजात वगैरह घर पर दे जाते थे। शाम को पापा को वो लिफाफा दिया। पापा ने उसे खोला और भौचक्के रह गए। सौ-सौ के नए पचास नोट। पाँच हजार रुपए।और उसके साथ एक आवेदन था, तदर्थ नियुक्ति को पक्का करने के लिए। पापा ने उस व्यक्ति को घर पर बुलाया और समझाया कि उनके अधिकार क्षेत्र में सीमित तदर्थ नियुक्तियाँ हैं और उन्हें पक्का करने का अधिकार केवल समिति को ही है।केवल अनुशंसा या आवेदन किया जा सकता है। उसके पैसे लौटा दिए और अगले दिन से उसे काम पर से हटा दिया। उस व्यक्ति का नाम नहीं लिख रहा क्योंकि वह एक बेहद मामूली व्यक्ति था। पत्नी के जेवर बेचकर

रकम इकट्ठा की थी। इस सड़ी हुई व्यवस्था से परेशान एक आम आदमी, जिसकी समझ से व्यवस्था का पहिया अर्थव्यवस्था में ऐसे ही तेल डालने पर चलता था। पता नहीं कितनी मुश्किलों से उसने वह ₹ ५००० इकट्ठा किए होंगे? उन दिनों ५०००₹ की कीमत होती थी। भले ही उसे दुख हुआ होगा किंतु इसके साथ उसे यकीन भी हुआ होगा कि ईमानदारी अब भी चोरों की तरह छिपी मिल ही जाती है। ढीठ कहीं की। । लेनदेन वाली भाषा पापा को समझ में नहीं आती थी इसलिए कई शिक्षक, स्थानीय प्रशासक और नेता खार खाए बैठे थे।

अंततः गुटबाजी शुरू हुई ।स्थानीय शिक्षकों ने स्थानीय विद्यार्थियों को अपने पाले में करना शुरू किया। पापा के खिलाफ भड़काना शुरू किया। जहरीली हवाओं ने महावृक्ष की शाखाओं से कहा वृक्ष की जड़ें खोद डालो, महाक्रांति है । आंदोलन है। क्रांति, बदलाव और आंदोलन के ये पुरोधा, शिक्षक-निवास में सप्लायरों से जबरदस्ती माँगी गई शराब गटकते और छात्रों को प्रधानाचार्य के भ्रष्ट आचरण के किस्से सुनाते। आग लगाने के बाद सब ने दुपट्टों में मुँह छिपा लिया। ये दुपट्टे भ्रष्टाचार की हरित क्रांति का पुरस्कार हैं। सरकारी कार्यालयों में बेहिसाब लहराते मिलेंगे।

पापा को पता था उस दिन हंगामा होना था इसलिए पापा रात में मेस में ही खाने गए। कला के शिक्षक ने पापा को सारी बातें पहले ही बताई थीं। और उस रात कई छात्र दनदनाते हुए मेस में दाखिल हुए। बिजली चली गई। घुप्प अँधेरा। जनरेटर जैसे ही शुरू हुआ तुरंत बंद हो गया। दरवाजे, खिड़कियाँ बेंच जो मिला उसे तोड़ना-फोड़ना शुरू कर दिया। कैटरिंग-अस्सिटेंट के साथ मारपीट की । वहाँ के स्थानीय कर्मचारियों को डरा धमकाकर बिठा दिया। क्रांति के नए सुर, असुर के रूप में प्रकट हुए। विष-मंथन की ये प्रक्रिया देश, काल और समाज को क्या दे रही है ? भावी राजनैतिक संकल्पों की नपुंसक आधार-शिला।

पूर्णिमा दीदी भी बाहर थीं। पापा को देखने निकली थीं। घुप्प अँधेरे में लड़कों ने उन्हें भी घेर, उनके बाल खींचे। किशोरावस्था की ऊर्जा शुद्ध बारूद होती है। विध्वंस या निर्माण नहीं जानती, फटना जानती है। बारूद में आग कौन लगा रहा है, क्यों लगा रहा है, यही उसकी सार्थकता और निरर्थकता स्पष्ट करती है।

उमाशंकर उस समय मसरिया में ही थे। वह बाहर आए और दीदी को ले गए ।उन्होंने दीदी से कहा" पापा को मैं ले आया हूँ"।

घर पर अम्मा, सुमन, प्रतिभा, सिम्मी, चार साल की गोल्डी और छह महीने का गोलू, इतने लोग थे।किले में मौजूद इस औक्षिहिणी सेना से लोहा लेने, देश के भावी कर्णधार लाठी, बाँस, पत्थर, जो मिला, लेकर दौड़ पड़े। इन्होंने प्रताप, शिवाजी, आल्हा-ऊदल की कहानियाँ सुनी थीं। आज वही प्रेरणा जोर मार रही थी। दीदी भाग कर उस कमरे में गईं जहाँ गोलू सो रहा था। जैसे ही उन्होंने गोलू को उठाया, खिड़की का काँच तोड़ता एक लट्ठ अन्दर आया । सभी खिड़कियों में काँच लगे थे। चारों तरफ से खिड़कियों पर पत्थरों और लाठियों से वार हो रहा था। लॉबी के दरवाजे और पहले बेडरूम के दरवाजे के बीच खाली जगह थी, जहाँ कोई खिड़की न था। अम्मा, सुमन, सिम्मी, प्रतिभा और दीदी, चार साल की गोल्डी और छह महीने के गोलू के साथ वहीं बैठी थीं। सबने हॉकी-स्टिक ले रखी थी। भूखे भेड़ियों के सामने आत्मसमर्पण मूर्खता थी। पापा और ऊमाशंकर सोफे के कुशन की आड़ लेकर रेँगते हुए पूजा-घर तक जा पहुँचे। फोन के तार काट दिए गए थे। बिजली काट दी गई थी।आज संसार को पाप-मुक्त करने का दिन था।

संसार का सारा पाप उठाए एक अधेड़ औरत, कुछ लड़कियाँ और चार साल की एक बच्ची के साथ छह महीने का एक बच्चा। उस बच्चे की भूख शांत करने के लिए दीदी बाथरूम की बाल्टी से थोड़ा-थोड़ा पानी उसके मुँह में डालती जातीं।समय भी शर्म से पानी-पानी हो उन नसों में कतरा भर लहू तलाश रहा था जिनके आंदोलनकारी उद्वेग में आजाद भारत की शर्म लहूलुहान थी।

ये वही छात्र थे जिन्हें पापा आजाद, भगतसिंह, राणा प्रताप और शिवाजी के किस्से सुनाते थे।ये वही छात्र थे जिनमें राष्ट्र-प्रेम और सामाजिक दायित्व की भावना भरने के लिए आल्हा, ऊदल, छत्रसाल और गोरा, बादल की कहानियाँ सुनाते। आज गुरु के ऋण से मुक्त होना था। गुरु-दक्षिणा हिंसात्मक प्रारूपों में अवतरित थी। गर्व था, पापा को अपने छात्रों पर। अभिमान था।

शुरू से अपनी देख-रेख में पले इन छात्रों की त्योरियों पर शिक्षा और शिक्षक की उधड़ी बखिया में एक लूली-लँगड़ी व्यवस्था से उत्पन्न उन महावीरों के हाथ में पड़ी चूड़ियाँ भी देखीं, पापा ने, जो घटना के समय अपने दुपट्टे रँगवा रहे थे। सवाल ये था, ऐसे अगाध और भारी पौरुष से रँगी ये चूड़ियाँ बनती कहाँ थीं? अल्पवय किशोरों के मन-मस्तिष्क में अपनी उदारवादी आत्मग्लानि और कुंठा के बीजारोपण की भिक्षा माँगते, ये नौसिखिए कृषक, अपनी परती भूमि की खरपतवार पर चढ़कर समाज को नवयुग का रास्ता दिखाने का दावा ठोकते हैं?

छात्राओं को कमरों में बंद कर रखा था। झरिया और सूरज पगडंडियों के रास्ते, ६-७ किलोमीटर दौड़ते हुए, घाघरा पहुँचे और पुलिस को घटना की जानकारी दी।

पुलिस, लगभग, ढाई बजे रात में आई। छात्रों में वीर-रस के प्राण सिंचित करने वाले उन महान रणवीरों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज हुई जो प्रत्यक्ष में " प्रिंसिपल सर" की ईमानदारी और कर्म निष्ठा के झंडाबरदार थे और पीठ पीछे खंजरों के भाव पता करते थे।

सुबह होते ही वीरता की पोथी में दुम दबाए सब घाघरा थाने तक दौड़ लगाने लगे। वीर-रस का संचरण अलग बात है किंतु वीरता के साहित्य में स्वयं का नाम दर्ज कराना अशोभनीय था। थानेदार साहब की एक-एक हजार की आरती उतारी सबने। देव प्रसन्न हुए। समय ने उनकी वीरता और बहादुरी पर भले ही पीठ ना ठोकी हो किंतु इस नाट्य रूपांतरण के सूत्रधार गदगद थे। वो दुपट्टे

जिनमें मुँह छिपे थे, वीर रस से भीगे जा रहे थे और सारे बाँके जवान आँख बंद कर खड़े थे कि सूर्य अस्त हो गया, महावृक्ष गिर गया। पर उसी महावृक्ष के नीचे उनके अभिभावक आए और अपनी वंश-बेलों की मूर्खतापूर्ण हरकतों के लिए क्षमा माँगी। टूटे हुए काँच, क्यारियों से उखड़े हुए पौधे, पपीते के बड़े-बड़े पेड़, जिन्हें तोड़ दिया गया था, सब मानो प्रश्न कर रहे थे दाढ़ी का गुस्सा जुलाहे पर उतार कर क्या मिला? नंगा न नहा पाया, न निचोड़ पाया।

अम्मा, चौहान की बिटिया थीं। डरती नहीं थीं। इस पूरे प्रकरण में पूरे परिवार को नियंत्रित रखना, उनकी दृढ़ता और विश्वास को दर्शाता है। अम्मा को कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धीरज खोते कभी नहीं देखा। तब, जो सामान्य लगता था अब अचरजपूर्ण लगता है। जब बड़े-बड़ों को संताप घेर लेता था, हृदय डाँवाडोल होने लगता था, अम्मा खड़ी रहती थीँ अचल, अटल। इतनी विषम परिस्थितियों में, लड़कियों को लेकर अकेले निर्भीक खड़े रहना, जीवटता की कुछ तो प्रामाणिकता सिद्ध करता है। नायक और नायिकाएँ बहुत प्रचलित होते हैं, नाम होता है, उदाहरण बन जाते हैं, उदाहरण दिए जाते हैं किंतु ये जीवन-यात्रा उन नायक, नायिकाओं की है जो कभी अखबार, पत्रिकाओं की सुर्खियाँ नहीं बने, जिन्हें रूपहले पर्दों ने स्थान नहीं दिया किंतु उनके कर्म-क्षेत्र आशातीत ऐसे उद्धरणों से भरे पड़े हैं जो नायकत्व की नई परिभाषा गढ़ सकते हैं।

हवाओं में जहर अब भी गिजगिजा रहा था। सूत्रधार, पटाक्षेप के लिए तैयार नहीं थे। विद्यालय परिसर षडयंत्रों का बही-खाता लिखने लगा। विद्यालय की छात्रा के नाम से प्राचार्य को प्रेम-पत्र भेजा गया। उसकी कॉपी दिल्ली तक पहुँचा दी गई। इस बार प्राचार्य बचने न पाए। हौंक के जोर लगाया। लड़की को बुलाया गया ।लड़की रोने लगी। उसने कोई पत्र नहीं लिखा। प्राचार्य को पितातुल्य मानती है। किसी ने उसके नाम से पत्र लिख दिया । जिन शिक्षक महाशय ने ये पत्र लिखा, उनके पिता ने अपने पुत्र की भूल मानी और उनकी तरफ से क्षमा याचना की।

मुझे इन सब घटनाओं के बारे में कुछ पता नहीं था। कुछ दिनों बाद, जब मैं घर पहुँचा, घर के बाहर सारे पौधे उखड़े हुए पड़े थे, पपीते के पेड़ सब उखड़े हुए थे, मेरे कमरे में रखा म्यूजिक सिस्टम टूटा पड़ा हुआ था। खिड़कियों के काँच टूटे हुए थे। अम्मा शांत थीं। बस इतना कहतीं "नवोदय के पीछे जान दिए पड़े हैं"।

उसी शाम, पुलिस फिर आई। दरोगा ने, घर के बाहर, मुझे बुलवाया और पूछा "आपका कोई मास्टरनी से चक्कर चल रहा है"? अक्षरशः यही अल्फ़ाज़ थे। मैंने पूछा "क्या मतलब"? थोड़ा सकपकाए, फिर कहा "आप और वो शिक्षिका विवाह करना चाहते हैं, कर डालिए। सारा बखेड़ा उसी के लिए है। विवाह के बाद बखेड़ा खत्म हो जाएगा"। बिल्कुल अजीब सी बात थी। इन सब का विद्यालय परिसर और प्रबंधन से क्या लेना देना था? पुत्र को सामने रख, पिता को निशाने पर लिया जा रहा था। वह शिक्षिका मुझे १४-१५ वर्ष बड़ी थीं। यह सच था, हम प्रेम करते थे लेकिन कभी भी, कहीं भी उसका फूहड़ और बेढंगा प्रदर्शन नहीं किया। यह अवश्य था, शाम को मैं उनके घर जाता और बातें करता । कई विषयों पर । साहित्य, सिनेमा, विज्ञान, हमारे विद्यालय के दिन, हमारे शौक। हम दोनों को गजलें पसंद थीं। खासकर जगजीत सिंह, गुलाम अली और मेंहदी हसन की। हम गजलें सुनते, बहस करते। प्रेम के प्रस्तावित स्वरूप से दोनों नाराज थे। अहं दोनों में से किसी का कम नहीं था। अक्सर यह बहस बहुत लंबी खिंचती और तीव्र हो जाती। यहाँ तक कि बात झगड़े तक पहुँच जाती ।और फिर वो चाय बनातीँ, कभी-कभी मैगी भी बनातीं। चाय पीकर मैं लौट आता। हमारा अहं ही हमारा प्रेम था। हम लड़ने के लिए ही निकट आए थे। समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण और मेरा दृष्टिकोण नितांत भिन्न था। किंतु हम दोनों में से कोई भी सामाजिक संतुलन के मापदंडों को स्वीकार नहीं करता था। हमारे विचार शायद एक दूसरे के पूरक थे शायद इसीलिए हम एक दूसरे के करीब आए। इस प्रेम में नायिका का अनिंद्य सौंदर्य, कालिदास का शब्द-सौष्ठव, बिहारी का श्रृंगार रस, कुछ नहीं था। बस एक दूसरे

के अहं का सम्मान था। मेरी परवरिश लड़कियों के साथ ही हुई। अम्मा का प्रभाव मुझ पर अधिक रहा। शायद इसीलिए मेरे मित्रों में लड़कियों और महिलाओं की संख्या अधिक और लड़कों और पुरूषों की संख्या बहुत ही कम रही।

उनके माता-पिता, पापा और अम्मा से मिल चुके थे। हालांकि उम्र में काफी अंतर की वजह से दोनों ही परिवार इस रिश्ते से सहज नहीं थे किंतु कोई आक्रामक विरोध भी नहीं था। उन्होंने अपने माता-पिता को समझा लिया था। किंतु इन सब का विद्यालय परिसर में हुए उत्पात से क्या लेना-देना, नहीं समझ में आया। दुनिया प्रेम के बहुत संक्षिप्त रूपों से अवगत हैं। अभी बहुत ढूँढ़ना है, बहुत कुछ तलाशना है। बुद्ध को बुद्ध मानकर बुद्ध बन जाएँगे क्या? किंतु तलाश एक निर्वासित अधिकार क्षेत्र की परिधि में जाकर छिप गई है और एक आवरण मिला है, जिसे प्रेम समझकर सब ओढ़ लिए। कृष्ण ने द्वापर में समझाने का प्रयास किया किंतु यह भी कहा द्वापर में मेरे अलावा सब अंधे हैं और कलयुग पूरा अंधा होगा ।बस, दुनिया को बाँसुरी बजाते, गोपियों के कपड़े चुराते और राधा संग रास रचाते, कृष्ण ही नजर आए और कृष्ण, कृष्ण की भौतिकता में खो गए। संसार ने राधा के कृष्ण के गीत गाए, मीरा के कृष्ण को मंदिरों में बाँधा और रुक्मिणी के कृष्ण को आदर्श माना। कृष्ण आश्चर्य-चकित हैं, हँस नहीं पाते, उद्धव से कहते हैं, “ नहीं, उद्धव। अब नहीं लौटना होगा”।

कभी-कभी अम्मा की थाह पाने की कोशिश करता, पर बहुत मुश्किल था। अम्मा कभी स्पष्ट नहीं हो पाईं। अपने बच्चों के स्वार्थ को आगे कर, उन्होंने स्वयं को सदैव पीछे धकेल दिया। अम्मा ऐसा कब तक करती रहेगीं? कभी-कभी अम्मा पर बहुत क्रोध आता। इतना त्याग, बलिदान किसलिए? यथार्थ को मजबूती से पकड़े रहने के लिए, सही और गलत में दूरी बनाए रखने के लिए, कभी-कभी स्वार्थ ही अर्थपूर्ण हो जाता है। पर अम्मा शायद सही थीं। शायद मैं अधिक स्वार्थी था। अम्मा के मना करने पर, क्या मैं मान जाता? बहुत मुश्किल था। हम दोनों को एक साल तक एक-दूसरे से दूर रहने को कहा गया।

किसी तरह के संपर्क की इजाज़त नहीं थी। हम उसके लिए भी तैयार हो गए।पापा ने बहुत समझाया था लेकिन जहाँ तक हमें लगा, हमारे प्रेम में कोई नौसिखियापन या लालच नहीं था। प्रेम की जिस कसौटी पर हमें कसने का प्रयास किया जा रहा था, हम स्वयं उस प्रेम के आलोचक थे। बहुत ही वैचारिक और परिपक्व प्रेम था। फिल्मों और साहित्य में प्रेम के वर्णन से उसका अंश मात्र भी लेना-देना नहीं था। खुरदुरी जमीन पर उगे दो कैक्टस थे, हम दोनों। गुलाबी हवाओं के रूमानी साम्राज्य से दूर, रेतीली हवाओं में सामाजिक चेहरे तलाशते। किंतु लोग अनुभव को ही प्रमाण मानते हैं इसलिए सब ने उसे कुत्सित, वीभत्स और दुराचार ही समझा। अम्मा यदि उस समय खुलकर मुझसे बात करतीं तो शायद बहुत कुछ जो हुआ वह ना होता । जो होना होता है उसे रोकने की हजार सूरतों की व्याख्या हो सकती है किंतु समय को सींग पकड़ कर बिठाया नहीं जा सकता। हुआ भी वही।

विद्यालय परिसर में उत्पात करवाने वाले, सूत्रधारों के सिरमौर, उन दिनों उन शिक्षिका के यहाँ काफी आने-जाने लगे थे। हमारी इस बात को लेकर काफी बहस होती। हम दोनों में से कोई भी प्रेम को अंधा नहीं मानता था इसलिए हमारे अपने-अपने दृष्टिकोण, सही-गलत की छाया-प्रतिच्छाया के प्रकाशित-अप्रकाशित संदर्भों की व्याख्या करने में समर्थ थे। अतः उन्हें लगा कि मेरी दलीलें, मेरी उम्र की नातजुर्बेकारी सी फिरकापरस्त हैं लिहाजा हमारा अहं सदैव टकराता ही रहेगा। मेरी अपरिपक्वता थी या असंतोष की प्रक्रिया, उन्हें समझाने के चक्कर में मैंने उन्हें एक थप्पड़ जड़ दिया। पहली और आखिरी बार किसी स्त्री पर हाथ उठाने का अपराध किया।

कुछ दिन बाद में महाराष्ट्र चला गया उसके कुछ दिनों बाद पापा की एक चिट्ठी मिली। पापा ने लिखा था, उन शिक्षिका ने विवाह कर लिया। किससे ? विद्यालय में उत्पात मचाने वाले सूत्रधारों के मुखिया से। शब्द व्योम से थे, सारे अर्थ उच्छिन्न हो गए। सारी सृष्टि एक रहस्यमयी किरदार का रोल निभा रही थी। जिसकी भूमिका, सामाजिक रूप से एक असंतुलित प्रेम था, जिसे पढ़

कोई नहीं पाया, सारांश सब ने बताया। इस रहस्य पूर्ण मंचन के सारे किरदार अपने-अपने रोल निभाकर जा चुके हैं इसलिए शायद ही इस रहस्य से कभी भी पर्दा उठ पाए।

दु:ख? क्या मैं ही दु:ख था? क्या मैं ही कष्ट था? क्या मैं अवशोषित नहीं हो पा रहा था, मेरे परिवार में? इसका अधिकांश भाग अम्मा के हिस्से में आया। सीधी-सरल अम्मा ।निष्कपट, निष्कलंक अम्मा । कभी किसी का बुरा नहीं सोचा । ना कभी किसी का बुरा किया। उनके लिए अबकी ढेर सारा दुख छोड़ आया था । लोग कहते थे, अकेला पुत्र नालायक ही होता है। शायद इस कसौटी पर मैं ही खरा उतरा। उसके बाद मैं कभी मसरिया लौटकर नहीं आया। बाद में पता चला, सूरज को, स्थानीय पुलिस, डकैती के आरोप में, विद्यालय परिसर से घसीटते हुए, पीटते हुए, ले गई थी। वही मसरिया का अंतिम प्रतिबिंब था। मसरिया एक रहस्यमयी धुंध में खोता जा रहा था।एक खूबसूरत प्राकृतिक अनुभव जो कई अनसुलझे सवालों की तह में दब कर रह गया।

रहस्य, कर्मों का ।रहस्य, कर्मों के फल का ।रहस्य, पाप और पुण्य का। रहस्य, न्याय और अन्याय का ।अद्भुत षड्यंत्र है। समस्त मानव प्रजाति को इस रहस्य ने रहस्यमयी बना रखा है। अन्याय की भेंट चढ़ने वाले को न्याय मिलेगा। क्या यह सुनिश्चित है? नहीं, बिल्कुल नहीं। अन्याय की पीड़ा झेलने वाला समय, न्याय की मशाल उठाने वाले समय से भिन्न है। अलग गुणवत्ता, अलग धर्म, अलग प्रजाति। तो फिर न्याय कहाँ हुआ? नहीं हुआ ना? वह रोते हुए मन का झुनझुना होता है, जब तक झुनझुना बजता है मन चुप रहता है, उसका बजना बंद होते ही फिर रोने लगता है। इसलिए न्याय की साधना, पश्चाताप मात्र है, छिन्न-भिन्न हो गए समय का।

सत्कर्मों का फल सुख होता है। शाश्वत मिथ्या है। यदि सत्कर्मों का फल सुख होता, तो संसार में सत्कर्म होते ही नहीं। सत्कर्म की चलायमान ऊर्जा, दु:ख से

ही प्राप्त होती है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का दुःख एक आकर्षक स्वर्ण मृग के रूप में सामने आया। हरिश्चंद्र का दुःख, सत्य था।कृष्ण का दुःख पूरा युग था। बुद्ध का दुःख स्वयं दुःख था। इन सारे दुखों ने संसार के तमाम वांग्मय, दर्शन एवं प्रतिष्ठापूर्ण साहित्यों की रचना कर डाली। संसार उनका अनुसरण करने लगा। उनके पीछे चलने लगा। और तलाश किसकी थी? सुख की।

तो सत्कर्मों का फल, ना पापा के हिस्से में था, ना अम्मा के हिस्से में।अम्मा के कष्टों की फेहरिस्त बड़ी फुर्सत से लिखी गई थी। अम्मा के धैर्य और उनकी सहनशक्ति की परीक्षा लेने को ईश्वर हर कदम पर तैयार था, तो अम्मा भी तैयार थी। पीछे हटती ही नहीं। ईश्वर ने कष्टों का अंबार लगाया बोला", चंद्रावती, थोड़ा पीछे तो हटो"। "नहीं" चंद्रावती बोलीं "नहीं, अभी नहीं। और लाओ, जितना बन पड़े ले आओ"। और ईश्वर के प्रति निष्ठा बढ़ती जाती। व्रत, उपवास, पूजा-पाठ और बढ़ जाते। ७५ की उम्र तक निर्जल व्रत रखतीं।

कितना भी क्रोध करो नहीं मानतीं। आश्चर्य होता था उनकी आस्था पर। क्या भगवान उनकी सुनते थे? कभी नहीं । क्या भगवान उनकी भक्ति पर प्रसन्न होकर, उन्हें राजमहल और राजसी सुख देते। नहीं, बिल्कुल नहीं। भगवान जिस पर आसक्त हो गए, उस पर कष्टों की बारिश कर दी। यही उनका वरदान होता था ।यही मोक्ष की परमगति। जैसे भक्त, भगवान को नहीं छोड़ता, भगवान भी भक्त को नहीं छोड़ते। उसका ध्यान ईश्वर से भटके नहीं, इसी मंशा से नवीनतम कष्टों के संस्करण तैयार रहते। भक्त भी तैयार रहता है । चंद्रावती हमेशा तैयार रहती थीं।

१९.

सब कुछ फिर से ढर्रे पर आ गया। छात्रों ने पापा को बाद में सब बताया। सबके नाम सामने आए। ये वो शिक्षक थे, जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए छात्रों की ओट में शिकार करने निकले थे। अद्भुत शौर्य का परिचय दिया था। ऐसा नहीं, यह पहली बार मसरिया में हुआ। पूरे भारत में कई नवोदय विद्यालयों में क्रांति और बदलाव का पाखंड ओढ़े, सरकारी राजस्व पर व्यक्तिगत स्वार्थ और लोभ के विषधर फनफनाने लगे। इसमें स्थानीय सांसद, विधायक, पार्षद, जिलाधिकारी, प्राचार्य, शिक्षक, कर्मचारी, सप्लायर, दुकानदार, सब शामिल हो गए। और इस तरह स्वर्गीय पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी का एक उत्कृष्ट स्वप्न जो गरीब और वंचित विद्यार्थियों के लिए वरदान साबित होता, भ्रष्टाचार की अनंत जेब की महिमा पूर्ण गाथा बन गया और उन गरीब और वंचितों की जेबें फटी की फटी रह गईं। बल्कि कइयों की जेबें ही नहीं रहीं।

पापा को उनके पुरुषार्थ का इनाम मिला। समिति से निदेशक, उपनिदेशक सब आए। इधर-उधर ताका-झाँकी की, खाए-पिए और निकल लिए। किसी पर कोई कार्यवाही नहीं। छात्र थे, उन पर कार्यवाही का प्रश्न ही नहीं उठता था। जो सूत्रधार थे, वो छात्रों की ओट में खड़े थे, लिहाजा वह भी बच गए। न्याय और अन्याय के प्रकरण के बीच खड़ी अम्मा, ईश्वर की सार्थकता पर कोई सवाल नहीं खड़ा करतीं थीं। समिति में बैठे सभी बाबा काली कमली वालों ने आखिरकार कोई रंग चढ़ने ना दिया। जिस व्यक्ति ने मसरिया का पूरा ढाँचा तैयार किया, वहाँ का प्रबंधन खड़ा किया, उसे ही स्थानांतरण का रास्ता दिखाया और इस तरह सारी गंदगी कालीन के नीचे डाल, कुर्सी के पाए उस पर जस के तस बने रहे। ईमानदारी एक ऐसा वनैला पशु है जिसे देखते ही गोली मारने के आदेश का प्रावधान, संसद को सहर्ष, एकमत से, तत्काल पारित कर ही देना चाहिए। देश का कर्ज है उन पर।

२०.झाँसी(बरुआ सागर)

मसरिया से पापा का स्थानांतरण नवोदय विद्यालय, बरुआ सागर, झाँसी हो गया । बरुआसागर, झाँसी रेलवे स्टेशन से २०-२५ किलोमीटर दूर है। बरुआसागर भी बाँध ही है। प्राकृतिक रूप से बेहद मनमोहक। किंतु तब तक नवोदय विद्यालय, घी से भर पीपे हो गए थे। राजनैतिक उंगलियाँ उसमें सराबोर रहना चाहती थीं । अपने-अपने उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए साम, दाम, दंड, भेद, सारी विधियाँ अपनातीं किंतु यह नहीं समझती कि प्राचार्य के पास तदर्थ नियुक्तियों का सीमित अधिकार था। स्थाई नियुक्तियाँ समिति से होती थीं। झाँसी, नवोदय विद्यालय के ऑफिस सुपरीटेंडेंट चाहते थे कि सारी फाइलें उनकी मेज से गुजरें। उन्हें मलाई की तरावट चाहिए थी। उनके सिर पर स्थानीय सांसद का हाथ था ।सांसद महोदय, प्राचार्य को उँगलियों पर नचाना चाहते थे। पापा तैयार नहीं थे। कार्यालय अधीक्षक और सांसद कैसे बर्दाश्त करते? सांसद महोदय दिल्ली से दिल लगाए बैठे थे। निदेशक को आदेश हुआ पापा का स्थानांतरण दुर्गम से दुर्गम स्थान पर हो जहाँ उनका परिवार के साथ रहना नामुमकिन हो। यहाँ तक कि निदेशक से कहा गया कि कुछ ऐसा करें कि पापा की पेंशन भी बंद हो जाए। पापा का स्थानांतरण गुजरात में जामनगर कर दिया। पापा की तबीयत ठीक नहीं थी। इतनी दूर जाना संभव नहीं था। दिल्ली जाकर निदेशक से मिलने की सोची। निदेशक ने मना कर दिया। उप निदेशक ने पापा से मानव-संसाधन-विकास-मंत्रालय से लिखवा कर लाने को कहा। मानव-संसाधन- विकास-मंत्रालय में सचिव, केदारनाथ सिंह, पापा को जानते थे। उस समय मानव-संसाधन- विकास- मंत्रालय का भार अर्जुन सिंह के पास था। नवोदय विद्यालय बरुआसागर में अर्जुन सिंह आ चुके थे। पापा से उनकी मुलाकात हो चुकी थी। पापा के आवेदन पर उन्होंने लिख दिया “इस पर तुरंत अमल हो”।

समिति की निदेशक, जो कि एक महिला थीं, बुरी तरह घबरा गईं। पापा जब समिति पहुँचे, सब ने कहा, “आपने ऐसा क्या लिखवा दिया? मैडम बहुत परेशान हैं। आपकी फाइल ढूँढ़ी जा रही है”। फाइल ढूँढ़ी गई। मैडम ने पापा से कहा, ” आप अगर इस जगह रहेंगे, सांसद महोदय, आपको पुनः परेशान करेंगे। फिर यही सब होगा”। उन्होंने बताया कैसे सांसद ने ऊपर से दबाव बनाकर, पापा का स्थानांतरण करवाया था। पापा ने कहा कोई आसपास की जगह दे दी जाए। पापा को महोबा दे दिया गया। आसमान से गिरे खजूर पर अटके।

२१.महोबा

महोबा काफी पिछड़ा इलाका था। वहाँ सिम्मी, सुमन, प्रतिभा के लिए कोई सुविधा नहीं थी। सिम्मी को कॉलेज आने के लिए ट्रेन से महोबा से झाँसी आना पड़ता था। उसे ये बेहद नागवार था। रोज पापा से बहस होती। अंततः पापा ने परिवार को झाँसी में ही रखने का फैसला किया।

झाँसी में, झोकन बाग इलाके में, गुप्ता जी के यहाँ, किराए पर हम रहने लगे।

पापा महोबा में ही रहते। महोबा का पानी बेहद खारा था। पापा के मुँह में अक्सर छाले पड़ जाते। पेट की शिकायत अलग रहने लगी। बरुआ सागर का ऑफिस सुपरिंटेंडेंट भी स्थानांतरित होकर महोबा आ गया। स्थानीय विधायक की सरपरस्ती में उसने फिर पापा को परेशान करना शुरू किया। हालांकि पापा ने उसे वहाँ से हटा दिया, वह हाई कोर्ट से स्टे लेकर पुन: महोबा में आ गया।

रोज पापा की शिकायत, डी.एम. कार्यालय पहुँचती। एक दिन दोपहर के खाने के समय, डी.एम. साहब मेस में पहुँच गए। भोजन में अनियमितता की शिकायत थी। छात्रों को उचित मात्रा में भोजन न देने का आरोप था। डी.एम साहब का आरोप था कि रोटियाँ जली हुई हैं और छात्रों को उनके शारीरिक अनुपात के अपेक्षा छोटे कपड़े दिए जाते हैं। पापा और डी.एम में काफी बहस हुई, अंततः, डी.एम साहब ने, जोकि नवोदय विद्यालय महोबा के अध्यक्ष थे, समिति को संस्तुति भेजी कि इनका स्थानांतरण करवा दिया जाए। समिति ने दो महीने के लिए पापा को लखनऊ से अटैच कर लिया।

अब पापा को दो महीने तक रोज लखनऊ आना-जाना था। पहली बार पापा लखनऊ आए और जब शाम को झाँसी लौटे तो उनकी बड़ी अजीब स्थिति थी। उनके एक ही पैर में जूता था, वह भी किसी दूसरे का। प्रतिभा, शाम को जब कोचिंग से लौट कर आई, पापा ने अजीब नजरों से उसे देखा। प्रतिभा ने पूछा “क्या हुआ”? पापा बोले “कुछ नहीं, पंखा बंद कर दो”। प्रतिभा ने पूछा

“ बुखार है क्या” ?प्रतिभा ने छू कर देखा। उन्हें सचमुच बुखार था और दस मिनट बाद पापा के हाथ-पैर काम करना बंद कर दिए। पापा बोल भी नहीं पा रहे थे। गुप्ता जी का इकलौता लड़का, निपुण गुप्ता, डॉक्टर था। प्रतिभा उन्हें बुलाने गई लेकिन निपुण नहीं थे। कहीं बाहर गए थे। प्रतिभा ने डॉक्टर एस.के.जैन को बुलवाया।उन्होंने कुछ दवाइयाँ दीं लेकिन उन दवाइयों का कोई फायदा नहीं हुआ। पापा की हालत बिगड़ती जा रही थी। उसके बाद प्रतिभा ने डॉक्टर सतीश अग्रवाल से संपर्क किया। सतीश अग्रवाल आए। सतीश अग्रवाल ने कुछ दवाइयाँ दीं, जिनसे पापा को नींद आ गई। रात में डॉक्टर निपुण आए और उन्होंने डॉक्टर शुक्ला से एक बार संपर्क स्थापित करने की सलाह दी। डॉ शुक्ला मनोचिकित्सक थे। उनकी दवाइयों से पापा में समय का भान जाता रहा। सुबह-शाम में अंतर नहीं कर पाते थे। डॉ शुक्ला ने खून की जांच के लिए कहा। गौरव पैथोलॉजी में खून की जाँच के समय डॉक्टर पी.के.जैन का नाम सुझाया गया।

डॉ पी.के.जैन की दवा ने कछ हद तक असर किया किंतु दवाएँ इतनी तेज थीं, पापा का सीढ़ी चढ़ना मुश्किल हो गया और वो सीढ़ियों से गिर पड़े। उमाशंकर ने आर्मी अस्पताल में पापा का इलाज अपने पिता सुरेश बहादुर सिंह के नाम से करवाने का सुझाव दिया किंतु उस अवस्था में भी पापा ने किसी और के नाम से अपना इलाज करवाने से मना कर दिया। अस्पताल में अपना नाम सुरेश बहादुर सिंह बताने से मना कर दिया। नतीजतन, उन्हें अस्पताल से वापस लाना पड़ा।

झाँसी मेडिकल कालेज के डॉ डी.एन.मिश्रा ने जब पापा को देखा तो कहा “इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि ये पूरी तरह ठीक होकर नौकरी फिर से कर पाएँगे।पर मैं प्रयास कर सकता हूँ”।

पापा करीब ३-४ दिन मेडिकल कालेज में भर्ती रहे। उनकी हालत में सुधार था, किंतु बहुत कम। अम्मा उनके हाथ में एक टुकड़ा सेब भी पकड़ातीं तो उसे भी नहीं सम्हाल पाते। नसें शिथिल पड़ गईं थीं।

मुझे तार भेजा गया "पापा की हालत गंभीर है, आ जाओ"। मैं नहीं आया या नहीं आ पाया। इसे मेरा बहाना ही समझ सकते हैं किंतु स्पष्टीकरण मैंने कभी किसी को नहीं दिया ना कभी दूँगा। मेरा अक्षम्य अपराध था। क्षमा माँग भी नहीं रहा। जब-जब अम्मा को जरूरत थी, मैं उनके आसपास नहीं था। इसका अफसोस ताउम्र रहेगा। अम्मा ने कभी मुझसे नहीं पूछा, मैं क्यों नहीं आया ? पूछतीं तो बता देता पर अब नहीं। अम्मा से कभी कोई बात छिपाने का प्रयास नहीं किया। बस एक बात छिपाई और उनके अंतिम समय तक छिपाए रखी।

पर अम्मा हार नहीं मानतीं थीं। प्रतिभा ने भी जान लगा दी। अम्मा उनके हाथों में, पैरों में दिन- रात मालिश करतीं। उन्हें अपने हाथों से खिलातीं-पिलातीं। पापा मेडिकल-लीव पर थे। पैसों की तंगी होने लगी थी। पर अम्मा ने सीमित खर्च में ही अपना घर चलाया। पापा के इलाज में कभी कमी ना होने दी। और अम्मा का विश्वास, प्रार्थना और अथक परिश्रम कुछ भी बेकार नहीं गया। इसमें प्रतिभा, सुमन, सिम्मी का भी अपार सहयोग रहा ।सहयोग नहीं रहा तो, बस मेरा। अम्मा का भगवान, अम्मा के साथ ही खड़ा रहा। पापा उठ खड़े हुए, किंतु कमजोर थे।

पापा के बैग में कई दवाइयाँ निकली थीं और लखनऊ के बहुत बड़े डॉक्टर का प्रिस्क्रिप्शन। वह दवाइयाँ, जब डॉक्टर को दिखाई गईं उनके हिसाब से वही दवाइयाँ उनकी इस दुर्दशा का कारण बनीं। वह दवाइयाँ पापा के बैग में कैसे आईं, कहाँ से आईं, कोई नहीं जानता। पापा भी नहीं बता पाए। लखनऊ में क्या हुआ? क्यों हुआ? पर इतना अवश्य है, इस देश में, कागजी व्यवस्था के समानांतर एक और व्यवस्था चल रही है, जो अदृश्य है किंतु सर्व शक्तिमान है। उससे पंजे लड़ाने के साहस का पुरस्कार कोई दो-चार आने की चुप्पी नहीं, जुबान कलम करने की कला होती है। बच के रहिए, उस व्यवस्था से।

२२.असम(रामकृष्ण नगर)

उन्हीं दिनों पापा का स्थानांतरण नवोदय विद्यालय, रामकृष्ण नगर, करीमगंज, असम कर दिया गया। प्रतिभा लखनऊ तक गई। लखनऊ क्षेत्र के आयुक्त, नवोदय विद्यालय से मिलकर स्थानांतरण रोकने के लिए नहीं बल्कि छुट्टी बढ़ाने के लिए निवेदन किया । छुट्टी नहीं बढ़ाई गई। तय तारीख पर ही जाना था।

उस दिन पापा को लोहित एक्सप्रेस से असम जाना था। पापा को बहुत बुखार था पर पापा तैयार होकर अकेले स्टेशन गए। वहाँ घोषित प्लेटफार्म पर बेंच पर बैठकर, ट्रेन का इंतजार करने लगे। ठीक ट्रेन के आने के समय प्लेटफार्म बदल दिया गया। ओवरब्रिज पार कर दूसरे प्लेटफार्म पर जाना था। पापा की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। तभी सी.आर.पी.एफ का एक जवान पापा के पास आया और बोला "आपको इसी ट्रेन से जाना है"। पापा ने सहमति में सिर हिला दिया। उस जवान ने पापा का सामान उठाया और ओवरब्रिज पार कर, पापा को ले जाकर ,उसी ट्रेन में, उनके निश्चित स्थान पर बिठा दिया।

भगवान! हाँ ! भगवान ऐसे ही तो अवतरित होते हैं। हाथ में शंख, चक्र, गदा, धनुष, तलवार, यह सब कुछ नहीं। खाली हाथ। खाली हाथों में ही इतना सामर्थ्य होता है। यह था पुरस्कार राम आसरे सिंह के पुरुषार्थ और चंद्रावती की श्रद्धा का। और यह द्योतक था, पापा के उद्योग भरे कर्मनिष्ठ जीवन-अभिप्राय का, जो सच्चाई और ईमानदारी की सूत कातकर व्यक्त हुआ। उनसे कोई शिकायत नहीं जिन्होंने पापा को, सच्चाई और ईमानदारी के लिए प्रत्येक चरण पर घायल करने का प्रयास किया। यह उनका स्वभाव था, उनकी प्रकृति थी। यह पापा का स्वभाव था, उनकी प्रकृति थी कि एक अनजान आदमी, अचानक देवदूत की तरह प्रकट होता है और उनकी सहायता करता है। जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोई।

अम्मा परिवार के साथ, झाँसी में ही थीं। पापा करीमगंज में। करीमगंज, भारत का सीमावर्ती क्षेत्र है जो कि बांग्लादेश से बिल्कुल सटा हुआ है।

असम का खान-पान उत्तर-प्रदेश के खान-पान से नितांत भिन्न। हम लोग शाकाहारी हैं जबकि वहाँ मुख्यतः मांसाहार का प्रचलन है।

हरी सब्जी के नाम पर, करीमगंज में, बस सेम मिलती थी उसी को कभी उबालकर, कभी एकदम पनीली और खूब तीखी सब्जी बनाते थे। मुख्यतः चावल खाते थे इसलिए रोटी बहुत कम बनती थी।

पापा भोजन की विलासिता के अनुग्रही नहीं थे, इसलिए स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार आसानी से ढाल लेते थे। उन्होंने कभी खाने में किसी भी प्रकार का मीन-मेख नहीं निकाला। जिसने अपने जीवन में मुफलिसी और तंगहाली का स्वाद चखा हो, उसे छप्पन व्यंजनों के स्वाद आकर्षित नहीं कर सकते। हो सकता है पापा हराना न जानते हों पर वह हार न मानना जानते थे। जीतने के लिए जिन तिकड़मों की आवश्यकता थी, वह पापा के स्वभाव में नहीं था पर हाँ, डटे रहने के लिए जो साहस चाहिए था, वह उनके अंदर कूट-कूट कर भरा हुआ था।

२३.झाँसी

झोकन बाग, झाँसी की अधिकतर संपत्तियाँ, अग्रवाल परिवार के भाई-बाँधवों की ही हैं। वहीं मधुर अग्रवाल का पी.सी.ओ था। इनके पिता के पास भी झोकन बाग की काफी जमीन की मिल्कियत थी। प्रतिभा का उस पी.सी.ओ में आना-जाना था। पापा से फोन पर बात करने के लिए अम्मा भी इस पी.सी.ओ में आती-जाती थीं। धीरे-धीरे प्रतिभा और मधुर की नजदीकियाँ बढ़ती गईं। प्रतिभा कई- कई घंटों पी.सी.ओ में बैठी रहती। अम्मा को यह बिल्कुल पसंद नहीं था । अम्मा ने कई बार प्रतिभा को इसके लिए डाँटा भी ।

उस दिन मैं भी घर पर था। रात में प्रतिभा ने अम्मा से आकर कहा "मधुर के घर वाले मिलने आए हैं"। मैंने कहा "अम्मा नहीं जाएँगी"। प्रतिभा ने गुस्से में कहा "तुम कौन होते हो, बीच में बोलने वाले"? बात कुछ हद तक सही थी। पापा की तबीयत जब इतनी खराब थी और परिवार बहुत बुरे दौर से गुजर रहा था तो मैं नहीं आया। मैंने कोई सहयोग नहीं दिया, कोई जिम्मेदारी नहीं उठाई। इस पाप का कलंक अमिट था। कर्तव्य मैंने निभाया ही नहीं, अधिकार की बातें व्यर्थ थीं। मैंने दोबारा कुछ नहीं कहा, पर अम्मा मिलने नहीं गई । वे सब लौट गए ।

वे गुप्ता जी की रिश्तेदारी में ही आते थे। गुप्ता आंटी ने अम्मा से कहा था "आपकी लड़की अच्छी है लेकिन वह लड़का सही नहीं है"। अम्मा रोने लगीं। गुप्ता आंटी ने समझाते हुए कहा "रोइए नहीं ।इसे लेकर, आप ,इनके पापा के पास चले जाइए"।

पापा, जब अगली बार झाँसी आए उन्हें सारी बातें पता चलीं। वे अत्यंत क्रोधित हुए। उन्होंने सब को लेकर असम जाने का फैसला किया। प्रतिभा जाने को तैयार नहीं थी। घर का माहौल बेहद खराब था। अम्मा टूट रहीं थीं। मैं नहीं

था। जिस दिन असम जाना था, पापा ऑटो बुलाने गए। चौराहे पर कोई ऑटो वाला आने को तैयार नहीं था। मधुर अग्रवाल ने सबको धमका रखा था। पापा सबको पैदल लेकर निकले। बड़ा सा सूटकेस पापा ने अपने सिर पर रखा था। चौराहे से काफी आगे जाने पर ऑटो मिला।मधुर और उसके साथियों ने स्टेशन तक पीछा किया। पापा ने एक पुलिस वाले से शिकायत की और मदद माँगी तो उसने मधुर के एक साथी को थप्पड़ जड़ दिया और वहाँ से जाने को कहा किंतु प्रतिभा किसी भी कीमत पर साथ आने को तैयार नहीं थी। रोए जा रही थी। ट्रेन का समय हो रहा था। पापा ने प्रतिभा को पीछे छोड़ दिया। बाकी सब को लेकर स्टेशन के प्लेटफार्म की तरफ चल दिए। अम्मा बार-बार पलट कर देख रही थीं। क्या कुछ साथ जा रहा था, क्या कुछ छूटा जा रहा था शायद उसका हिसाब लगा रहीं थीं।कैसे, एक-एक कर, अपने जीवन के विभिन्न अंशों से बेदखल होती जा रहीं थीं। रोए जा रहीं थीं। इसलिए नहीं कि उनके हिस्से कुछ नहीं आया बल्कि इसलिए कि जो वो सहर्ष देने को तैयार थीं, वो सब उनसे छीना क्यों जा रहा था? और अपने आँसुओं से उन सब का भुगतान कर रहीं थीं जो उनके हाथ आया और जो उन के हाथ से छूट गया, उसकी कीमत न चुका पाने मातम, कलेजे के गहरे घावों ने मनाया। ट्रेन पर बैठने के बाद भी अम्मा रास्ते भर रोतीं रहीं। मुझे सब अम्मा ने ही बताया। जब अम्मा यह सब बतातीं तो लगता शिकायत कर रहीं थीं "देखो, तुम सब ने बारी-बारी से मुझे कैसे मारा है! क्यों? मुझसे अपना-अपना हिस्सा तुम सब ने ले लिया और मुझे बिल्कुल खाली और बेजान छोड़ दिया"।

प्रतिभा और मधुर ने विवाह कर लिया। विवाह के लिए दोनों में से किसी के भी परिवार की सहमति नहीं थी। इस तरह अम्मा की तीन बेटियों का विवाह हो गया।दो के लिए बाबू ने वर तलाशा, तीसरी ने स्वयं के लिए वर तलाश लिया।

पूर्णिमा दीदी के तीन बच्चे हुए। (गोल्डी) एकता, (गोलू) शिवेंद्र, (छोटू) कार्तिकेय। सुधा दी के दो बच्चे हुए, (विकी) अक्षय और (सृष्टि) आकांक्षा।

अम्मा का नाती-पोतों का शौक पूरा हुआ, पर अम्मा अधूरी रह गईं। प्रतिभा और मधुर के विवाह का प्रसंग चटखारे ले लेकर सुनाया जाने लगा। अब आया, ऊँट, पहाड़ के नीचे। पापा के दर्प पर प्रहार करने का किसी ने कोई मौका ना छोड़ा। अम्मा की आँखों से झरते आँसू निर्झर रहें, कहीं बंद ना हो जाएँ, सब ने ख्याल रखा। "हमारी लड़की होती तो हाथ- पैर तोड़कर बिठा देते"। "हमारी लड़की होती तो काट कर फेंक देते"। जितने मुँह उतने ताने ।अम्मा सुनती रहीं। चुप रहतीं। कोई ढाल नहीं थी, उनके पास। अम्मा क्या अप्रासंगिक हो गईं थीं, सबके लिए? बच्चों ने नहीं सुनी।पति ने नहीं सुनी।और किसी से, वह कुछ कहती नहीं थीं ।पर अम्मा टूटती नहीं थीं। क्यों ? क्योंकि वो जानती थीं, परिवार की धुरी वही हैं। पापा भी जानते थे। सब जानते थे। अम्मा के टूटते ही परिवार नहीं रहेगा। इसलिए अम्मा की तमाम अवज्ञाओं के बावजूद अम्मा को अवज्ञा के रूप में स्वीकार करने का दुस्साहस कोई नहीं कर सकता था। हमारे अंदर और कुछ हो ना हो, कोई काबिलियत नहीं, कोई हुनर नहीं किंतु अम्मा का स्नेह भरा हुआ है। अम्मा भी असफल रहीं, हम भी असफल रहे। क्योंकि सफलता की रूपरेखा के तय मानकों को शायद हमने नहीं स्वीकारा या कह लीजिए उन्होंने हमारे नौसिखिएपन, अंतर्मुखी स्वभाव और स्पष्टवादिता को सिरे से खारिज कर दिया।

२४.

उमाशंकर, सुधा दी पर हाथ उठाते थे, गाली-गलौज करते थे, अम्मा- पापा को गालियाँ देते। यह सब जानकर अम्मा को कैसा लगा होगा? अनुभव कर पाना बहुत मुश्किल है। किंतु अम्मा के शब्दों में ‘‘करेजवा तो खाय उठा’’। भाषा पर मत जाइए। पीड़ा के इस अनाधिकृत क्षेत्र में प्रवेश करके देखिए, जहाँ विवशता मातृत्व का रूप ले, हाथ बाँधे खड़ी है और उसकी चीत्कार, उन महाबली हाथों में पुरुषार्थ की चूड़ियाँ बनकर खनकने लगती है, जो स्त्री पर प्रहार कर, अपशब्द कह, स्वयं अपनी माँ की कोख को लजा देते हैं। संसार कैसे ऋण चुकाएगा ऐसे पौरुष से भरे खाली लिफाफों का, जिनके समक्ष शिखंडी भी हथियार डाल देता? सात वचनों के आश्वासन से बँधी, किसी के घर की लाज, जब आप,अपने पुरुषार्थ का डंका बजाने के लिए लाते हैं, वही आपके पौरुष का पूरक होती है।उस पर प्रहार कर, उसे अपशब्द कहकर आप उसके परिवार को पीड़ा दे सकते हैं किंतु उसके साथ ही आप अपने पुरुष होने की भ्रांति से भी मुक्त हो जाते हैं।

अम्मा को कष्ट था। भयानक कष्ट था। पर किसे कहें? पापा इन सब बातों पर कतई ध्यान नहीं देते थे। क्यों नहीं ध्यान देते थे? आज तक नहीं समझ में आया। सगी बेटी पर कोई हाथ उठाता है, बात-बात पर माँ-बाप के नाम की गालियाँ उछालता है, पिता इंतजार करता है कि समय के साथ सब ठीक हो जाएगा। यही सामाजिक पागलपन विवाह जैसी संस्था के पतन का मुख्य कारण बन गया है। समय कुछ नहीं करता। घाव गहरा हो जाता है। पीप, मवाद सब भर जाते हैं। गिजगिजा उठता है। गले में बँधा ढोल है, बजाओ, जीवन भर। उस अवसाद की धुरी बना औरत, पुरुष के उस अहंकार को सेती है जो उसके पुरुष होने का शाश्वत कलंक होता है? पुरुष बनने के लिए इतना रोना-धोना पड़ता है? इतना दिखावा करना पड़ता है? स्त्री प्रजाति पर हाथ, पैर, नाखून, दाँत,

सबसे, अपने आँसुओं की छवि अंकित करनी पड़ती है। स्वीकार करो, हम पुरुष हैं। कितना संदेह होता है, अपने पौरुष पर?

अम्मा सारा जहर पी लेती थी। मैं नहीं पी सकता था। अम्मा को समाज का भय नहीं, भविष्य की आशंका थी। मुझे नहीं थी। अम्मा को शंका थी कि लड़कियों का भविष्य शायद मायके में सुनिश्चित नहीं हैं। मुझे इसका सिर्फ और सिर्फ एक ही कारण नजर आता था। समाज पितृसत्तात्मक है ।डरा हुआ, रंगा सियार है। डर है, रंग उतरने के बाद ,उस सियार की पहचान ,सामाजिक ध्रुवीकरण की धुरी बदल सकती है। इससे पहले कोई हमला करे, ''बचाओ'',''बचाओ'' चिल्लाने लगता है । अम्मा इस ''बचाओ'', ''बचाओ'' को पहचानने लगीं थीं । समझने लगीं थीं। ''कलि काल है, दुनिया इसी में लय हो जाएगी'' यही उनका निष्कर्ष होता । अम्मा से इस पर बहस भी होती। पशुता को मानवता से कैसे समझाया जा सकता है? अम्मा ने कई बार प्रयास किया। असफल रहीं। सुधा दी पापा को दोष देतीं। उन्होंने बिना देखे- सुने, दूसरे के कहने पर उनका विवाह कर दिया। सच था। कुछ जिम्मेदारी तो पापा के सिर पर आनी थी। आई। स्वर्ग, नर्क सब यहीं हैं। सारा हिसाब यहीं चुकाना पड़ता है।

झोकन बाग में, एक दिन ,पापा का फोन आया उन्होंने लखनऊ में दो कमरे का एक मकान और एक छोटी सी दुकान बुक कराई थी। मकान का क्षेत्रफल करीब ८५० स्क्वायर फीट था । तो यह थी, भ्रष्टाचार की सद्गति। गड़ा हुआ धन, यही था। आकर देखना चाहिए उन महापुरुषों को जिन्होंने पापा पर अनाप-शनाप, तमाम भ्रष्टाचार के आरोप लगाए। देखें, उस राजमहल को, उस आलीशान किले को जिसकी आशंका मात्र से उन्होंने पापा को, जब तक सेवा में रहे, तंग किया और सेवानिवृत होने के बाद उन्हें मजबूर किया कि अपनी मेहनत की कमाई के लिए, वह कोर्ट के चक्कर काटे। आएँ, और आकर देखें कि कैसे

ईमानदारी की भ्रष्टतम इकाई ने, दो कमरे में, छह प्राणियों के साथ कई साल गुजार दिए। आते और आकर अपने महान पुरुषार्थ के एवज में लज्जा के दो-चार घूँट पी कर अवश्य जाते । यही उनके अमृत-मंथन का पुरस्कार होता।

हमें आश्चर्य हुआ, दो कमरे के मकान में इतना बड़ा परिवार रहेगा कैसे? पर पापा, पापा थे। उनके आगे किसकी चली थी? पहले उनको जब घर लेने को कहा जाता तो कहते क्या करेंगे घर लेकर, सेवानिवृत्ति के बाद सुल्तानपुर चलेंगे।

बाबू को पता चला तो बाबू ने कहा "घर लै लिए अहा, खाब्या काव" ? अंततोगत्वा सबका यही परामर्श होता कि सेवा निवृत्ति के बाद पापा सपरिवार उतुरी जाकर रहें। गाँव की शुद्ध हवा, शुद्ध आचार- विचार, शुद्ध खाना, शुद्ध पानी का महिमा-मंडन होता । शहर पर लानतें बरसाई जातीं। और एक दिन गाँव, शहर में बदल गया। ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। कहीं नहीं। शहर चुपके से जाकर कब गाँव में बस गया, किसी को पता भी नहीं चला। सब गाँव से डर गए। ऊँची-ऊँची चहारदीवारियाँ बनवाई गईं। चौपहिया वाहन खरीद, गाय-बैलों की जगह बाँध दिए गए। नीम और बरगद को ए.सी में ठूँस कर दीवारों पर टाँग दिया गया और उन्हीं दीवारों के अंतर्गत दम साधे पड़े हुए हैं। श्श्__श्श! कहीं गाँव, देख ना ले। उन्हें क्या पता? ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बैलगाड़ी पर सवार होकर विकास आया और उसे ले भागा। बोला था, नाक कटवाओ, परमेश्वर दिखेगा। धन्य है, परमेश्वर । धन्य है, विकास। धन्य है, शहर । धन्य है, गाँव। धन्य हैं वो सब लोग, जो अपने निष्कर्षों के साथ, स्वयं को भी बदल लेते हैं, जो नहीं बदल पाते, वो चन्द्रावती रह जाते हैं।

२५.लखनऊ(मधुबन नगर)

रामकृष्ण नगर से, परिवार को, पापा ने लखनऊ भेज दिया क्योंकि अब लखनऊ में ही रहना था। जब तक घर नहीं बन जाता, लखनऊ में किराए के मकान में ही रहना था।

सावित्री बुआ के सबसे छोटे बेटे बबलू, की मदद से हमने मधुबन नगर में एक मकान किराए पर लिया। सावित्री बुआ वहीं आलमबाग में रहतीं हैं। मकान दो मंजिला था। काफी बड़ा था। काफी जगह थी।

मधुबन नगर में सुमन, सिम्मी और अम्मा, बस यही तीन लोग थे। सिम्मी फैशन डिजाइनिंग का कोर्स कर रही थी। सुमन अपना कॉलेज कर रही थी ।सिम्मी का व्यवहार हम सब से अलग था। कब, किस बात पर उसका पारा चढ़ जाए, कोई नहीं जानता था। सब उसके गुस्से से डरते थे। वह सुबह देर से उठती। अम्मा उसके लिए अलग से चाय बनातीं। उसी की पसंद का नाश्ता बनाने का प्रयास करतीं । यह बात अलग थी कि उसके सामयिक व्यवहार और पसंद-नापसंद का अनुमान लगाना किसी के लिए भी संभव न था। कभी-कभी जब उसे नाश्ता मन के मुताबिक ना लगता, अम्मा को बहुत चिरौरी करनी पड़ती थी।

कॉलेज से आते ही सुमन को लेकर अम्मा को बाजार जाना पड़ता था। रोज सिम्मी को अपने कोर्स के लिए कुछ ना कुछ चाहिए था।

एक बात थी। मधुबन नगर में अम्मा ने बैंक का काम सीख लिया था। बैंक जाकर पैसे निकालना, जमा करना,अम्मा खुद कर लेतीं।

कोई नौकर-चाकर नहीं था। सुबह से रात तक लगी रहती थीं। सुमन मदद करती थी। सिम्मी? म्म___म्म, जब भवानी प्रसन्न रहती थी तो सब करवाती ।अम्मा कहतीं "आज देवता खुश है"। और जिस दिन नाराज हो जाए तो पूरा घर सहमा-सहमा रहता। दरवाजा बंद कर अपने कमरे में बैठ जाती। कितनी भी

आवाज दो, नहीं खोलती। कभी-कभी अम्मा इतना आजिज आ जातीं कि रूँआसी हो जातीं। दो-दो दिन, तीन-तीन, चार- चार दिन, हफ्ते भर, जब तक महारानी का पारा नहीं उतरता दरवाजा बंद रहता। बस चाय लेने के लिए धड़धड़ाते हुए निकलतीं अपनी चाय बनाती और फिर धड़धड़ाते हुए अंदर। दरवाजा बंद। सब अपनी-अपनी जगह साँस रोक के बैठे रहते। "जिसको अपना पानी उतरवाना हो, वह बोले" अम्मा कहतीं। फिर एक दिन चढ़ी नदी का जलस्तर उतर जाता। दरवाजा खुल जाता। सब सामान्य। कोई कह नहीं सकता था, यह वही घर है। साथ में चाय पीना, साथ में खाना खाना, अम्मा की पसंद की फिल्म लगाकर कहना, "अम्मा ये पिक्चर देखो ये तुम्हें अच्छी लगेगी"। खाना भी बनाती। अम्मा की पाक-कला उसे ही विरासत में मिली है।यह वही सिम्मी थी, जो बड़े होने तक अम्मा से लिपटकर सोती थी। रात में जरा सी आहट होने पर डर जाती।

पर अम्मा और सिम्मी एक दूसरे के पूरक ही थे। चंद्रावती और चंद्रकांता। अम्मा उसके लिए सब करतीं। सीमा से पार जाकर करतीं और सहज रूप में सिम्मी भी अम्मा पर जान छिड़कती। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता मानो अम्मा के अंतर्मन का विद्रोह साक्षात सिम्मी के रूप में प्रकट हुआ हो और अम्मा को संपूर्ण कर रहा हो। वैसे अम्मा अपनी पाँचों बेटियों में बराबर से बँटी प्रतीत होतीं, सबके अंदर थोड़ी बहुत अम्मा थीं। कौन? मैं? हा__ _हा_हा_हा_! मैं अम्मा का छद्म वेष। निपट देहाती, अनपढ़, गँवार।

आकर खड़ा हो गया, अम्मा के सामने, एक दिन, सालों बाद। अटकलों के बाजार में, मुझसे सस्ता कोई नहीं था। अटकलों ने मेरा विवाह करवा दिया था, मेरे लिए बच्चे भी पैदा कर दिए थे। मेरे कभी न लौट कर आने पर मुहर लग चुकी थी। अपने एकमात्र पुत्र के निकम्मेपन और आशिकमिज़ाजी की कहानियाँ सुन- सुनकर अम्मा के पास कुढ़ने के अलावा कोई रास्ता ना था। बचपन से ही सब मुझसे कहते, अकेला पुत्र नालायक होता है। अकेला पुत्र

सब बर्बाद कर देता है। और तो और बचपन में ही पंडित जी ने मेरा भविष्य तय कर दिया था कि बड़ा होकर मैं कबाड़ की दुकान ही रखूँगा।

तो मैं आया । आया क्या? किस्मत ने धकेल कर वापस भेजा। जाओ। एक ब्रीफकेस में एक जोड़ी कपड़ा और साथ में एक काला स्पिट्ज नस्ल का कुत्ता "विक्की"। सुधा दी को इस नाम से ऐतराज था। बोलीं "नाम बदल दो" मैंने कहा "उसे इस नाम की आदत है दूसरा नाम नहीं ग्रहण कर पाएगा"। उन्होंने कोई बड़ा मुद्दा नहीं बनाया।

और इस तरह हमारे परिवार में एक नए सदस्य का आगमन हुआ। बेहद आत्मीय ।घर के सभी सदस्यों से बेहद घुला-मिला। बस, सुमन उससे दूर रहना पसंद करती थी। अम्मा से तो उसे खास लगाव था।

भले ही किसी काम का ना रहा हूँ, लेकिन परिवार, परिवार था ।लोग मुझे देखकर खुश हुए। अम्मा भी खुश थीं।

२६.

पापा को नए घर में जाने की जल्दी थी। एक बार, मधुबन नगर में, जब पापा और बाबू दोनों थे, पापा ने कहा, “एल्डिको वाला घर बन गया है। चलो देखकर आते हैं”। मैं, पापा और बाबू, झुलसती दोपहरी में, मधुबन नगर से एल्डिको-दो पहुँचे ।उस समय पी.जी.आई तक की सवारी मिलती थी, पर पी.जी.आई से दो किलोमीटर पहले उतरेठिया की सवारी मिलना मुश्किल थी। हमारे पास अपना कोई साधन नहीं था। भ्रष्टाचार के आरोप लगाने वाले सूरमा कहीं मिलते, तो उनसे पूछता जरूर ८५० स्क्वायर फीट का मकान लेने वाले, जनता की सवारी पर धक्के खाने वाले, मेरे पिता ने वह कुबेर का खजाना आखिर कहाँ छुपा दिया?

तब, विक्रम चलते थे। ठूँस- ठूँस कर भरा जाता था ।हम भी उसी में बैठकर उतरेठिया तक आए। फिर उतरेठिया से, भरी दोपहरी, पैदल, पूछते-पाछते, अपने मकान के पते पर पहुँच गए ।खाली सपाट मैदान था। एक ईंट भी नहीं धरी गई थी ।सामने पार्क था। बाबू, पार्क में जाकर, घास पर लेट गए और बोले “जा, तू सबे पता लगाइ के आवा”। कुछ नहीं पता चला। अभी तक मकान बनना भी नहीं शुरू हुआ था ।बड़ी फजीहत हुई। लौटते समय उतरेटिया में जितने विक्रम रुके, सब ठसाठस भरे हुए थे। पापा किसी पर बैठने को तैयार नहीं थे और बाबू लपक कर हर विक्रम पर चढ़ने के लिए उतावले थे। बार-बार मना करने पर बाबू आखिर चिल्ला पड़े “आखिर का जान लेब्या”। अगली विक्रम पर पापा ने कुछ नहीं कहा, और किसी तरह सिकुड़-बटुर कर हमने स्वयं को उसमें पैक कर लिया। घर पहुँचते ही, बाबू शौचालय में गए और अपनी धोती वगैरह सब छाँट डाली। नहा कर निकले। लेकिन चाय के साथ गर्म समोसों को ना ठुकरा पाए। बाबू हमारे ऐसे ही है। जहाँ जाते हैं, एक झोला और मानव की विविधाएँ साथ में लिए रहते हैं। विस्तृत, संकुचित बिल्कुल

नहीं। चरित्र से जितने मजबूत, पेट से उतने कमजोर। एक बार बड़की अम्मा के साथ बस पर सफर कर रहे थे। पेट ने जवाब देना शुरू किया। संकोच के मारे ड्राइवर, कंडक्टर से कुछ ना कह पाए। हालांकि बस में भीड़ ज्यादा नहीं थी। वही बस पर इंतजाम करने लगे। बड़की अम्मा बड़े जोर से चिल्लाईं। तब बस रुकी और जब तक ड्राइवर, कंडक्टर पास आते, बाबू बस के नीचे उतर चुके थे।

२७.लखनऊ (एल्डिको -२)

मधुबन नगर से पापा ने एल्डिको-२ आने का फैसला कर लिया। जब तक मकान नहीं बन जाता, किराए के मकान में रहेंगे। अभिषेक ३१२, हमने किराए पर लिया। मकान बड़ा था। आगे, पीछे खुली जगह थी किंतु उस समय एल्डिको- दो में, आबादी बहुत कम थी। शाम होते ही, कैंट से लेकर पी.जी.आई क्षेत्र तक उल्लू बोलने लगते। उतरेठिया पर तो कोई वाहन रुकने को तैयार ही नहीं होता था। इस क्षेत्र में लूटपाट का बड़ा खतरा था। निजी वाहन न होने की वजह से हमारे लिए समस्या और अधिक थी। ज्यादातर काम पैदल ही निपटाने पड़ते। उतरेठिया में एक चक्की थी। वहाँ से गेहूँ पिसा कर कंधे पर लाद कर घर तक लाना पड़ता। सब्जी के लिए एक ठेले वाला आता । दूध, आसपास के गाँव, पिपरौली या शीतल खेड़ा से लाना पड़ता। छोटे-मोटे सामानों के लिए घर के पास ही एक छोटी सी दुकान थी।

अभिषेक ३१२, से ही मैने बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। घर पर कुछ बच्चे आते । धीरे-धीरे बच्चों की संख्या बढ़ती गई। सुमन एक निजी विद्यालय में पढ़ाने जाती। सिम्मी लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर रही थी। पापा अभी भी रामकृष्ण नगर में ही थे। अभी सेवानिवृत्ति में कुछ साल बचे थे।

एक दिन अम्मा को पेट में भयानक दर्द उठा। अम्मा को वायु-विकार की शिकायत रहती थी। हमने समझा उसीकी समस्या है। किंतु दोपहर तक अत्यधिक पीड़ा से अम्मा परेशान हो गईं। नई जगह थी। अभी कुछ ही समय हुआ था यहाँ आए। परचून की दुकान पर पता करने पर, पता चला, थोड़ा आगे, झील के किनारे ही, आर्मी से सेवानिवृत्त, डॉक्टर जैन रहते हैं। पैदल दो-तीन मिनट का ही रास्ता था। अम्मा असह्य पीड़ा के बावजूद चलने को तैयार हो गईं। कुछ दूर ही चला था कि जूते का तला निकल गया। लँगड़ाते हुए डॉक्टर

साहब के घर पहुँच कर घंटी बजाई। डॉक्टर साहब बेहद सज्जन व्यक्ति थे।सेना से सेवानिवृत्त हुए थे। उन्होंने अम्मा के पेट के दाहिनी और बाईं ओर दबा कर देखा और कहा, " गॉल ब्लाडर में पथरी है। सर्जरी करवानी होगी। पी. जी. आई. रेफर कर दे रहा हूँ, वहाँ दिखा लीजिए"। मात्र दो मिनट में उन्होंने रोग पकड़ लिया।

उन्होंने कुछ दवाइयां लिखी थी, जिन्हें लेने पी.जी.आई तक जाना पड़ा । उन दवाइयों से अम्मा को फौरी तौर पर काफी राहत मिली। उसी दिन शाम को पापा को फोन कर इसकी सूचना दी गई। कुछ दिन बाद पापा आए। पी.जी.आई में डॉक्टर अशोक को दिखाया गया। सर्जरी की तारीख मिल गई थी। अम्मा के स्वास्थ्य का बेहद ध्यान रखा जाने लगा। अम्मा खाने-पीने में काफी लापरवाह थीं । दूसरों का, भले ही, खिलाने-पिलाने का ध्यान रखती हों लेकिन अपना, खाते समय, उन्हें बिल्कुल भी ख्याल नहीं रहता क्या खा रहीं हैं, नहीं खा रहीं हैं। इस दौरान उन्हें फल और फलों के जूस का सेवन ज्यादा कराया गया। उन्हें निश्चित समय पर नाश्ता, खाना दिया जाता। बीज वाली वस्तुएँ जैसे टमाटर, पालक वगैरह नहीं दिए जाते थे।

अम्मा को एक दिन पहले पी.जी.आई में भर्ती किया गया था । पापा और मैं वहाँ रहते। सुबह, पापा को घर भेज दिया जाता ताकि वह नहा खाकर फिर आएँ। जिस दिन सर्जरी थी, उस दिन भी सुबह, पापा घर आ गए थे। हमें अनुमान नहीं था कि इतनी सुबह सर्जरी के लिए ले जाएँगे ।नर्स ने आकर कहा सर्जरी के लिए ले जाना है और स्ट्रेचर पर अम्मा को लेकर ऑपरेशन थिएटर तक मैं अकेले आया। अम्मा की निगाहें और लोगों को ढूँढ रही थीं लेकिन और कोई था नहीं। अम्मा ने बस इतना पूछा "और कोई नहीं आया"। मैंने कहा "नहीं"। उसके बाद अम्मा ऑपरेशन थिएटर में चलीं गईं। कोई बड़ा ऑपरेशन नहीं था। माइनर ऑपरेशन था। लेजर से होना था। थोड़ी ही देर में ऑपरेशन हो गया ।अम्मा वापस कमरे में आ गईं और चौबीस घंटे बाद अम्मा को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई।

अम्मा घर आईं। उस दौरान अम्मा की खूब सेवा सुश्रुषा हुई। उनके खान-पान का व्यक्तिगत तौर पर इतना ख्याल रखा गया कि उस दौरान अम्मा की सेहत बिलकुल दुरुस्त हो गई। पर कौन जानता था, पी.जी.आई से अम्मा का एक दीर्घकालिक रिश्ता बन जाएगा।

२९.

अभिषेक ३१२ में कुछ दिन रहने के बाद हम अपने निजी आवास, आशीर्वाद ८६१ ए में आ गए। नीचे दो कमरे, किचन और शौचालय और गुसलखाना, इतना तैयार करके दिया था। ऊपर का हिस्सा हम स्वयं बनवा रहे थे । इस निर्माणाधीन घर में पापा सब को ले आए।

उन्हीं दो कमरों में समान ठूँस-ठूँस कर भरा गया। कुछ भारी समान ऊपर वाले कमरों में रखा गया, जहाँ अभी प्लास्टर होना बाकी था। नीचे के सामने वाले कमरे में, शाम ढाई बजे से रात नौ बजे तक मैं बच्चों को पढ़ाता था। तब तक सब पीछे वाले कमरे में कैद रहते। रात में सुमन, सिम्मी, अम्मा पीछे के कमरे में सोते। मैं, सामने कमरे में जो बड़ी-बड़ी मेजें थी, उन्हीं पर सो जाता और पापा ऊपर सोते। कभी-कभार, सुबह जो बच्चे पढ़ने आते उन्हें मैं मेज पर सोता मिलता। पापा चार बजे उठकर गेट खोल देते थे। हम सब भी पाँच बजे तक उठ जाते थै। बच्चे ६ बजे आते, किंतु कभी-कभी ६ बजे तक आँख नहीं खुल पाती थी। अम्मा अपने काम में लगी रहतीं, सुमन साफ-सफाई में। सुमन की एक अजीब आदत है।जब तक वह ब्रश न कर लें,नहा न लें ,उसके मुँह से एक शब्द नहीं निकलता। मुझे कोई उठाता ही नहीं था। जब छोटे थे ,छः नहीं बजते थे कि पापा कहते दोपहर हो गई।

सिम्मी का मेरठ के किसी कॉलेज में होटल-प्रबंधन में दाखिले के लिए बुलावा आया था।दो लाख ₹ माँगे थे ।पापा ने हाथ खड़े कर दिए। घर अभी पूरी तरह बना नहीं था। सेवानिवृत्ति के उपरांत पापा को पूरा पैसा भी नहीं मिला था। थोड़ा बहुत मिला, उसे घर में लगा दिया, बाकी रकम के लिए लिखा-पढ़ी की जा रही थी। पर सिम्मी बेहद गुस्से में थी। पापा से कई बार बहस सीमा के पार

जा चुकी थी। अंतत सिम्मी ने पापा से बातचीत करनी बंद कर दी। अम्मा दोनों के बीच में पिसती। अम्मा को दोनों की बातें सुननी पड़तीं। बेबसी और लाचारी में घुटतीं अम्मा और शर्मिंदगी मुझे होती। मेरी आय इतनी नहीं थी कि मैं कुछ मदद कर पाता। घर में तनाव बढ़ता जा रहा था।

३०.

सुमन की भी विवाह की उम्र हो चली थी। रिश्तेदारों ने सवालों की फेहरिस्त तैयार कर रखी थी। सुमन बेहद सीधी-सादी और सरल स्वभाव की थी । प्राइमरी में पढ़ाती थी। जितना कमाती सब हम लोगों पर खर्च कर देती।सब के लिए कुछ न कुछ लाती और खुश रहती। पर लोगों को खुशनुमा चेहरों से परहेज है। कोई न कोई तरीका ढूँढ़ लेते हैं ,हँसते हुए चेहरों पर विषाद चिपका , स्वयं के लिए विक्षिप्त अट्टहास हाँक लाते हैं। शादी नहीं हुई? हो जानी चाहिए। कुछ तो बात है! सारे कारणों पर अन्वेषण होता है।जो कारण जिस हृदय को गुदगुदा जाए ,वही उसका सच बन जाता है। इस तरह नोची हुई हँसी सामाजिक संवादों का अश्लील परिहास बनती है।सुमन भी इसका शिकार हुई। अम्मा जानती थीं ग्रामीण परिवेश में उसका ढलना संभव नहीं होगा। इसलिए नहीं चाहती थीं कि सुधा दी और पूर्णिमा दी की तरह उसका विवाह भी गाँव में हो। पापा, शादी-ब्याह के मामले में कोरे रहे थे। किसी का विवाह स्वयं की जिम्मेदारी पर किया ही नहीं। सुमन भी आए दिन के सवालों से तंग आ चुकी थी। एक दिन क्रोधित स्वर में मुझसे कहा “बाहर लिख कर टाँग दीजिए, माय डॉटर इज़ फॉर सेल”! बाजार तो समाज ने लगा ही रखा है बस खरीदने का नहीं, बिकने का मूल्य चुकाना होता है। खरीदने और बेचने के व्याख्यानों से दृष्टांत भरे पड़े हैं, सहूलियत के हिसाब से चुन लीजिए और पापों की तर्कसंगत गंगा में चाहे डुबकी लगाइए चाहे डूब ही जाइए, बदलते दौर के साथ कपड़े बदल लिए जा रहें हैं, अंदर का चोला नहीं। एक बार दीदी ने फोन पर कहा” अगर सुमन की शादी नहीं कर पा रहे हो तो किसी मंदिर में ले जाकर कर दो”। बात बेहद विषैली थी। मैंने जब अम्मा से कहा तो अम्मा बेहद व्यथित हो गईं और कहा “सुनना तो पड़ेगा”। अम्मा का व्यथित चेहरा देख, उसी समय

निश्चित किया कि येन-केन-प्रकारेण, एक-दो साल के अंदर ही सुमन का विवाह करना होगा। समाज ऐसे ही शिकार करता है।

सिम्मी से कहकर अखबारों में विवाह का विज्ञापन दर्ज करवाया। ना मुझे कोई अनुभव था, ना सिम्मी को, पर आपस में सलाहकर, अम्मा से पूछ-पूछ कर करते रहे। वैसे पापा-अम्मा ने लखनऊ में भी कई जगह देखना-सुनना शुरू कर दिया था । अम्मा चाहतीं थीं सुमन का विवाह लखनऊ में ही हो, विवाह के बाद उसे दूर नहीं भेजना चाहतीं थीं। पर अम्मा कहतीं, पापा जहाँ भी जाते, विवाह की बातें छोड़कर, बाकी सारी बातें करते।

घर बनकर तैयार हो चुका था। पापा की सेवानिवृत्ति के काफी पैसे अभी तक नहीं मिले थे। पापा ने उसके लिए केंद्रीय प्रशासनिक प्राधिकरण में केस दर्ज किया था। दो-दो मुकदमे दर्ज कराए थे। एक केंद्रीय विद्यालय संगठन के खिलाफ और दूसरा नवोदय विद्यालय समिति के खिलाफ। सेवाओं के पारिश्रमिक पर जब व्यवस्था, शतरंज की बिसात बिछा दे, तो आदमी के पास कोई और चारा नहीं रहता। न्यायालय ही अंतिम शरण स्थली होता है। पापा के लिए भी वही था ।किंतु न्यायालय में न्याय की प्रक्रिया पूरी होने में कितना समय लगता है, इसकी कोई सीमा नहीं थी। शेर की गुफा थी ।जिसमें अंदर जाने के पद चिन्ह तो मिलते हैं, लौटने के पद-चिह्नों का कोई सुराग नहीं होता। पापा दिन भर अपनी फाइलें समेटते। जरूरी कागजात डाक के माध्यम से रजिस्ट्री करते। संगठन और समिति से जवाब माँगा जाता तो जवाब के आगे में एक बड़ा शून्य हासिल होता। तारीख मिलती जाती, केस आगे बढ़ता जाता। साल, दो साल, पाँच, दस, पँद्रह साल। गिनती जारी रहती है। न्याय का ककहरा है। आज पापा करीब सत्तासी वर्ष के हो चुके हैं। केस की सुनवाई कब की पूरी हो चुकी है। फैसला आना है।न नवोदय विद्यालय समिति ने कोई दस्तावेज प्रस्तुत किए न संगठन ने। तारीख मिलती जाती है।कभी वकीलों की हड़ताल, कभी जज साहब ही नदारद। पापा में अब बहुत धैर्य है ।इंतजार कर रहे हैं फैसलों का। अम्मा को तो कभी उम्मीद रही ही नहीं। पापा का विश्वास टूटे,

उससे पहले वो जा चुकी हैं। न्यायिक प्रक्रिया की क्रूरता अन्याय के मूलधन का ब्याज होती है। अन्याय, न्याय का ही प्रसाद है।

इस बीच मेरी ओर सिम्मी की मेहनत रंग लाई। डाक से नोएडा से एक लिफाफा आया था। डॉ राज नारायण सिंह ने, अपने पुत्र आनंद राज सिंह के लिए, हमारी सुमन को पसंद किया था । पत्र के साथ लड़के का बायोडाटा और तस्वीर भेजी थी। लड़का एम.बी.ए था । मॉस्को में प्राइवेट फर्म में उच्च पद पर तैनात था।

पापा को उस समय कुछ नहीं बताया। बस, अम्मा को सब बताया। तस्वीर में आनंद ,सबको पसंद आए।

शाम को, पत्र में दिए गए फोन नंबर पर, मैंने फोन पर बात की। आनंद के पिता से ही बात हुई। बात सहज और सरल माहौल में हुई। उन्होंने गोद-भराई के लिए हमें नोएडा आने का निमंत्रण दिया। मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

जिस दिन जाना था, उसकी पहली रात ही पापा को बताया। पापा बेहद नाराज हो गए। बिगड़ने लगे कि हमने बिना जाने-समझे शादी तय कर दी। मैंने कहा, "अभी सगाई हो रही है, शादी नहीं"। पापा ने सब जगह फोन करके बात फैला दी। रिश्तेदारों ने शंका जताई, चेतावनी दी "लड़का विदेश में है, देखिएगा कहीं हाथ-पैर न कटवा लीजिएगा"। बहरहाल सगाई हुई। सगाई के बाद जब सब वापस लखनऊ आए, सिम्मी ने कहा "बाकी सब ठीक है लेकिन वे बहुत बड़े लोग हैं" ।सिम्मी की शंका वाजिब थी। इतने बड़े घर में विवाह के लिए होने वाला आयोजन, क्या हमारे सामर्थ्य अनुसार था? सुमन की आँखें भर आईं थीं। अम्मा भी सशंकित थीं किंतु मैंने निश्चिय किया कि हमारी तरफ से कोई अवरोध नहीं होगा। ईश्वर चाहेगा तो यही विवाह होगा।

कुछ दिन बाद, अम्मा-पापा फिर नोएडा गए। बाकी की बातें सिलसिलेवार तरीके से तय करनी थीं। आनंद के पिता भी हिंदी भाषा पर आधिपत्य रखते थे और पापा भी। दोनों साहित्यिक चर्चाओं में मशगूल हो जाते । अम्मा को

टोकना पड़ता कि क्यों ना हम उस विषय पर बात करें जिसके लिए हम आएँ हैं।

अम्मा-पापा जब लौट कर आए तो अम्मा मायूस थीं। पूछने पर बताया उन्होंने बड़ी रकम की माँग की थी । फिर भी हमने हिम्मत नहीं हारी। शादी और तिलक की तारीख तय हो गई । इस बीच मनीष और राजीव अपनी माता जी के साथ लखनऊ आए। शादी कहाँ से हो, इस पर दुविधा थी। वे चाहते थे शादी पटना से हो, ''पाटलिपुत्र अशोका होटल'' से । हमारे लिए बड़ी चुनौती थी ।सारे रिश्तेदारों को ले जाना और एक अनजान जगह,विवाह का आयोजन करना। पापा को पता चला वह अलग नाराज हो गए। कैसे वहाँ इंतजाम होगा? हम लोगों ने बिना सोचे समझे सब तय कर दिया। वहाँ खाने के पहले शराब परोसी जाती है, वगैरह, वगैरह।

मैंने मनीष को फोन कर हमारी दिक्कत बताई ।यह भी बताया कि सुमन की सहेलियाँ वगैरह उसकी शादी में नहीं आ पाएँगी और सब के आने-जाने का इंतजाम, हमारे बस की बात नहीं थी। कुछ दिन बाद मनीष का फोन आया कि आनंद लखनऊ से विवाह करने को तैयार हो गए हैं किंतु विवाह का आयोजन होटल 'मेरा मन' में होना चाहिए । लखनऊ में उनकी माताजी इसी होटल में रुकीं थीं और वहाँ की सेवाओं से अत्यधिक प्रभावित थीं।

पापा नहीं तैयार थे। फिर भी मैंने उनकी बात मान ली। फिर उन्होंने कहा दो दिन के लिए होटल बुक करना होगा क्योंकि पटना से सारी गाड़ियाँ, लखनऊ, रात में ही पहुँचती हैं और इतनी शीघ्रता से विवाह का आयोजन असंभव है। दो दिन के लिए होटल का खर्च बहुत ज्यादा पड़ रहा था। अंततः, रेलवे की समय-सारणी से, एक ट्रेन मैंने ढूँढ़ ही निकाली। 'अकाल-तख्त एक्सप्रेस'। जो प्रातः ढाई बजे लखनऊ पहुँचती है । इस तरह उन्हें आराम के लिए और तैयारी के लिए दिन भर का समय मिल जाता और शाम को विवाह संपन्न हो जाता। अगले दिन, प्रातः, नाश्ते के उपरांत, बारात की रवानगी हो जाती। इस तरह

होटल का एक दिन का अनावश्यक खर्च बच जाता। अंततः उन्होंने इस ट्रेन से आना स्वीकार कर लिया और अंतिम अवरोध भी हट गया।

बस एक कमी थी । विवाह के पूर्व एक बार भी आनंद से नहीं मिला था। एक बार मनीष से मैंने कहा तो उन्होंने कहा, ''क्या जरूरत है मुझे देख लिया, मतलब आनंद को देख लिया'' । इस बीच दो-तीन बार नोएडा जाना पड़ा। पापा को जरा- जरा सी बात पर क्रोध आ जाता था इसलिए उनके स्थान पर मैंने बाबू को साथ ले जाने का फैसला किया। वे कभी उग्र नहीं होते। कुछ भी हो जाए संयत रहते । प्रलय भी आ जाए, उनका स्वर उग्र नहीं होता। बस, एक बार गाँव में, उनका क्रोध देखा था। शैल कुमारी जीजी का बेटा अन्नू, एक चाकू से खटिया पर खेल रहा था। वह बार-बार उस चाकू को फँसा कर खींच रहा था। बाबू बार-बार उसे मना कर रहे थे। "ना कर बिटवा टूट जाए" । और चाकू टूट गया । फिर उन्होंने उसे बहुत मारा । मैं वहीं खड़ा आश्चर्य से देख रहा था। मान्यता थी बाबू गुस्सा नहीं करते, बच्चों को कभी नहीं मारते।

बाबू मेरे साथ नोएडा जाते । फरक्का एक्सप्रेस हमेशा देर से चलती। पर मेरे लिए वह सहूलियत थी। कई बार हमें स्टेशन पर पाँच- पाँच, छः-छः घंटे इंतजार करना पड़ता। हम दोनों शांति से बैठे रहते। हम गाजियाबाद में होटल "गोपाल प्लाज़ा" में रुकते । बाबू के स्वभाव में औपचारिकता बिल्कुल नहीं होती। धोती-कुर्ता पहना, एक झोला उठाया और चल देते ।कहीं भी जाना हो समय, स्थान और मौके के हिसाब से ना उनकी वेशभूषा बदलती, न व्यवहार। नोएडा भी जाते तो बड़े आराम से सेंटर टेबल पर पैर फैला कर बैठते या पूरे सोफे पर आराम से लेट जाते। कोई बुरा भी नहीं मानता था । पान के बेहद शौकीन। बिना किसी तकल्लुफ के पानी की फरमाइश करते। एक बार होटल से निकल, नोएडा, सेक्टर पचपन की बस के लिए, हम दोनों खड़े थे। बस आई ।गजब की भीड़ थी। भीड़ चढ़ने लगी। मैंने कहा "रहै द्या, बाबू, दुसरी बस से चला जाए"। कह कर, मैं उनकी तरफ पलटा । वे नहीं थे ।बस जा चुकी थी। समझ में नहीं आया, क्या करूँ? कहाँ ढूँढूँ? वहाँ वे लोग इंतजार कर रहें होंगे। फिर सोचा

वहीं चलकर, उन लोगों से मदद ली जाए। दूसरी बस पकड़ कर, मैं, सेक्टर पचपन के मोड़ पर उतरा। वहाँ से रिक्शा लेकर, मैं उनके घर की तरफ चल पड़ा । उनके घर की तरफ जाने वाली, पहली मोड पर रिक्शा जैसे ही मुड़ा, सामने बाबू बड़ी तेजी से झोला उठाए चले जा रहे थे।जिस बस पर मैं नहीं चढ़ पाया, उसी बस से वो,मुझसे पहले नोएडा पहुँच गए। एक छोटी सी डायरी जिसमें सबका पता दर्ज रहता, उनके साथ हमेशा रहती।

३१.

चौदह मई को तिलक था। पटना जाना था। मेरा, पापा और बाबू का जाना तय था। अम्मा से पूछ कर ही सब कर रहा था । अम्मा ने कहा बड़े वाले फूफा, अवध राज सिंह और रामकृपाल जीजा से पूछ लो, वो जाने को तैयार हों तो उन्हें साथ में ले लो। वे दोनों तैयार हो गए। मैंने पाँचों का आरक्षण तेरह मई का करवाया। मनीष ने कहा था, वहाँ रहने का इंतजाम वही करेंगे। वहाँ पहुँचकर फोन करने को कहा था। वहाँ पहुँचने में काफी रात हो गई । मैंने मनीष को फोन किया। उन्होंने फोन नहीं उठाया। उनके बड़े भाई, राजकमल को, यहाँ तक कि आनंद को भी फोन किया। किसी ने फोन नहीं उठाया। मेरे हाथ-पैर फूलने लगे ।इन सब का अनुभव था ही नहीं। कितने पैसे, कहाँ खर्च होने हैं, अनुमान नहीं था ।होटल का खर्च और आ बैठा। खैर, किसी तरह ढूँढ़ कर एक औसत दर्जे के होटल में हम रुके ।शर्मिंदगी हो रही थी। साथ में जिनको लेकर आया था, उनके आराम का ख्याल रखना, मेरी जिम्मेदारी थी पर वहाँ तिलक में कहाँ, कितना खर्च होगा इसका अंदाज था नहीं इसलिए जेब भी संभालनी थी।

दूसरे दिन, दिन भर सामान की खरीदारी की ।जो, जो सामान अम्मा ने जैसे-जैसे बताया था, वैसे ही खरीदा ।शाम को उनके यहाँ जाकर, तिलक की रस्म अदा की। रात में सिम्मी से फोन पर बात हुई । उसने पूछा "तिलक चढ़ गई" । मैंने कहा, "हाँ, चढ़ गई गई"। शंकित सभी थे। मुझसे हो पाएगा?

पहली लड़की थी, सुमन, जिसके विवाह की सर्वेसर्वा अम्मा थीं। जो कुछ करना था, उन्हीं से पूछ कर करना था। एक बार अम्मा को स्वयं के होने का अहसास कराना था। वह हैं और कितनी वांछनीय हैं, अम्मा को इस बात का विश्वास कराना, उतना ही आवश्यक था, जितना अम्मा का मुझ पर भरोसा

बनाए रखना आवश्यक था। बीस मई को विवाह था। छोटी-छोटी चीजों का ख्याल रखना था। रोज लिस्ट तैयार होती, रोज बाजार जाना होता । सिम्मी ने बहुत दौड़-भाग की। गहने वगैरह अम्मा और सिम्मी ने पसंद किए। बाकी सुमन की सारी साड़ियाँ, लहँगा-चोली वगैरह सब सिम्मी ने ही पसंद किए। सुमन ने कभी, किसी चीज की चाह की ही नहीं। अपने विवाह में भी ।उसे कोई कुछ भी दे देता वह उसे बहुत संभाल कर रखती। जो उसके लिए ला दिया जाता खुशी-खुशी ले लेती। यहाँ तक कि उपहार के रैपर भी बहुत संभाल कर रखती । कभी-कभी ऐसा लगता था घर की परिस्थितियों को देखते हुए उसने अपनी इच्छाओं और अभिलाषाओं को पनपने ही नहीं दिया। अम्मा की परछाईं बनी रहती। जहाँ भी अम्मा को जाना हो साथ में सुमन रहती थी। कितनी भी थकी हो, मना नहीं करती थी।

एक तरफ सुमन के विवाह की तैयारी हो रही थी। अम्मा की साध पूरी होने की खुशी थी, तो दूसरी तरफ हम सब के अंदर बहुत कुछ उमड़-घुमड़ रहा था। हम तीनों ने काफी समय बिताया था, एक दूसरे के साथ। अपने-अपने धूप-छाँव बेझिझक साझा करते और अम्मा के इर्द-गिर्द खिले रहते। विवाह के पहले दिन, शाम को, सुमन और सिम्मी को रोते देखकर मैं भी अपने आप को रोक नहीं पाया। सुख की डोर हमेशा दुख खींच के रखता है ढीला नहीं छोड़ता किंतु उसके शर-संधान का तरीका विचित्र और अचूक है। अम्मा, हम तीनों का रोना देख नहीं रही थीं, महसूस कर रही थीं और अपने काम में व्यस्त थीं। घर में भीड़ थी। सबको खिलाने- पिलाने की जिम्मेदारी उनकी थी। विवाह कल था, उसकी भी तैयारी करनी थी। उन्हें रोने की फुर्सत नहीं थी, अम्मा जानती थी। सब कुछ निपटाते ,रात काफी हो गई थी। प्रातः ढाई बजे बारातियों को लेने स्टेशन पर जाना था। करीब साढ़े बारह बजे मैं सोने गया। सिम्मी से डेढ़ बजे जगा देने को कहा।

रात दो बजे के करीब मैं और छोटे फूफा जी, विक्रमाजीत सिंह, स्टेशन पर पहुँचे । उनकी ट्रेन आते-आते सुबह के साढ़े तीन बज गए थे। बारातियों को

स्टेशन से होटल तक पहुँचाने के लिए लग्जरी बस किराए पर की थी। उनके परिवार के लिए अलग-अलग कारें थीं। उन्हें होटल पहुँचा कर, कमरों की चाबियाँ उन्हें सौंप कर लौटते-लौटते सुबह के साढ़े छः बज गए थे। उमाशंकर और बाबू भी वहाँ स्कूटर से आए थे । हमारे घर से होटल करीब बीस किलोमीटर पड़ जाता है ।विवाह की सारी सामग्री बारी-बारी से होटल पहुँचाने में पूरा दिन लग गया। कुछ मेहमान होटल में ही पहुँच रहे थे, कुछ घर पर ।दोनों जगह रहना असंभव था। होटल की जिम्मेदारियाँ पूर्णिमा दीदी को सौंप कर, घर के मेहमानों को अलग-अलग गाड़ियों में होटल पहुँचा रहा था। सिम्मी, सुमन को लेकर पार्लर गई थी। पार्लर से लौटते ही सुमन, सिम्मी, प्रतिभा, सुधा दी और अम्मा एक साथ एक गाड़ी में रवाना हो गईं।

सबसे आखिरी में मैं, पापा, बाबू, चाचा और दो मजदूर अलग गाड़ी से होटल पहुँचे। रास्ते भर तीनों महापुरुषों ने होने वाली शादी को अपने तीक्ष्ण, व्यंग्य-बाणों से छलनी कर दिया। अपने तरकश के सारे तीर चला डाले । यहाँ तक कहा कि हमें गाड़ी की क्या जरूरत है, चलिए हम सब ऑटो से चलें। कारण अत्यंत साधारण था, पहली बार हमारे यहाँ पूरे विवाह का आयोजन किसी पुरुष नहीं बल्कि एक स्त्री के संरक्षण में हो रहा था। हमारी अम्मा। पुरुष का दंभ चोट खाया था। बार-बार सिर उठाता था। मैं शांत था । बस उनकी बातें सुन रहा था।

जयमाला के समय, वर पक्ष ने मुझे मेरी काली कमीज की वजह से टोक दिया। शुभ कार्य में काला रंग निषेध था। सुबह डेढ़ बजे से मैं वही कपड़े पहने हुए था। कपड़े बदलने का समय बिल्कुल नहीं मिला था। जयमाला के बाद, जब सारे बाराती खाने के लिए हॉल में गए, फटाफट कमरे में गया नहा कर जो मिला पहन लिया, बस काला नहीं था। शरीर थककर चूर था ।विवाह के समय कुर्सी पर बैठे-बैठे आँख लग ही गई ।आँख खुली तो सिंदूर-दान हो रहा था ।

आनंद, सुमन की माँग में सिंदूर भर रहे थे। अम्मा बगल में ही बैठी थीं। सुमन थोड़ी देर में चली जाएगी। सोच कर मन में पीड़ा का ज्वर सा उठा। सिम्मी, प्रतिभा सुधा दी, पूर्णिमा दी सब थे वहाँ पर। एक दिन ऐसे ही सिम्मी की शादी में सुमन भी उन सब के साथ होगी, मैं इस तरफ । उसके साथ ही अम्मा स्वयं को अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त समझेंगी ।अम्मा विवाह कार्यक्रम में व्यस्त थीं। क्या चल रहा होगा उनके मन में अनुमान लगाना बहुत मुश्किल नहीं था ।मुक्ति का सोपान था किंतु एक-एक कर स्वयं से अलग होने का परिचय। कितना उत्सव , कितना कष्ट?

"बहुत माल खर्च किए हैं। और लड़की हैं क्या"? मैंने उस आदमी की तरफ देखा, जिसने मुझे रोक कर यह सवाल किया था । जी में आया पूछूँ "आदमी हो क्या"? बाराती था। बात बढ़ाकर कोई फायदा नहीं था। बारात की विदाई का समय था। आनंद, मनीष और सुमन को हवाई अड्डे पहुँचना था। सुमन ने अम्मा-पापा के पैर छुए। अम्मा के गले लग कर रोने लगी। इस बार अम्मा रोईं और खूब रोईं। सिम्मी, प्रतिभा, सुधा दी, पूर्णिमा दीदी सब रोने लगे। मैं भी रोया। कभी पुरुष होने का दंभ मेरे रोने के आड़े नहीं आया । संवेदना मुझे पहचानती है और मैं संवेदनाओं से अपरिचित नहीं हूँ। मैं एयरपोर्ट तक सुमन की गाड़ी के पीछे गया। मुझे बाहर ही रोक दिया गया। देखा सुमन, मनीष और आनंद के साथ अंदर प्रवेश करने वाली है। बाहर से ही आवाज दी। मनीष, सुमन को लेकर आए। जेब में जो पैसे थे, सुमन की हथेली पर रखकर मनीष से कहा "ख्याल रखिएगा"।

३२.

होटल से घर पहुँचते- पहुँचते दोपहर हो गई। घर पहुँचते ही मैं पहली मंजिल के बीच वाले कमरे की फर्श पर ढेर हो गया। फिर आँख खुली तो रात के करीब नौ बज रहे थे। मन उचट सा रहा था। अंदर सब खाली-खाली सा था। खाना खाकर फिर सो गया। सुबह होते ही तगादे का सिलसिला शुरू हो गया। जिसका जो हिसाब बन रहा था, बिल लेकर पहुँचने लगा। हफ्ते भर यही सिलसिला चलता रहा ।

सुमन के जाने के बाद घर खाली लगने लगा। सुमन सबके बीच का सेतु-बंध थी। सिम्मी सुबह अपनी नौकरी पर चली जाती, फिर लौटते सात-आठ बज जाते। मैं, पापा, अम्मा और विकी बस यही चार प्राणी घर में रहते। पापा भी, नौ बजे करीब, प्लाजा में, अपनी दुकान पर चले जाते। स्टेशनरी की दुकान थी। हालांकि दुकान ज्यादा चलती नहीं थी फिर भी सेवानिवृत्ति के उपरांत पापा को व्यस्त और प्रसन्न रखने का जरिया थी। वहाँ उनके मित्रगण आते और व्यवसाय से अधिक राजनीतिक और सामाजिक परिचर्चाओं की लकीरें खींची जाती। डेढ़- दो बजे पापा खाना खाने आते और थोड़ा आराम करने के बाद , पुनः चार बजे दुकान पर चले जाते और रात आठ, साढ़े आठ तक लौटते। ढाई बजे दोपहर से मैं पढ़ाने बैठता, रात नौ- साढ़े नौ बज जाते। बीच में दो-एक बार चाय पीने ऊपर जरूर आता । बचे अम्मा और विक्की। ऊपर, वे दोनों अकेले रह जाते ।

विक्की, अम्मा का परम-भक्त। अम्मा यदि कहीं चली जाएँ तो वह किसी और के हाथ से खाना नहीं लेता था। अम्मा अपने हाथ से देतीं, तब खाता ।खास कर दूध- रोटी। अम्मा के लौटने पर दौड़कर गेट तक आता, पंजे फैलाकर जमीन पर लेट, लाड़ दिखाता, गुस्से में उछलता, भौंकता। हालांकि अम्मा कभी उसे हाथ भी नहीं लगातीं पर उसकी भक्ति में कभी कमी नहीं आई। बच्चों को कभी

कुछ नहीं करता था। सृष्टि बहुत छोटी थी। घर पर आती तो उसके बाल पड़कर जोर-जोर से खींचती पर वह कुछ नहीं करता ।असह्य पीड़ा होने पर कुनमुना कर रह जाता या उठकर चला जाता। पापा जब चाय पीते उनके सामने आकर बैठ जाता। उनके चाय पीने के समय से सरासर परिचित था। जैसे ही पापा चाय पीने बैठते, उनकी कुर्सी के सामने आकर बैठता। पापा उसे बिस्किट जरूर खिलाते ।कोई अपरिचित बिना हमारी उपस्थिति के गेट के अंदर नहीं आ सकता था। चाचा जब भी आते, गेट से ही “विक्की-विक्की” चिल्लाने लगते। उसे पुचकारते और उससे संभले रहने का भी प्रयास करते। किंतु वह सगे-संबंधियों और मेहमानों के बीच का अंतर पहचानता था। किसी भी सगे-संबंधी से उसने कभी कोई अभद्रता नहीं की।

सुमन की शादी में कर्ज काफी लिया था। कर्ज चुकाना था ।बच्चों की फीस बढ़ा दी, पर बच्चे उसी तादाद में आते रहे ।साल भर के अंदर सारा कर्ज निपट गया । इसी बीच, झांसी से मधुर का फोन आया। मुझे फौरन बुलाया था, अन्यथा धमकी दी थी कि खुद को भी गोली मार लेगा और प्रतिभा को भी गोली मार देगा। प्रतिभा ने अलग फोन किया बोली “अकेले मत आइएगा, किसी को साथ लेकर आइएगा”। किसे साथ लेता? इस मामले में मैं बेहद कच्चा हूँ। मित्र बनाना, संबंध बनाना, मुझे नहीं आता। प्राकृतिक व्यवहार ही पसंद है। बनावटीपन नहीं । इसलिए झूठ-मूठ ना किसी की कभी तारीफ की, ना गलतियों की तरफ इशारा करने से चूका। सामाजिक रूप से मैं बिल्कुल अलग-थलग ही था। इसलिए अकेले ही गया । इन सब परिस्थितियों को अम्मा को अकेले ही वहन करना पड़ता। पापा बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाते। बीमारी के बाद से, हम सब यही प्रयास करते रहे कि उन्हें ऐसी किसी भी परिस्थिति से दूर रखा जाए जो उनके लिए उत्तेजना का कारण बने और हानिकारक हो इसलिए इस घर में कई ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे पापा आज तक अनभिज्ञ हैं।

मधुर अस्पताल में थे। उन्होंने स्वयं को घायल कर लिया था । जिस दिन मैं पहुँचा, उसी दिन दोपहर में डिस्चार्ज होकर घर आए थे। प्रतिभा मेरे साथ लखनऊ आना चाहती थी। मैं भी उसे वापस ले आना चाहता था। लेकिन उनके संबंधी प्रतिभा को न जाने देने पर अड़े थे। मधुर आज ही अस्पताल से लौटे थे, ऐसे में प्रतिभा को अगर ले आता, उस पर कई लाँछन लगते ।मुझे लगा इन्हें एक मौका शायद और मिलना चाहिए। दो छोटे बच्चे थे। शुभ और गुड़िया। पारिवारिक तनाव की छाया बच्चों पर ना पड़े इसलिए प्रतिभा को समझा-बुझाकर मैं वापस लौट आया।

प्रेम निर्बंध होता है, विवाह संबंध होता है ।एक में भाव है, दूसरा द्रव्य है ।प्रेम में विवाह का तत्व ढूँढ़ना उतनी ही बड़ी मूर्खता है जितना विवाह में प्रेम। प्रेम अनुभूति है, मुक्ति है, निस्वार्थ है। विवाह सामंजस्य है, सामाजिक दायित्व है, सहचर्य है, स्वार्थ है। हो सकता है, विचारों में प्रेम के स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप को लोग एक ही मान लेते हों किंतु ये नितांत भिन्न हैं। उत्तर और दक्षिण, पूरब और पश्चिम की तरह। सूक्ष्म स्वरूप अविकारी है, जिसमें सब त्याग कर अंततोगत्वा स्वयं के मोह से मुक्ति है । स्थूल स्वरूप विकारी है, जिसमें दंभ है, लालसा है, सब कुछ समेटने की होड़ है, मेरा-मेरा की ललकार है किंतु स्वयं के मोह से अलग ना हो पाने का दुख, सब कुछ मिट्टी कर जाता है। दुविधा में माया तो मिलती ही नहीं, राम भी नहीं मिलते। कृष्ण का राधा का हाथ अनय को थमाना, प्रेम का सूक्ष्म रूप था और रुक्मणी का हरण स्थूल स्वरूप। इस तरह एक ही जीवन में कृष्ण ने ब्रह्मांड की सममिति का दायित्व निभाया और प्रेम और विवाह के दो भिन्न संस्करणों से ही संसार की चक्की चलेगी यह समझाने का प्रयास किया।

व्यक्ति के चरित्र का सर्वोत्तम परीक्षक स्वयं उसका विवेक है। यदि मनुष्य स्वयं से बात कर सकता है तो उससे अधिक चरित्रवान कोई नहीं। यदि स्वयं से बात करने से कतराता है तो वह चरित्रहीन है क्योंकि और कुछ भी हो, अपने आप से झूठ बोलना असंभव है।

किंतु साधारण जीवन में वह अलौकिक तत्व कहाँ मिल सकता है? जीवन के हर मोड़ पर "स्व" का तंत्र, स्वयं का अर्थ ढूँढ़ने के लिए सिर उठाता है और टकराव की स्थिति होती है। प्रत्येक "स्व" स्वयं में दूसरे "स्व" को मिलाकर अहं बनने का प्रयास करता है और अंततः विवाह, जोकि एक बहुत ही प्रगतिशील संस्था है ,अपने औचित्य को खो देता है।

ऐसा ही कुछ हमारे चारों ओर था। उमाशंकर, जहाँ सुधा दी से घृणित व्यवहार करते थे, वैसा ही आचरण मधुर ने प्रतिभा के साथ आरंभ कर दिया था। क्यों? कन्या-पक्ष को नीचा दिखाकर, गालियाँ देकर, स्त्री पर हाथ उठाकर, मिलेगा क्या? आत्मसंतोष ? क्या लांछन, इल्जाम लगाकर आप सचमुच किसी के चरित्र को मटियामेट कर सकेंगे ? फिर तो सारा संसार ही चरित्रहीन हो जाएगा। ऐसा संभव नहीं है। वे लोग जो इस प्रक्रिया में सम्मिलित हैं और स्वयं को पुरुषार्थ के वस्त्रों में छुपाए हैं, एक बार घर जाकर आईने में स्वयं को देखें।उनकी आँखों से एक बेहद कमजोर और दब्बू प्रकृति का जीव झाँक रहा है, जिसे दुनिया की कोई भी व्याकरण-शाला "पुल्लिंग" या "स्त्रीलिंग" के अंतर्गत स्वीकार नहीं करेगी। कदापि नहीं।

अम्मा दुखी थीं किंतु शर्मिंदा नहीं थीं। अपनी बेटियों पर उन्हें पूरा भरोसा था, पर पापा का मानना था लड़कियों को पति के साथ ही रहना चाहिए। पापा बहुत पढ़े-लिखे थे। अम्मा बिल्कुल नहीं। पापा प्रशासक थे, अम्मा रिआया थीं।

३३.

सुमन कुछ दिन पटना में रही और फिर कुछ महीने नोएडा में । उसके बाद वो आनंद के साथ रूस चली गई। अम्मा चाहतीं थीं रूस जाने से पहले एक बार लखनऊ आकर मिल लेती। मैंने उनके घर वालों से बात की, उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। भारतीय समाज में लड़के वाले, अपने आपको लड़की वालों से कई पायदान ऊपर देखते हैं, पर यह देख नहीं पाते, लड़के आते कहाँ से हैं।

सुमन से हर इतवार पी.सी.ओ से बात करनी पड़ती, घर पर आई.एस.डी की सुविधा नहीं थी। कभी-कभार सुमन अम्मा से बात करने के लिए घर पर फोन कर लेती । अम्मा हमेशा पूछती “घर कब आओगी”?

अगस्त २००५ में सुमन ने रूस में ही अपने पहले बेटे को जन्म दिया। आदित्य । उसके कुछ महीने बाद सुमन भारत आई।

होली से पहले उसे लेने मैं पटना गया ।आनंद भी साथ आए थे। विवाह का प्रमाण-पत्र बनवाना था। होली यहीं मनाई। आनंद का जन्मदिवस भी यहीं मनाया गया, साधारण तरीके से। फिर आनंद चले गए। सुमन करीब बीस-पच्चीस दिन ही रही। मनीष उसे लेने आ गए। अम्मा का मन अभी कहाँ भरा था? शादी के डेढ़ साल बाद सुमन आई थी। पर उन लोगों का आग्रह था सुमन का पासपोर्ट अभी नहीं बना था, उसे बनवाना था। सुमन चली गई। ऐसा लगा सुमन खुश है।

नहीं ।एकदम गलत। दीवारों पर लगे पोस्टर, दीवार नहीं होते। सिम्मी ने जो बताया, ऐसा लगा उबकाई आ जाएगी । सिर में सनसनाहट सी हो रही थी। आनंद ने सुमन के पेट में ठोकर मारी थी, उस समय वो जूते पहने हुए थे। सोचता हूँ, रक्त की गर्माहट, कैसी कुलाँचे मार रही होगी, उस समय उनकी धमनियों में। संसार तो जीत ही लिया होगा? अशोभनीय, अक्षम्य कुकृत्य। क्या इसीलिए

लोग अपने घरों में लड़की का जन्म नहीं चाहते? मन घृणा से भर गया। पाप में बराबर का हिस्सेदार मैं भी था। गऊ सी लड़की ऐसे लोगों के यहाँ ब्याह दी, अनजाने में ही सही। सुमन पर भी क्रोध आ रहा था, एक बार भी मुझे नहीं बताया। क्यों? आँख बंद कर सूरज निगलने की कला, मुझे नहीं आती। मन कलपता रहा। आखिर हमने किया क्या था ?सिर्फ इसलिए कि हम लड़की वाले हैं, ये सब हमारे स्वाभिमान, हमारे अस्तित्व पर पैर रखकर खड़े हो जाएँगे ?नाम ही तो अलग हैं। किसी का उमाशंकर, किसी का मधुर, किसी का आनंद। घर में इनके भी स्त्रियाँ होगीं ? बिना स्त्री के घर का अस्तित्व कहाँ होता है। पर कितना भी प्रयास करें इनके चेहरे स्पष्ट नहीं होते। प्रतीत होता है असंख्य चेहरों की पिक्सेल लेकर गूँथ दिया गया हो। चेहरा नहीं, बस कुछ न होने में, सब कुछ होने का खुमार।

सामाजिक चरित्र जब आर्थिक केश- राशियों के मापदंड पर नापा जाएगा समाज अवश्य गंजा ही रहेगा। चिकना घड़ा। स्त्रियोचित सम्मान के नाम पर धड़ल्ले से खुलते जा रहे संगठन्नों, नए-नए मोर्चों के आकर्षक कलेवरों के नीचे दबी, छिपी स्त्रियों, महिलाओं, लड़कियों की चींखें बाजार में नहीं बिकतीं। क्योंकि जो बाजार चलाते हैं, वही समाज चलाते हैं, वही अखबार चलाते हैं।

आर्थिक पायदान पर खींची गई लकीरों में से, हमें, हमारे हिस्से में, कुछ नहीं चाहिए था। हमारी चादर, हमारे पैर आराम से ढँक लेती है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम लूले-लँगड़े हैं, असहाय हैं।

अम्मा को पता चला तो उन्हें दु:ख हुआ। दु:ख नहीं होगा? पर इतना दुख व्यक्त नहीं किया जाता। उसे अपने चरित्र का हिस्सा बना लिया जाता है अम्मा ने बस इतना कहा “यै सब मनई अहैं”? बिल्कुल नहीं। हमारे बर्दाश्त की कोई इंतहा थी या नहीं थी, पता नहीं, परंतु ईश्वर ने परीक्षा के लिए ना जाने कितने घर चुने होंगे, उनमें से शायद एक घर हमारा भी था। उसके प्रश्न पत्रों का कोई अंत नहीं था ।प्रश्नों की गति अनवरत थी। एक प्रश्न हल करने का प्रयास करो,

तब तक कई और प्रश्न अपना उत्तर ढूँढ़ने के लिए विह्वल हो उठते। अम्मा ने जूझना सीखा था और जूझना सिखाया था।

एक दिन सुबह सुमन का फोन आया। रो रही थी। बोलने लगी "मुझे यहाँ से ले जाइए।" मैंने कहा" ठीक है"। सुबह, पुरानी दिल्ली से आठ बजे के करीब अवध- असम चलती थी, जो शाम आठ बजे तक लखनऊ पहुँचा देती। मुझे वहाँ पहुँचने में सुबह हो ही जाती इसलिए मैंने कहा, " यदि तुम स्टेशन तक आ जाती, तो सुबह ही वहाँ से निकल आएँ वरना फिर दोपहर तक इंतजार करना पड़ेगा"। सुमन तैयार हो गई।मैं लखनऊ से, बस से, आनंद विहार पहुँचा। फिर वहाँ से पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन। सुमन की सास, सुमन को छोड़ने आईं थीं। उन्होंने मुझसे कहा" आनंद होते, तो कभी नहीं जाने देते"। मैंने कुछ नहीं कहा। सुमन की बर्दाश्त करने की क्षमता, अम्मा के समकक्ष थी।उसके सरल सहज स्वभाव पर आज तक किसी ने टीका-टिप्पणी नहीं की। इसलिए मुझे यकीन था कि जब पीड़ा ने आत्मसम्मान और अहं के अधिकार क्षेत्र में काबिज होने का प्रयास किया होगा, तभी सुमन का मुँह खुला होगा, अन्यथा सुमन की शिकायत ना कभी विद्यालय के शिक्षकों ने की, न कॉलेज ने, ना संगी- साथियों ने, ना रिश्तेदारों ने ना कभी किसी व्यक्ति ने। बल्कि हम सब में सबसे सरल सबसे सौम्य व्यवहार उसी का रहा है। किसी के भी प्रति। उन्होंने उसमें भी नुस्ख निकाल दिया। या तो हम सब ने, जिन्हें मानवीय गुण समझकर अपनाया था, वे सब वर्तमान में अवगुण सिद्ध हो चुके हैं या हमारा परिवार समय और संसार से बहुत पीछे रह गया।

हमारा परिवार बहुत अधिक सामाजिक ना था, इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे मन में विद्वेष, प्रवंचना या अहंकार था। नहीं, ऐसा कुछ नहीं था। बस, हम अपनी सीमाओं में रहना पसंद करते थे।घोर पारिवारिक।अपने सुख और दुख से आपस में बँधे रहने वाले। हमें याद है हम, कलकत्ता में, क्लब में नए साल

की पहली पार्टी में, सपरिवार सम्मिलित हुए थे। बफेट पहली बार देखा। खाना ऐसे भी खाया जाता है। हम उस भीड़ का हिस्सा न बन पाए और भूखे पेट लौट आए।बस दीदी ने शायद खाया था और थोड़ा बहुत अम्मा के लिए प्लेट में लगा कर ले आईं थीं।

कहा ना, दीदी बहुत स्मार्ट थीं। हम में से किसी ने शिकायत नहीं की। हमारा व्यवहार ही ऐसा है, हमारी प्रकृति है शायद। हमारी खामोशी ही हमारे दुर्गुणों का केंद्र बिंदु बन गई।अपने-पराए जिसने जो कहा, सुन लिया, कभी किसी को ना तो स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया, न दिया इसलिए हम सदैव निशाने पर रहे।

३४.

पैसा हाथ का मैल नहीं, मन का मैल है। समय बदल गया है। इसमें कुछ नया नहीं। समय परिवर्तनशील है ।मनुष्य बदल गया है? कैसे हो सकता है? मनुष्य या तो मनुष्य है या नहीं है। बदलकर, क्या मनुष्य, मनुष्य रह पाएगा ? नहीं। तो फिर क्या हुआ? इतना दमघोंटू माहौल क्यों है ?जीवन विस्तृत नहीं, संकुचित है। बेहद संकुचित ।इतना कि बटुए में समाने लगा है। बस बटुआ जीवन से बड़ा हो गया, आदमी बैठ गया, पैसा खड़ा हो गया ।अब यही मापदंड है, अच्छाई और बुराई का। आपके अंदर हजार बुराइयाँ हों, यदि आपके बटुए में वजन है तो वह उन्ही बुराइयों से आपकी छवि को चमका देगा। समाज में आप सम्भ्रांत कहलाएँगे। चार आदमी उठते-बैठते आपको सलाम ठोंकने को पेशा बना लेंगे। यदि आपके पास बटुवा नहीं है या बटुए में वजन नहीं है, आपकी हजार अच्छाइयाँ आपकी सूली बन जाएँगीं । जूता महत्वपूर्ण नहीं है जूते में छेद है या नहीं, यह महत्वपूर्ण है ।एक छोटा सा छेद जूते को इतना बड़ा कर देता है कि सारी दुनिया उसमें समा जाती है।

हमारे जूते में छेद था। दुनिया समाई जा रही थी। कोई कहता, पापा की पेंशन से घर चल रहा है। आनंद, सुमन को ताने देते कि वह उनका पैसा चुराकर हमें भेजती है। उमाशंकर, सुधा दी को कहते कि वह उनका पैसा लाकर हमे देतीं हैं। मधुर, प्रतिभा पर लांछन लगाते कि वह चोरी-चोरी उसका पैसा हमें भेजती है। अम्मा भी सुनती, मैं भी सुनता ।कभी किसी को समझाने नहीं गए कि नहीं। देखो, ऐसा नहीं है ।वह उनका सच था जो उन्हें चार आदमियों में उठने-बैठने लायक बना देता था। हमारा सच, हमारा अंतर्मन, हमारा भगवान बनकर रह गया । अम्मा कहतीं एक कान से सुनो, दूसरे कान से निकाल दो । पर शब्दों का कान से टकरा जाना मात्र ही सुनना होता है ? बिना प्रतिक्रिया के? तो मैंने सुना। और महसूस किया कि जूते का छेद शायद मैं ही था। मुझे परिवार की

सबसे कमजोर कड़ी मानकर यहीं प्रहार हो रहा था। कारण एक ही था। निजी तौर पर बच्चों को पढ़ाना ।घर में ही बच्चे आते थे। उन्हें पढ़ाता था। वही मेरी आमदनी का जरिया था। सामाजिक दृष्टि से यह एक साधारण और फीका कार्य था, जिसमें रसूख नहीं था, पैसा नहीं था, दबदबा नहीं था प्रतिष्ठा नहीं थी। कुछ नहीं। मैंने कभी प्रचार-प्रसार के लिए बड़े-बड़े बोर्ड, होर्डिंग कुछ नहीं लगवाए। कभी पर्चे नहीं बँटवाए। अखबारों में इश्तहार नहीं दिया। बस, जो बच्चे आते, उन्हें पढ़ाता। अकेला आदमी पढ़ाकर कितना कमाता होगा? घर थोड़े ना चलता होगा उससे? समाज बेहद पढ़ा-लिखा, शालीन और सभ्य होता जा रहा है। दो और दो मिलाकर पाँच ही करता है, चार, चार आदमियों के लिए, पाँचवाँ अपने लिए।

मानव व्यवहार का अध्ययन ऐसे ही होता गया। अब मैं सुनता नहीं पढ़ता हूँ। सामने वाले को उसकी आँखों से। इसमें उत्तर देने की आवश्यकता नहीं होती ।ऊर्जा क्षय नहीं होती। मन मलिन नहीं होता। अपनी अम्मा से ही सीखा है। अम्मा भी सुनकर चुप रहतीं। बहुत कम उत्तर देतीं। पर बात में जो बात ना होकर भी बात का यथार्थ होती, उसी को ग्रहण करतीं बाकी "थोथा देई उड़ाय" के मार्ग पर चला जाता।

अम्मा को खाँसी बहुत आने लगी थी। घरेलू उपचार और साधारण खाँसी की दवाई काम नहीं कर रही थी। उतरेठिया में, डॉक्टर सिन्हा को दिखाया। एक्स-रे हुआ ।फेफड़ों में इंफेक्शन था। डॉक्टर ने बहुत सारी दवाइयाँ दी ।गरम मसाले उबालकर, छानकर, नींबू और हल्का नमक डालकर पीने को कहा। कुछ दिन उनकी दवा चली पर कुछ खास फायदा नहीं हो रहा था। उन दिनों प्रतिभा यहीं आई थी। पल्मोनरी सर्जन बीपी सिंह का पता किया ।प्रतिभा, पहली बार, अम्मा को लेकर, उनके क्लिनिक इंदिरानगर गई ।वहाँ पर फिर से कई जाँचें हुईं। डॉक्टर ने दवाइयाँ दीं और कहा, "ठीक हो जाएँगी "।अब की दवाइयाँ

कम थीं। अम्मा को अधिक दवाइयों से पेट की समस्या होने लगती थी। अम्मा की तबीयत खराब होती तो पूरा परिवार उनकी सेवा में जुट जाता। “अम्मा, यह खा लो, फायदा करेगा” “अम्मा, वह खा लो, अच्छा लगेगा” पर अम्मा खाने-पीने में बेहद संवेदनशील थीं। जो चीज ना पसंद हो, मजाल है, कोई खिला दे। भले से कोई कितना नाराज हो अम्मा ना बोल दें तो फिर, ना।

मसाले उबालकर पिलाना टेढ़ी खीर था। शुरू में, अंदाज न होने के कारण कुछ मसाले ज्यादा हो जाते। काढ़ा बेहद कड़वा हो जाता। कैसे भी, जोर जबरदस्ती से अम्मा को पिलाना पड़ता। फिर अंदाज सही बैठने के बाद, जब वह सही से बनने लगा, अम्मा अपने आप पी लेतीं और कहतीं उससे उन्हें फायदा लगता है।

उन दिनों मैं, तेलीबाग, हर शनिवार जाता । शनि मंदिर और हनुमान मंदिर में दर्शन के बाद फल और सब्जियाँ खरीदने निकल जाता। तब शनिवार को बाजार, तेलीबाग मुख्य मार्ग पर ही लगता था। गोयल स्वीट हाउस से थोड़ा आगे सड़क की दाईं और सब्जी वाले बैठते। सब तरह की सब्जियाँ खरीदता और फिर गोयल स्वीट हाउस के बगल में फरमान के यहाँ से जितनी तरह के फल हो सकते थे, सब लेकर आता । अम्मा कहतीं, “काहे बिना मतलब इतना पैसा खर्च करत ह्या, के खाए”?अम्मा को जबरदस्ती फल खाने को देता तो कहतीं “तुहीं काहे नाय खाई लेत्या”? फल खिलाने के लिए उनसे बहुत लड़ना-झगड़ना पड़ता। पापा इसके उलट, खान-पान में बिल्कुल भी किसी तरह की नुक्ताचीनी नहीं करते ।बस घर की चीज हो या फल ।सारे फल, जो भी दो, खा लेते । बहरहाल, लड़-झगड़कर अम्मा को फल, जूस, मसाले का काढ़ा, सही समय पर चाय, नाश्ता, भोजन दिया जाता । इसमें कहीं कोई कोताही की गुंजाइश नहीं थी। बीच में कई बार डॉक्टर साहब के यहाँ आते-जाते रहते थे ।हर बार सुधार होता रहा। अंतत: दो-तीन महीने में उनके फेफड़े का इन्फेक्शन पूरी तरह समाप्त हो गया ।

अम्मा की जिजीविषा कमाल की थी। यही उनकी मानसिक दृढ़ता का स्रोत थी। जिस वस्तुस्थिति पर विश्वास कायम हो जाए, उसे ही आधार बनाकर स्वयं को बदलने का प्रयास करतीं। पर उनके विश्वास का मापदंड सरल ना था। उसकी कसौटी पर स्वयं को कसना टेढ़ी खीर होती। पर प्रयास जारी रहता। अलग-अलग स्रोतों के माध्यम से। कभी सफलता मिलती, कभी विफलता, पर अम्मा की निस्पृह हँसी और निर्मल भाव, सफलता हो या विफलता, सब में, गुदगुदाता रहता।

३५.

अम्मा को भावना प्रधान फिल्में देखना बहुत पसंद था। अम्मा की पसंद ध्यान में रखकर, हर हफ्ते नई डी.वी.डी खरीद कर लाता और हर इतवार शाम मैं, सिम्मी और अम्मा बैठ कर साथ देखते ।अम्मा की पसंदीदा फिल्मों में खानदान, सुजाता, मुक्ति, गोपी, विदाई, भाभी वगैरह थीं। सुनील दत्त अम्मा को बेहद पसंद थे। इसके अलावा राज कपूर, धर्मेंद्र, अमिताभ बच्चन, शशि कपूर, जीतेंद्र, मनोज कुमार, संजीव कुमार, नसीरुद्दीन शाह, इन सब कलाकारों को पसंद करती थीं, इन्हे पहचानती थीं। नए कलाकारों में संजय दत्त और सनी देओल। बस, यही दोनों अम्मा को पसंद आते थे। ‘‘नाम’’ ‘‘दामिनी’’ और ‘‘घायल’’ अम्मा ने कई बार देखी। ‘‘क्रांति’’ ‘‘उपकार’’ और ‘‘मासूम’’ इनकी तो कोई गिनती ही नहीं थी। ‘मदर इंडिया’ अम्मा की पसंदीदा फिल्म थी। चाहे जितनी बार लगातार, अम्मा बड़े चाव से देखतीं। कन्हैयालाल का अभिनय अम्मा को बेहद पसंद आया था। इसके अलावा प्राण के अभिनय की भी वो कायल थीं।

एक बार दिवाली पर सुधा दी घर आईं थीं। सुबह, सबका फिल्म देखने का मन हुआ। कई सारी नई डी.वी.डी खरीद कर लाया था, लेकिन मैंने लगाई ‘‘बैजू बावरा’’ और आधे घंटे के अंदर जितने भी लोग थे ,सब सोने लगे।

अम्मा को फिल्म बिल्कुल नहीं पसंद आई।

क्रिकेट अम्मा नहीं समझती थीं। पर सचिन तेंदुलकर को बहुत पसंद करती थीं। उससे उन्हें भावनात्मक लगाव था। सचिन, द्रविड़ और गाँगुली की तिकड़ी, जिस दौर में भारत के लिए खेलती, हम एक भी मैच नहीं छोड़ते थे। उन दिनों अम्मा भी हमारे साथ बैठकर थोड़ा-बहुत मैच देखतीं।

अम्मा को खाना बनाने में बेहद दिलचस्पी थी। साधारण से दाल- चावल में भी, वह अपनी पाक-कला का जादू परोस देतीं ।जैसा खाना वह बनातीं, उन्हें वैसा ही खाना उन्हें पसंद आता। अगर खाना उनकी पसंद का ना हो तो फिर वह नहीं खा सकतीं थीं, कोई कुछ कर ले। अम्मा को मलाई-कोफ्ता, टमाटर भरवा और पाव-भाजी बनाना मैंने ही सिखाया था। अम्मा को इसके अलावा मेरे हाथ के बने आलूदम पसंद थे। अक्सर इतवार शाम को, अम्मा को छुट्टी देकर, मैं ही खाना बनाता । अम्मा सामान दे देतीं थीं और मैं खाना तैयार कर देता। अम्मा के हाथ का दोसा सर्वश्रेष्ठ था। कई जगह, कई होटलों में खाया, पर अम्मा जो दोसा और सांभर बनातीँ थीं उसका स्वाद कहीं नहीं मिला। जबकि अम्मा ने दोसा बनाना चंद्रा आंटी से सीखा था। इसके अलावा इडली, निमोना, कड़ी, सकपैता वगैरह, वगैरह। अम्मा के समोसे और गोलगप्पे! इनका भी कोई जवाब नहीं था।अम्मा के हाथ के समोसे और गोलगप्पे खाने के बाद मैंने बाहर, इन चीजों को खाना ही बंद कर दिया था। चने का हलवा, गाजर का हलवा, लौकी की खीर, लौकी की बर्फी, गुलाब जामुन जो भी बनातीं, बड़े शौक और नजाकत से बनातीं। बारीक से बारीक चीजों का ध्यान रखतीं। उन्हें पता था उनके बच्चों को बस उन्हीं के हाथ के व्यंजन और भोजन पसंद थे। खड़े मसाले सिल पर पीसकर अम्मा जो लकदावा और निमोना बनातीं उनकी सोंधी महक या तो उतुरी में मिली, जब बड़की अम्मा के हाथ का निमोना खाया था या फिर भैरोपुर में जब नानी ने बनाया था और मुझे पूरा एक बड़ा कटोरा भर कर दिया था। होली में अम्मा की गुझिया का कोई मुकाबला ही नहीं था । चंद्रा अंकल की पसंदीदा। वैसी गुझिया ना मैंने कभी खाई और ना उम्मीद है कभी खाऊँगा। बहुत मेहनत से बनातीं थीं, अम्मा ।खोए को लाल, भुरभुरा होने तक लगातार चलाती रहतीं। उसमें हिसाब से मेवे और शक्कर डालतीं। ना अंश मात्र कम, ना अंश मात्र ज्यादा। अम्मा की गुझिया बनाने की कई लोगों ने कोशिश की पर असफल रहे ।इसके अलावा कई तरह की नमकीन, दालमोट, मठरी और दही-बड़ा। अम्मा लंबे, चपटे बड़े बनातीं थीं

और फिर उन्हें पानी में भिगोकर रखने के बाद फिर दही में डालतीं ।मुँह में जाते ही घुल जाते । वैसे दही-बड़े शायद अब कोई नहीं बनाता। आलू के पापड़, आलू के चिप्स, साबूदाने के पापड़, चावल के पापड़, चावल के लच्छे। सब होली में अम्मा खुद ही बनातीं। कुछ भी बाजार से नहीं आता। किसी भी त्यौहार में समोसे-छोले या छोले- भटूरे अवश्य बनातीं।

करेले और बैंगन की आलू के साथ कलौंजी, भरी शिमला मिर्च, अम्मा खड़े मसाले डालकर बनातीं और बेहतरीन बनातीं। गाँव के व्यंजन जैसे मट्ठा-चावल, पना-बड़ा, फरा, दाल का पराठा, आलू की कचौड़ी, दाल की कचौड़ी, अद्वितीय होती। अम्मा के तीन-चार तह वाले अजवाइन के पराठे बेमिसाल होते। आलू के पराठे, गोभी के पराठे, मूली के पराठे, मेथी के पराठे, आम का अचार, खटाई, नींबू का अचार भरा-मिर्चा ।अम्मा क्या नहीं बनातीं थीं!जो अम्मा के हाथ का स्वाद हमने लिया, आधे से ज्यादा हिंदुस्तान भ्रमण करके भी वह स्वाद ,हमें बड़े से बड़े रेस्टोरेंट या होटल में, नहीं मिला।

उतुरी से जब हम कोलकाता लौटते, अम्मा बस दाल-चावल बनातीं, साथ में हरी मिर्च, नींबू और प्याज का सलाद। उस खाने में जो स्वाद मिलता उसकी तासीर आज भी मुँह में पानी ला देती है।

एक बात पर अम्मा से हमेशा झगड़ा होता। जब भी अम्मा, कुछ विशिष्ट पकवान या भोजन बनातीं, सबका सब, हम सब को तब तक परोसती रहतीं, जब तक हम उठ न जाते । अपने लिए कुछ ना बचातीं। बच गया तो ठीक, ना बचा तो भी ठीक। जब खुद खाने बैठतीं तो देखता, बासी रोटी लेकर बैठी हैं। सिर से पाँव तक लहर उठता । खूब चिल्लाता। चुभने वाली बातें कहता। यहाँ तक कहता “जो औरत अपना ख्याल नहीं रख सकती, वह घर परिवार का ख्याल कैसे रखेगी”? चाहता था अम्मा को बुरा लगे, इतना बुरा लगे कि दोबारा ऐसा ना करें । अम्मा कहतीं” तोहरे बिटिया बेटवा होइहैं तब देखब”। अम्मा नहीं बदलतीं। प्रयास करतीं कि पापा के सामने कुछ खाना ना पड़े।

अम्मा के खाते समय यदि पापा गलती से भी आ जाएँ, तुरंत आड़ ले लेतीं या मुँह फिरा लेतीं। कितना समझाता, बाकी सब की तरह, तुम भी ठीक से, साथ बैठकर खाओ। पर अम्मा अंत में ही खातीं। सिम्मी उनके साथ ही खाती थी किंतु उसका कोई औचित्य नहीं था हफ्ते में तीन-चार दिन तो वो कोप- भवन में रहती, उपवास करती।

३६.

सुमन का फिर फोन आया था। अब पानी सिर से ऊपर जा रहा था। मैंने कहा "मैं आ रहा हूँ, तैयार रहना और अबकी हमेशा के लिए ले आऊँगा"। यह सोचकर, उसी समय, बस से नोएडा के लिए रवाना हो गया। दूसरे दिन सुबह उनके घर पहुँचा ।उन्होंने पूछा, "अचानक"? मैंने कहा, "सुमन को लेने आया हूँ"। आनंद थे, उनके बड़े भाई राजकमल थे और उनकी माताजी भी थीं। उन्होंने मना कर दिया। काफी बहस हुई । वे नहीं तैयार हुए। सुमन ने मुझे लौट जाने को कहा। मैं सिम्मी का फोन लेकर गया था, मैंने सुमन को दे दिया, उसके पास निजी फोन नहीं था।

मैं लौट आया ।लखनऊ पहुँचने में रात हो चुकी थी ।नहा-धोकर खाना खा ही रहा था कि आनंद का फोन आया। बोले, "कल आकर सुमन को ले जाइए"।

समाज में लड़की के पैदा होने का व्याप्त भय, स्पष्ट होता जा रहा था। समाज विध्वंस के सिर पर चढ़कर, निर्माण के नारे बुलंद कर रहा था । इस समाज का अंत कितना वीभत्स होगा?मैंने सोच लिया था, इस बार अंतिम बार। मैंने आनंद के हाथ उठाने की आदत को लेकर उनके पिता से भी बात की थी किंतु वह इशारों-इशारों में सुमन को गलत ठहराने का प्रयास कर रहे थे। मैंने उनसे कहा सुमन के अब तक के जीवन के इतिहास में एकमात्र वही लोग हैं, जिन्होंने उसे दोष दिया है । उसके बाद फोन काट दिया था, मैंने।

अम्मा मेरी बातें समझती थीं। मैंने उनसे कहा "जितना हम झुकते जा रहे हैं, वे सिर पर सवार होते जा रहे हैं, अब नहीं"। वाद-विवाद, बहस तक ठीक था, किंतु बात-बात पर हाथ उठाना, गालियाँ देना, बर्दाश्त के बाहर था। समस्या एक तरफ से नहीं, तीनों तरफ से थी । मधुर, आनंद और उमाशंकर। हर १५-२० दिन पर नया बखेड़ा शुरू कर देते। शादी के इतने सालों बाद भी उनके

व्यवहार में कोई परिपक्वता नहीं दिखाई देती थी। उमाशंकर ने तो यहीं, लखनऊ में, वृंदावन कॉलोनी में घर ले लिया था । बाहर वालों के सामने सुधा दी और उनके मायके वालों की बेइज्जती करना उमाशंकर की दिनचर्या बन चुकी थी। बच्चों के सामने सुधा दी से गाली-गलौज करना, उन पर हाथ उठाना आम था। यही व्यवहार मधुर का भी था, यही व्यवहार आनंद का भी था।

अम्मा अजीज जा चुकी थीं। सुधा दी अपनी बात कहते-कहते रोने लगतीं। पापा को सारा दोष देतीं। अम्मा चुपचाप सुनतीं। कर क्या सकती थीं ? उमाशंकर को कई बार समझाने का प्रयास किया गया किंतु वही ढाक के तीन पात। यहां तक कि उनके घर वालों ने भी उन्हें अपना व्यवहार बदलने को कहा, मगर "मैं मर्द हूँ" "मैं पैसा कमाता हूँ" की हनक, सनक बनकर सवार थी । ईश्वर ऐसे लोगों की परीक्षा नहीं लेता। जानते हैं क्यों? वह जानता है, ये परीक्षा में कभी सफल नहीं हो पाएँगे । सीधे परीक्षा-फल तैयार करता है, सजा के साथ।

कभी-कभी अम्मा आवेश में आकर कहतीं, "मार क्यों नहीं डालते, एक बार में ? हम संतोष कर लेंगे"। उस पीड़ा को समझना बहुत मुश्किल था। पापा और अम्मा दोनों की उम्र हो चुकी थी। मैं नहीं चाहता था, इन्हें अनावश्यक तनाव मिले। कोशिश करता खुद से समस्या का निवारण करूँ। अम्मा की तकलीफ देखी नहीं जाती थी । एक मन कहता, प्रतिभा, सुधा दी को भी बोल दूँ सब छोड़ कर आ जाएँ। रूखा-सूखा जो भी है मिल बाँट कर खा लेंगे। सम्मानित जीवन तो जिएँगे । पर दोनों के दो-दो बच्चे थे। बच्चे क्या समझ पाएँगे? क्या सबकी पढ़ाई-लिखाई का खर्च मैं उठा पाऊँगा? जरा सी कहीं चूक हुई तो आरोपों की झड़ी, उन्हीं लोगों की तरफ से सबसे पहले लगेगी, जो आज सब जानकर भी अंजान बने बैठे हैं। दबाव बढ़ता जा रहा था। अम्मा भीतर ही भीतर सिकुड़ती जा रही थीं। मुझे ऐसा लग रहा था, कुछ भी संभाले नहीं संभल रहा, सब कुछ फिसल रहा है हाथ से।

आदित्य का, सुमन ने घर के बगल में ही, टाइनी टॉट्स, प्री- प्राइमरी स्कूल में दाखिला करवा दिया। सुबह छोड़कर आती, दोपहर में लेने जाती। बच्चों का मन, बच्चों के बीच ही लगता है। कम से कम, वहाँ व्यस्तता और अध्ययन का सामन्जस्य उसे उदासीन होने से बचाता रहा । सुमन भी उसमें व्यस्त रहने लगी।

कई महीनो बाद, अचानक एक दिन, आनंद, बिना बताए, प्रकट हुए। सुमन को ले जाने आए थे। अम्मा ने सब कुछ सुमन के विवेक पर छोड़ रखा था। काफी देर दोनों में बातचीत हुई। अन्ततः, सुमन उनके साथ जाने को तैयार हो गई।

३७.

विक्की अब बूढ़ा हो चला था। सत्रह साल का हो चुका था। अब पहले जैसी फुर्ती नहीं दिखाता था। पहले चेन या गेट की आवाज पर इतनी तेज दौड़ता, पत्थर या टाइल्स पर उसके पंजे फिसलने लगते। अब बुलाने पर बहुत धीरे-धीरे आता। ज्यादा दूर घूमने भी नहीं जाता था। उस दौरान घर में राग-रोगन, साज-सज्जा का काम चल रहा था। कई अपरिचित लोग आते- जाते। पर विक्की अब पहले वाला विक्की नहीं था। अब वह गुर्राता भी नहीं, भौंकता भी नहीं था। विक्की ने खाना-पीना भी कम कर दिया था।

उस दिन अलीगंज से, दो जानवरों के डॉक्टर उसे देखने आए थे। उन्होंने बताया, उसे दिखाई देना बिल्कुल बंद हो चुका था। सारी जाँच करने के बाद उन्होंने कहा "अब आप किसी भी डॉक्टर को बुलाकर दिखा दीजिए, कोई फायदा नहीं। उम्र की अधिकतम सीमा को पार कर चुका है। कुछ दिनों का ही मेहमान है"। एक कोने में विक्की बैठा था, मानो सब समझ रहा था।

रात में वह सिम्मी के कमरे में या खाने वाले कमरे में सोता । उस रात, वो कुछ खाने को तैयार नहीं था। अपनी गोद में बिठाकर, चम्मच से उसके मुँह में दूध डाला। बिल्कुल थोड़ा सा दूध पिया । फिर जाकर अपनी जगह पर चुपचाप लेट गया। सर्दियाँ थीं । उसके ऊपर चादर डाल दी।

सुबह उठकर, सबसे पहले मैं ऊपर पापा के कमरे, आँगन, पूजा घर की सफाई के लिए जाता था। बीच वाले हिस्से के दरवाजे के पास अम्मा खड़ीं थीं। मुझे देखते ही बोलीं, "संदीप, विक्की खत्म हो गया"। मैं कमरे के अंदर गया । खाने वाले कमरे में, ठीक बीचोबीच पड़ा था। चारों पैर ऐंठे हुए थे ।चादर एक तरफ पड़ी थी ।अम्मा बोलीं, " जियरा निसरत की केतना छटपटाए होए"। सच था। अंतिम समय में भी, घरवालों को कोई असुविधा न हो, इस बात का ख्याल

रखा। डॉक्टर द्वारा, इस बात की तस्कीन होने के बाद कि अब हम चाह कर भी कुछ नहीं कर सकते, उसने आधी रात को शांतिप्रिय तरीके से अलविदा कहा। मैं चुप रहा। विक्की को सहला रहा था। इतना वफादार कैसे हो सकता है, जरा सी भी आवाज नहीं, जरा सी भी तकलीफ नहीं दी। चुपचाप चला गया ।सिम्मी रो रही थी, मैं भी रोने लगा। विक्की परिवार का ही सदस्य था। कोई यकीन नहीं करेगा पर उसने कभी, किसी तरह की कोई परेशानी नहीं खड़ी की। अंतिम दिनों के कष्ट को भी चुपचाप से बहता रहा। कभी कोई तकलीफ नहीं दी। अम्मा हमेशा कहती थीं, “ कौनो पुरान जिउ अहै”।

मैं उसे अपने से अलग नहीं कर सकता था। एक बड़े से गमले में उसे दफनाया। ऊपर से ढेर सारा नमक डाल दिया और वह चादर ओढ़ा दी। इस तरह न होकर भी विक्की इस घर में हमेशा-हमेशा के लिए रह गया। आज भी उसे गमले का पौधा हरा-भरा और काफी बड़ा है । जिस कमरे में विक्की खत्म हुआ, उसके दरवाजे के पास आज भी उसकी बड़ी सी तस्वीर है।

उसके बाद, कई कुत्ते रखने की कोशिश की, पर कोई नहीं टिका। ऐसा लगा, आज भी विक्की अपने अधिकार क्षेत्र की सुरक्षा में तैनात है। उसके बाद कोई प्रयास नहीं किया गया। विक्की का अधिकार, विक्की के पास ही रहेगा यह तय हो गया।

३८.

अम्मा नहीं, पापा। जी !पापा मेरे विवाह के लिए बेहद परेशान रहते। मेरी इस व्यवस्था में अंश मात्र भी रुचि नहीं थी और विश्वास तो बिल्कुल नहीं था। पापा से काफी बहस होती।

मेरे चारों तरफ एक अभेद्य सतह है, जिसे सिर्फ अम्मा भेद पाईं और कोई नहीं भेद पाया और मुझे नहीं लगता, अम्मा के बाद अब कोई और वहाँ तक पहुँच पाएगा। किसी का जीवन नष्ट क्यों करूँ? समझाना बहुत मुश्किल था। सबको लगता दिखावा है। एक बार विवाह हो जाने के बाद आदमी बदल जाता है। जन-सामान्य की मान्यता यही होती है। पर मैं जानता था, मैं ऐसा ही रहूँगा। यकीन दिलाना मुश्किल था। मैंने कोशिश भी नहीं की। एक ही बात कितनी बार कहता और किस-किस से कहता? समाज में जब नाक कटती है न, लोगों को परमेश्वर ही दिखता है।

सिम्मी विवाह योग्य थी, उसका विवाह अभी नहीं हुआ था। घर को ठीक करने में काफी पैसा खर्च हो चुका था। मां-बाप की जिम्मेदारी मुझ पर थी। सुमन, प्रतिभा और सुधा दी, तीनों के विवाह में अभी भी सामन्जस्य नहीं स्थापित हो पाया था। सामाजिक पाण्डित्य कितनी भी पोथियाँ बाँच ले, लड़की का अंतिम विकल्प उसका मायका ही होता है और यही होना चाहिए। विवाह का मतलब कतई यह नहीं हो सकता कि आप उसकी जड़ें उखाड़ दें। पति के यहाँ डोली और अर्थी की विचारधारा बेतुकी और हास्यास्पद है।आप टहनी का जड़ की तरफ झुकाव नकार देंगे? समस्त गुरुत्वाकर्षण के नियम को धता बता, किस आसमान में झण्डे गाड़ देगा समाज? जब विवाह को दो परिवारों का समायोजन माना गया है तो लड़की के हिस्से में एक परिवार क्यों आए? दोनों परिवारों पर उसका अधिकार क्षेत्र बना रहना चाहिए, तभी समाज की दिशा एवं दशा स्पष्ट होगी। जितना सम्मान हमारी बड़की माई, बड़की अम्मा, अम्मा और चाची को हमारे आजी बाबा ने ससुराल में दिया उतना ही सम्मान उनके माता-पिता

उनके मायके में भी देते थे। उसके बाद वाले दौर में ही सामाजिक भेड़िया कुनमुनाया और मेमनों से कहा, लड़की ससुराल की संपत्ति है। मेमनों ने मान लिया और सबसे पहले भेड़िए के मुँह में गए। जिस विवाह का अधिकार, आधार प्रेम है, वह मैं, मेरा और मुझको के रहस्य लोक में उलझता गया और स्वार्थ की अय्यारी देखिए, साहब! प्रेम का बनाव श्रृंगार, सामाजिक विश्वामित्र की मेनका बन गया । बस, विश्वामित्र ने कहा, "यही है"।नाक कटी और परमेश्वर दिख गया । सब ने माना विवाह यही है। सामाजिक सहयोग नहीं, व्यक्तिगत आपूर्ति है। परिवार बिखरते गए, विवाह होते गए। विवाह टूटते गए, विवाह होते गए। विवाह वन्य पशु सा हिंसक होता गया फिर भी आकर्षक रहा। विवाह सड़ने लगे पर फेरे पड़ने लगे। ईश्वर बोला, "हो क्या रहा है"? समाज बोला, "तुम चुप रहो। तुम्हें कुछ पता तो है नहीं। यही विवाह है"। गले में ढोल पड़े हैं, बजाए जा रहे हैं, नाक कट रही है, गाए जा रहे हैं, परमेश्वर दिख गया। ऐसी छद्म वैवाहिक परंपरा का हिस्सा बनना मेरे लिए मुश्किल था, जिसमें दायित्व नहीं लूट हो।

पर नक्कार खाने में तूती की कौन सुने ?अम्मा के अभिलाषाओं, आकांक्षाओं को परोस कर मुझे भावनात्मक रूप से निचोड़ा गया। अंततः बस्ती के इटबहरा गाँव के डॉक्टर वीरेंद्र बहादुर सिंह की छोटी बेटी, अर्चना, से मेरा विवाह हुआ। उनके बड़े भाई, श्री आर.पी. सिंह यहीं एल्डिको में ही रहते थे। अर्चना स्वभाव से सहज और सरल थी। एक मध्यम वर्गीय परिवार की अपेक्षाओं, उसकी कमियों और जरूरतों से वाकिफ। सामान्य जीवन शैली और साधारण अपेक्षाओं में बड़ी खुशियाँ ढूँढ़ने वाले, इस परिवार ने बड़ी महत्वाकांक्षाओं की साँकल, कभी नहीं खटखटाई।

विवाह यही लखनऊ में हुआ। पापा खुश थे, अम्मा भी खुश थीं। सब खुश ।मुझ पर कोई खास असर नहीं पड़ा। जैसा विवाह के पहले था, वैसा ही बाद में भी रहा। घर में एक सदस्य की संख्या बढ़ गई। जिम्मेदारियाँ भी बढ़ गईं थीं।

३९.

उमाशंकर और सुधा दी के बीच विवाद गहरा होता गया। बच्चे बड़े हो गए थे किंतु उमाशंकर के व्यवहार में कोई परिपक्वता नहीं आई थी। बच्चों की छोटी-छोटी ज़रूरतें पूरा करना, सुधा दी के लिए मुश्किल हो गया था। मैंने अंततः उन्हें कहा कि वे यहीं आकर, बच्चों के साथ रहें। बच्चे जब बड़े होते हैं उनकी ज़रूरतें भी बढ़ने लगती हैं। विकी बारहवीं कर चुका था। मैंने उसे अभियांत्रिकी की पढ़ाई की सलाह दी । जिस तरह के माहौल में वह रह रहा था, उसके लिए आवश्यक था कि वह जितनी जल्दी हो सके, कमाना शुरू कर दे। उसे अपनी जरूरतों के लिए इतना संघर्ष नहीं करना पड़ेगा और सुधा दी के पास विकल्प होने पर उमाशंकर के पैसों की धौंस स्वयं खत्म हो जाएगी। यू.पी.टी.यू में रैंकिंग के हिसाब से उसे, नोएडा में, प्राइवेट कॉलेज मिल रहा था । किसी तरह उमाशंकर ने उसका दाखिला नोएडा में करवा दिया किंतु उन लोगों का घर में रहना मुश्किल हो गया। अन्ततः सुधा दी दोनों बच्चों को लेकर यहाँ आ गई। विकी नोएडा चले गए। सृष्टि यहीं से आर्मी पब्लिक स्कूल आती-जाती। घर में सदस्य और बढ़ गए पर मुझे लगा कम से कम अब शांति तो रहेगी।

४०.

२१ जुलाई २०११। ओ.पी. चौधरी अस्पताल के लेबर रूम के बाहर हम सब थे। मैं, सुधा दी, सिम्मी, अर्चना की दीदी, पिंकी दी। मैं खिड़की के बाहर देख रहा था। तेज बरसात हो रही थी। सिम्मी दौड़कर मेरे पास आई और चहकते स्वर में कहा, "संदीप भैया, लड़का हुआ है"। युगाँधर आया था। उसका नामांकरण, उसकी पैदाइश के पहले ही मैंने कर दिया था। पापा को फोन कर मैंने खुशखबरी दी। पापा ने घर में विक्की, सृष्टि सबको बताया। उतुरी फोन किया। हमारे खानदान में तीसरी पीढ़ी का प्रथम पुत्र। चाचा के दोनों बेटों संजीत और प्रवीण को एक-एक बेटी थी। बाद में प्रवीण के एक पुत्र भी हुआ, अपूर्व। रजनीश भइया की एक पुत्री थी, प्राही।

अम्मा की साध पूरी हुई। तीसरी पीढ़ी में नाती-नातिन की कमी न थी। अब पोता भी हो गया था। अम्मा की आकांक्षाएँ बहुत सीमित रहतीं थीं। जो था, जितना था उसी में संतुष्ट रहने वाली। "और" की भाषा अम्मा न जानती थीं, ना कभी सीखने का प्रयास किया, ना हम बच्चों को सिखाया। घर बच्चों से भरा रहता, अम्मा घर में भरी होतीं। प्रयास करतीं, जी तोड़ प्रयास करतीं कि रोज कुछ विशेष बनाएँ। यदि कोई आशा के विपरीत उस वस्तु को कम ग्रहण करता, कारण कुछ भी रहा हो, अम्मा का का दिल टूट जाता। खिसिया कर अम्मा पूछतीं, "अच्छा नहीं लगा"। बेहद शौक से बनातीं। किसी को और लेने से कभी मना नहीं करतीं। बस, एक बार, शुभ को किया था। अम्मा ने इडली बनाई थी। शुभ उस समय खाने बैठा था।हर दो-तीन मिनट पर वो चटनी माँगता।दो बार, चार बार, छः बार, आठवीं बार अम्मा ने कहा, "अ_भक्क"। अम्मा ने उसे आठवीं बार चटनी देकर कहा, "बस, आखिरी बार है। अभी बहुत लोगों को खाना है "।

शुभ को अम्मा की बनाई दाल भी बहुत पसंद थी। दाल-चावल खाते समय दो-तीन बार दाल अवश्य लेता। जब कोई बच्चा दोबारा उनसे कुछ माँगता, अम्मा का हृदय वात्सल्य से भर जाता। अगर वह चीज नहीं बची होती, अम्मा जोर से हँस देती थी और कहतीं, " खत्म हो गई है, फिर बना देंगे"।

युगाँधर जब पैदा हुआ, उसका वजन औसत से कम था ।दुबला- पतला, कृशकाय। ऑक्सीजन स्तर कम होने की वजह से उसे कुछ घंटे ऑक्सीजन पर रखा गया था। पहली बार, उसे हमने देखा, तो कांच की डोम के नीचे, ऑक्सीजन सप्लाई लेता, जोर-जोर से रोता युगाँधर। बस, वही पहली और आखिरी बार उसे जोर-जोर से रोते देखा था। उसकी दाहिनी कनपटी की सारी नसें स्पष्ट दिखाई देतीं, मानो वहाँ त्वचा ही ना हो। ऑक्सीजन का स्तर करीब ८५% था, जो चिंता का विषय था । हम के.जी.एम.यू जाने का विचार कर रहे थे, किंतु दो घंटे में ऑक्सीजन का स्तर सामान्य हो गया। विक्की से मैंने कहा कि जाकर, तेलीबाग, हनुमान मंदिर में प्रसाद चढ़ा दें।

विकी का स्वभाव, उमाशंकर के सरासर विपरीत था। सरल, सौम्य और संकोची। युवावस्था में अपने शौक और जरूरतों को समेट कर रखने की कला उसके अंदर थी। मैं कोशिश करता कि अपनी तरफ से उसकी ज़रूरतें पूरी कर सकूँ किंतु व्यक्तिगत पसंद, नापसंद से मैं अनभिज्ञ था। पूछने पर भी, विकी कभी किसी चीज की माँग नहीं करता इसलिए आवश्यक था कि वह जितनी जल्दी अपने पैरों पर खड़ा हो, उतनी जल्दी, अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति, अपने चुनाव के अनुसार कर सकेगा। इसी दौरान उसे कॉलेज की फीस देनी थी। युगाँधर की पैदा होने, पर खर्च को देख, वह मुझे कुछ नहीं बोलता था पर सुधा दी ने मुझसे कहा था ।

फीस देनी आवश्यक थी। उस समय उतने पैसे नहीं थे, मेरे पास, इसलिए तेलीबाग में सरदार अमर सिंह से ₹ ५०, ०००, पाँच टके ब्याज पर लिए। उसमें कुछ पैसे और मिलाकर विकी के अकाउंट में जमा कर दिया। अम्मा से कुछ

नहीं छिपाया था पर और किसी को कुछ नहीं पता था । बताने पर सब रोक देते और फिर फीस देने का और कोई जरिया न होता। दो साल तक हर महीने ढाई हजार रूपए ब्याज भरने के बाद, मैं वो पैसे चुका पाया।

४१.

पापा ने सुबह कहा, उन्हें चक्कर आता है। मैंने पूछा, ‘‘कब से’’? उन्होंने कहा, ‘‘कल से’’? पहले उन्होंने नहीं बताया। अम्मा-पापा, दोनों की आदत थी, जब तक तकलीफ का शुरुआती दौर रहता, कुछ नहीं बताते थे। मैंने पापा से कहा, कुछ दिन वह दुकान न जाएँ। घर पर आराम करें। लेकिन पापा नहीं माने। नाश्ता करने के बाद दुकान जाने को तैयार थे। मुझे भी बैंक में काम था, मैंने कहा, ’’चलिए आपको छोड़ते हुए, बैंक चला जाऊँगा ‘‘। पास ही में एक डॉक्टर थे। उनको दिखाया। उन्होंने दवा दी। उसी समय खाने को कहा। वहाँ से पापा को दुकान पर छोड़, मैं बैंक चला गया। बैंक से लौटते समय, मैंने सोचा, पापा को एक बार देखते चलें। दुकान पर गया तो पापा की स्थिति ठीक नहीं थी। मैंने दुकान बंद कर, उन्हें घर चलने को कहा। घर पर उन्हें फल वगैरह खाने को दिया और आराम करने को कहा। कुछ देर बाद जब मैं उन्हें देखने ऊपर गया तो जो देखा, उसे देखकर जी में आया संसार फूँकने का समय आ गया है। पापा अपनी सेवा निवृत्ति और कोर्ट केस के कागजात लेकर बैठे थे ।पापा का सिर और हाथ हल्का-हल्का हिल रहे थे। सेवानिवृत्ति के बारह-तेरह साल हो रहे थे। हमारे पापा को उनकी उत्कृष्ट सेवाओं का पुरस्कार मिला, एक बड़ा शून्य, जिसमें अपने ही पारिश्रमिक के लिए, अपने ही देश में, अपनी ही व्यवस्था से वे लड़ रहे थे। क्या था, उसमें? कुछ नहीं। अम्मा के हाथ खाली ।पापा के हाथ खाली। व्यवस्था के सरकारी दंभ का कोई चुनाव चिन्ह नहीं होता। इसलिए इस सड़ांध से स्वयं को मैने भरसक दूर रखने का प्रयास किया। दम घुटता है इस व्यवस्था के नपुंसकतावादी, पुरुषार्थ युक्त नारों और झंडों से। मैंने पापा से सब समेट कर रखने को कहा। पापा हँसने लगे। उस हँसी में पीड़ा की सांत्वना थी। मेरी आशंकाओं के लिए। मैं पापा की आशंका पकड़ने का प्रयास कर रहा था, पापा मेरी आशंका पकड़ चुके थे।

अगले दिन, सुबह, मैं, पापा के कमरे में पहुँचता, उससे पहले ही अम्मा ने मुझे आवाज दी, ''संदीप, पापा को झाँसी में जैसा हुआ था वैसा ही हो रहा है''। नितांत यही शब्दावली थी, अम्मा की और आँखों में जो पीड़ा की गुहार थी, वह शब्दों का प्रथम परिचय था। ऊपर अम्मा एक कुर्सी पर बैठीं थीं। पापा की दोनों चप्पलें दरवाजे के पास उल्टी पड़ी थीं । पापा कभी भी अपनी चप्पलें ऐसे नहीं रखते थे। आँगन में, पापा टहलने का प्रयास कर रहे थे। शरीर के दाहिने भाग पर फालिस असर कर रही थी, पर चेहरे पर मुस्कान थी। दाहिना पैर, दाहिना हाथ, उठाने में काफी दिक्कत हो रही थी। बोलने पर शब्दों का उच्चारण सही नहीं हो रहा था और चेहरा हल्का सा तिरछा हो गया था।

मैंने, प्रतिभा को फोन लगाया क्योंकि झाँसी में जिस डॉक्टर ने इनका इलाज किया था, उनसे प्रतिभा वाकिफ थी । वे इस बारे में कुछ सलाह दे सकते थे । किंतु फोन मधुर ने उठाया ।मैंने कहा, ''प्रतिभा से बात करा दो ।पापा का इलाज जिन डॉक्टर ने किया था उनका नंबर चाहिए "। मधुर ने यह कहकर मना कर दिया कि उसे पता चलेगा तो वह लखनऊ जाने की जिद करेगी । मैं सन्न रह गया। मनुष्य कितने भयानक स्वरूप ग्रहण कर सकता है। अम्मा प्रश्नात्मक दृष्टि से मेरी तरफ देख रहीं थीं। पापा ने कहा, "कुछ नहीं होगा। थोड़ा चलेंगे- फिरेंगे, ठीक हो जाएगा"। जुबान लड़खड़ा रही थी पर आश्वासन एकदम ठोस था। अम्मा के लिए। पापा ने मुझसे कहा, "परेशान ना हो, अभी ठीक हो जाएगा"। वह मिट्टी कहाँ मिलती होगी, जिससे ऐसे दृढ़ व्यक्तित्व निर्मित होते होंगे? डॉक्टर तिवारी ही हमारे तारणहार थे। उन्होंने कभी निराश नहीं किया। पर इतनी सुबह क्या फोन उठाएँगे ? फिर भी फोन लगाया। डॉक्टर साहब ने फोन उठा लिया। उस समय, भगवान उसी रूप में थे। मैंने पापा की परेशानी बताई तो उन्होंने तुरंत आधी डिस्प्रिन देने को कहा और दो दवाएँ और बताईं, जो पी.जी.आई के पास मिलतीं। उन्होंने डॉक्टर राकेश शुक्ला का नंबर भी दिया और साढ़े सात से आठ बजे के बीच फोन कर अपॉइंटमेंट लेने को कहा।

पापा को आधी डिस्प्रिन देने के बाद, अम्मा को वहीं उनके पास बिठा दिया और किसी भी सूरत में उन्हें अकेला न छोड़ने को कहा। पी.जी.आई से दोनों दवा लेकर आते-आते, साढ़े सात बज गए थे। डॉक्टर राकेश शुक्ला को फोन कर अपॉइंटमेंट लिया। अपॉइंटमेंट साढ़े चार बजे शाम का मिला।

मैंने पुनः डॉक्टर तिवारी को फोन किया। उन्होंने डॉक्टर छाबड़ा का नंबर दिया और कहा इनसे बात कर लें, वे दिन में देखते हैं। डॉक्टर छाबड़ा का दस बजे का समय मिला। मैंने बॉबी को गाड़ी लेकर आने को कहा ।मैं, अम्मा और सुधा दी, पापा के साथ जाने वाले थे । गाड़ी में पापा को कोट पहनाने के लिए सुधा दी ने दाहिना हाथ जब उठाया, पापा की हल्की सी चीख निकल गई। आँखें भर आई थीं, पापा की। दुर्दांत कष्ट में भी पापा को कभी रोते हुए नहीं देखा था। अम्मा कहतीं "जानवर हैं बिल्कुल"। बस, उस दिन के बाद से पापा बहुत जल्दी भावुक हो जाते थे। गाड़ी के पास सिम्मी खड़ी थी। पापा से अब भी बात नहीं करती थी पर आँख से आँसू गिर रहे थे।

डॉ छाबड़ा के यहाँ काफी भीड़ थी। हमारा नंबर आते-आते करीब बारह बज गए थे। पापा ने किसी तरह की कोई शिकायत नहीं की। बारह बजे, डॉक्टर ने उन्हें देखा और चार दवाएँ लिखीं, जिनमें से एक तुरंत खिला देने को कहा ।उसको खाने के बाद पापा को काफी राहत मिली। पापा बेहद आशावादी रहे हैं। जरा सा भी आराम, उनके लिए काफी होता था। पापा को लेकर घर पहुँचते-पहुँचते करीब डेढ़-दो बज गए। पापा को खाना खाकर, आराम करने को कहा गया। चार बजे फिर डॉक्टर शुक्ला को दिखाने जाना था। बॉबी को पहले ही सहेज दिया गया था। अम्मा सुबह से, खाली चाय पीकर थीं। उन्हें जबरदस्ती खाना खिलाया गया। घर का माहौल ही भूख-प्यास का मापदंड होता है। शंकाओं और दुविधाओं से भरा मन,पेट की मान-मनौवल नहीं देखता। वह उतना ही चुगता है जितना शरीर को चलायमान रखने के लिए आवश्यक हो।

शाम चार बजे, हम डॉक्टर शुक्ला के क्लीनिक पहुँचे। करीब साढ़े छः बजे पापा का नंबर आया। डॉक्टर साहब ने बड़े इत्मीनान से पापा को देखा। उनके हाथों, पैरों, उँगलियों पंजों की गतिशीलता जाँची। गर्दन को दाएँ-बाएँ घुमाने को कहा। दोनों हाथ आगे कर, एक-एक कर हाथ को वापस लाकर नाक के सिरे को छूने को कहा। रक्तचाप नापा। फिर कई सारी जाँचें लिख दीं। दवा एक भी नहीं। कहा, "यदि डॉक्टर छाबड़ा की दवा से आराम है तो फिलहाल वही दवा चलने दें"। जब तक जाँच की रिपोर्ट नहीं आती और बीमारी पकड़ में नहीं आती वही दवा चलनी थी।

उसी दिन, रात साढ़े ग्यारह बजे तक पापा की सारी जाँचें पूरी करवा लीं। सुधा दी साथ ही थीं। अम्मा परछाई की तरह साथ रहीं। कहीं एक शब्द भी नहीं कहा। इतना धैर्य, इतनी सहनशीलता और इतना गहन मौन। अम्मा को पढ़ पाना बहुत मुश्किल था।

अगले दिन, शाम को जब मैं रिपोर्ट लेकर डॉक्टर शुक्ला के पास पहुँचा, उन्होंने रिपोर्ट देखी और कहा, " इसमें कोई बीमारी पकड़ में नहीं आ रही"। फिर उन्होंने मंगलवार सुबह के.जी.एम.यू में एम.आर.आई करने के लिए बुलाया और कहा, "रिपोर्ट वही मुझे दिखा देना"।

मंगलवार, सुबह साढ़े सात बजे, हम पापा को लेकर के.जी.एम.यू पहुँचे। एम.आर.आई हुआ लेकिन डॉक्टर साहब के.जी.एम.यू में नहीं मिले। शाम को जब रिपोर्ट लेकर मैं उनके क्लीनिक पहुँचा। रिपोर्ट देखते ही उन्होंने कहा, "इसमें बीमारी पकड़ में आई है"। इन्फार्क्सन था। इस्कीमिया। उन्होंने चार दवाइयाँ लिखीं और डॉक्टर छाबड़ा की दवाइयाँ बंद करने को कहा। उन्होंने पूछा, "और कोई दवाई दी जाती है, क्या"? मैंने कहा, "सिण्डोपा और न्यूरोबियान फोर्टे दी जाती है"। उन्होंने पूछा, " किसलिए"? मैंने उन्हें झाँसी की बीमारी का सारा वाकया बताया और बताया कि वहाँ के डॉक्टर ने ही यह दवाइयाँ पार्किनसन्स के लिए लिखीं थीं। डॉक्टर ने कहा, " इन्हें पार्किनसन्स तो बिल्कुल नहीं है, इसलिए ये दवाइयाँ बंद कर दी जाएँ"। कितनी भयानक

स्थिति थी। पापा को उस बीमारी की दवा दी जा रही थी, जो उन्हें थी ही नहीं ।मैंने घर में इसका जिक्र किया तो प्रतिभा ने कहा झाँसी में डॉक्टर ने पापा को पार्किनसन्स होने की बात कही थी। मुझे डॉक्टर तिवारी पर पूरा भरोसा था । उन्होंने जितने भी डॉक्टर के नाम सुझाए थे, सब के सब बेहद काबिल और विशेषज्ञ थे इसलिए पापा की झाँसी वाली दवाइयाँ बंद कर दी गईं। डॉक्टर शुक्ला ने १५ दिन की दवा दी थी। डॉक्टर तिवारी ने बताया कि इस्कीमिया में अस्सी प्रतिशत बीमारी पहले दो हफ्ते की दवा से ही ठीक हो जाती है और शेष बीस प्रतिशत में समय लगता है।

अम्मा सुबह-शाम पापा के हाथों, पैरों में मालिश करतीं। पापा की दिनचर्या हमेशा से नियमित रही है। उसमें कभी कोई बदलाव नहीं किया जाता। उनके खान-पान का विशेष ध्यान दिया जाता। पापा सदैव सुबह हल्का-फुल्का व्यायाम अवश्य करते। पहले सुबह चार बजे सर्दी, गर्मी या बरसात हो, दूध का डिब्बा लेकर निकल जाते, टहलने। फिर छः-साढ़े छः बजे लौटते। भयानक शीतलहर हो या प्रचंड बारिश हो, कितना भी रोकने पर वह सुबह चार बजे निकल जाते । अब बाहर टहलना मुश्किल था इसलिए छत पर ही टहलते। पापा की हिम्मत ही पापा थी। अम्मा जानती थीं, इस आदमी में हिम्मत और मेहनत की कमी नहीं है। कभी-कभी वह मुझसे कहतीं, “पूरा जानवर अहैं। हम जिंदा रहे तो इनका पार लगाय देब और अगर हम ना रहे तो देखा कउन गत होत है इनकै”। पापा जब हँसने लगते तो कहतीं, ”बहुत सुंदर लगते हो जो हैं, हैं, हैं हँसते हो”। अम्मा किसी पर भी क्रोध करतीं तो क्षणभंगुर होता। थोड़ी देर बाद सामान्य हो जातीं ।एक ही बार अम्मा का रौद्र रूप देखा था। ठेकेदार दुग्गल से पापा की लड़ाई चल रही थी । अम्मा कमर पर हाथ रख बीच में खड़ी हो गईं। ठेकेदार से कहा, ”हाथ लगा कर दिखाओ दाढ़ी नोच लेंगे”।

अद्भुत इच्छा शक्ति के स्वामी थे पापा। दाहिने पैर, दाहिने हाथ में तकलीफ के बावजूद, कभी भी छड़ी या किसी चीज का सहारा नहीं लिया। डेढ़-दो महीने में ही परिणाम सामने आने लगे ।पापा लगभग सामान्य हो चुके थे ।बस चेहरे

पर हल्का सा तिरछापन अभी मौजूद था। उच्चारण अब भी उतना साफ नहीं था। लिखने में काफी दिक्कत होती।

पापा ने कभी ए.टी.एम कार्ड वगैरह नहीं लिया था। जब उनको आवश्यकता होती चेक से ही पैसे निकाल लेते थे। अब उनके हस्ताक्षर बिल्कुल बिगड़ चुके थे। पापा घंटों अपने कमरे में बैठकर, हस्ताक्षर सही करने का प्रयास करते किंतु लिखावट में एक कंपन सा साफ नजर आता था। पर पापा ने हिम्मत नहीं हारी। छः महीने बाद डॉक्टर शुक्ला को फिर दिखाया। उन्होंने दवाइयाँ जारी रखने को कहा। पापा दुकान पर नहीं जाते थे। तीन महीने बाद से, मैं, सुबह दुकान पर जाकर बैठता और दोपहर में घर पर जाकर बच्चों को पढ़ाता। रात नौ बजे तक पढ़ाने की वजह से दुकान शाम को बंद रहती।वैसे उस दुकान से कोई खास आमदनी नहीं होती थी। उद्यान प्लाजा को पूरा कबाड़ बना डाला था।रात में वह प्लाजा नशे का अड्डा बन चुका था। फिर भी पापा के संतोष के लिए मैं जाता था। मैंने शुरू में ही पापा से मना किया था कि अभी वहाँ दुकान ना शुरू करें किंतु पापा नहीं माने थे और तमाम स्टेशनरी का सामान भर लिया था। वस्तुत वह दुकान पापा के मित्रों के मेल मिलाप का केंद्र बिंदु थी।

पापा के हाथ, पैर की दिक्कत पूरी तरीके से ठीक होने में तीन-चार महीने लग गए। चेहरे का तिरछापन भी सरासर नदारद हो चुका था। पापा को बैंक लेकर गया। वहाँ पापा की समस्या बताई। बैंक मैनेजर से मिलने को कहा गया। बैंक मैनेजर ने जब डॉक्टर के सारे कागज वगैरह देखे तो उन्होंने कहा, “आपको नए सिरे से हस्ताक्षर करने पड़ेंगे और आइंदा से उन्ही हस्ताक्षरों को मान्यता दी जाएगी”। नए हस्ताक्षर कार्ड पर पापा के हस्ताक्षर लेकर, कंप्यूटर पर स्कैन कर उसे अपलोड करने के बाद ही नए हस्ताक्षर मान्य हुए। इस तरह पापा के हस्ताक्षर वाली समस्या का समाधान हुआ किंतु भविष्य में चेक की समस्या से बचने के लिए मैंने पापा से ए.टी.एम कार्ड भी जारी करवाने का फॉर्म भरवा दिया।

४२.

“क्या करते हो”? जिसने मुझसे यह सवाल पूछा, वे बेहद रसूखदार और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उस समारोह में इस तरह के सवाल करना, मुझे काफी असहज कर गया। मौका था, युगाँधर के प्रथम जन्मदिन का, जो हम होटल “मेरा मन” में मना रहे थे। जिन्होंने मुझसे यह सवाल किया था, उनका नाम तो मैं नहीं लिखूँगा। बाद में एक बार जब मेरे यहाँ आयकर विभाग के कुछ कारिंदे आए और पूछताछ की कि मैं क्या करता हूँ, मैं उन्हें अंदर लाया और दिखाया कि मैं यहाँ बच्चों को पढ़ाता हूँ। वे सब हँसने लगे कि इस बात के लिए भी लोग अब शिकायत करने लगे हैं। मैंने उनसे कई बार पूछा शिकायत किसने की, उन्होंने नाम नहीं बताया। बाद में गृह शोभा नर्सरी और वकील उदयभान सिंह के यहाँ भी ये लोग गए। शाम को ये लोग जब मुझसे मिलने आए तो उन्होंने बताया शिकायतकर्ता वही व्यक्ति थे जिन्होंने मुझसे होटल में यह सवाल पूछा था।

दो-तीन साल बाद फिर कुछ पुलिस वाले आए और मेरे बारे में तहकीकात की। उसके अगले दिन एक महिला, जो शायद आयकर विभाग में ही उच्च पद पर कार्यरत थीं, गाड़ी से आईं। अंदर आकर उन्होंने सारा इंतजाम देखा और वह भी हँसने लगीं। मैंने कोई शिक्षक नहीं रखे थे। मैं अकेले ही पढ़ाता था और सारे विषय पढ़ाता था। आजकल की कोचिंग की तरह, कोई बड़ा भव्य प्रारूप नहीं था। किंतु मनुष्य के यथार्थ का सत्य यही है, मनुष्य अपने दु:ख में उतना दु:खी ही नहीं होता जितना दूसरे के सुख में होता है।

युगाँधर के जन्मदिन का आयोजन कोई दिखावा नहीं था। यह एक प्रयास था। अम्मा-पापा लखनऊ में रहते थे। रिश्तेदारों से मिलना जुलना कहाँ हो पता था? सबसे मिलना उन्हें अच्छा लगता था। एक मौका था, सारे रिश्तेदारों को

एक साथ देखने का, मिलने का, सुनने का, समझने का। समय की धूप- छाँव में, कौन सी परछाईं, कब विलुप्त हो जाए, कौन जानता है?

आयोजन की पूरी तैयारी सिम्मी ने ही की थी। सभी रिश्तेदारों को आमंत्रण दिया गया था। पापा के मित्रगण, हमारी कॉलोनी के सभी लोग भी आमंत्रित थे। कार्यक्रम कुछ भी रहा हो मुख्य उद्देश्य था अम्मा का मान-सम्मान और अम्मा के दिपदिपाते चेहरे पर जो संतुष्टि का भाव रहता, उसकी प्राप्नोति ही उत्सव का सार होती।

४३.

सिम्मी की शादी की बातें चलने लगी ।कई जगह बात की। अंत में मुंबई के वीरेंद्र प्रताप सिंह ने अपने लड़के विमल सिंह के लिए लड़की देखने की इच्छा जाहिर की थी। उन्होंने मुंबई आने का निमंत्रण दिया था ताकि विमल और सिम्मी एक दूसरे को देख सकें और अपना निर्णय ले सकें। वैसे वे दोनों फोन के माध्यम से एक दूसरे के संपर्क में थे।

मैं, अम्मा, अर्चना और सिम्मी मुंबई गए। घर पर सुधा दी, पापा और सृष्टि थीं। विक्की नोएडा में थे। स्टेशन पर, , , विमल के पापा आए थे ।उन्होंने हमारे रहने का इंतजाम दादर के एक होटल में किया था। होटल पहुँचते-पहुँचते साढ़े-बारह बज गए। खाना खाकर हम सो गए। सुबह करीब तीन बजे से पक्षियों की चहचहाहट और कौओं की काँव-काँव ने मुझे चकित कर दिया। लखनऊ में पक्षियों की आवाज बहुत कम सुनाई देती है। करीब छः बजे युगाँधर को लेकर बाहर टहलने निकला। लोगों का हुजूम मानो कदम से कदम मिलाकर चल रहा हो। लोकल ट्रेन की जीवन रेखा से अंकित ये शहर, अनंत दिशाओं से प्राणवायु खींचता है। वे सारी दिशाएँ, एक बिंदु पर आकर मिल जाती हैं फिर अलग होती हैं फिर मिलती हैं। हृदय स्पंदन की तरह, धक-धक, धक-धक धक-धक, धक-धक।

सड़क के किनारे कुछ लोग पालतू गाय लेकर बैठे थे। काम पर आते-आते लोग आकर उन्हें हाथ से सहला कर, चूमते, प्रणाम करते और कुछ न कुछ खिलाते और दान दक्षिणा देते। जीवन में पहली बार हिंदुस्तान के किसी शहर में यह दृश्य देखा था। दूसरी चीज थी, असंख्य कबूतर। इधर से उधर गुटर-गूँ करते, मानो लोकल ट्रेन की समय-सारणी से समय का मिलान करते हुए पूछ रहे हों, “हमें देर तो नहीं हुई”।

उन्हें देर नहीं हुई। तय समय पर विमल, उनके माता-पिता और उनकी छोटी बहन, होटल में, हमारे कमरे में पहुँचे। औपचारिकताओं और चाय-पानी के बाद, विमल के पिता ने मुझसे पूछा, ''आपकी क्या राय है "? मैं इतनी शीघ्रता से निर्णय करने की स्थिति में नहीं था। "अम्मा-पापा से बात कर जवाब दूँगा" मेरे मुँह से यही निकलने वाला था किंतु देर हो गई। तब तक उन्होंने सिम्मी से उसकी राय पूछी। सिम्मी ने "हाँ" कर दी। मैं अंदर ही अंदर अवाक था। इतनी जल्दी क्यों? वे दिसंबर में विवाह करना चाहते थे। हमारे घर का आखिरी विवाह था, मैं इसे धूमधाम से करना चाहता था। गर्मी की छुट्टियों तक काफी समय मिल जाता, तैयारी का। मैं मई-जून की तारीख चाहता था किंतु सिम्मी दिसंबर के लिए तैयार हो गई। इतनी जल्द-बाजी क्यों हो रही थी? मैं कुछ नहीं समझ पा रहा था। वह शादी की तारीख और मुहूर्त, सब तय कर के आए थे। पंडित को वहीं बुलाया। सब तय हो गया। मिठाई मँगवाई गई। सिम्मी और विमल को लेकर उनकी छोटी बहन कॉफी पीने चली गई। मैं अम्मा को देख रहा था। अम्मा कितना चुप रहतीं थीं।

लौटते समय हम जबलपुर, करीब ग्यारह बजे पहुँचे।वहाँ से लखनऊ के लिए दूसरी ट्रेन शाम को थी। होटल में नहा-धोकर, खा-पी कर, हम धुआँधार और भेड़ाघाट घूमने गए।धूप में छटपटाते, ऐंठते पत्थरों की तपन के बीच, डेढ़-दो किलोमीटर पैदल चलकर, धुआँधार की मनमोहक शीतलता में हमने शरण ली। नगण्य से जल-बिंदु सामूहिक नृत्य में लोमहर्षक कुलाँचे भरते ललकार रहे थे, मल्लयुद्ध के लिए, महाबली प्रस्तरों को। देखने वाले, जब तक विजय और पराजय के अंतिम छोर तक दृष्टि दौड़ा पाएँ, माँ नर्मदा सब समेट लेतीं हैं, अपने आँचल में। हम कितना भी प्रकृति से खेल लें, प्रकृति के खेल के रहस्य नहीं सीख पाएँगे। हमारी पीढ़ियाँ खेलते-खेलते खप गईं, प्रकृति निरंतर खेले जा रही है।

शाम को जबलपुर से लखनऊ की ट्रेन थी। सुबह लखनऊ पहुँच गए। सच कहूँ, लखनऊ मुझे कभी पसंद नहीं आया।साहित्यिक लखनऊ और यथार्थ

लखनऊ बिल्कुल विपरीत हैं। जो अदब और संवेदना इसके इतिहास और साहित्य से जुड़े हैं, वे यथार्थ में विलुप्तप्राय हैं। एक अजीब से घुटन भरी प्रतिस्पर्धा में साँसों की सजावट सा लगता है, लखनऊ। सच कहूँ, मैं हिंदुस्तान में देहात ढूँढ़ता हूँ। नहीं मिलता, पर देहात में हिंदुस्तान मिल जाता है। मैं उससे परिचित हूँ। अपनापन महसूस होता है। अम्मा की सहजता और सरलता निखर उठती है। वही चाहिए था, मुझे। ना समझ में आया, ना मिला ।मुझे कभी नहीं लगा, अम्मा या मैं लखनऊ के लिए उपयुक्त हैं। पर अब करते भी तो क्या करते, लखनऊ ही सब जगह है।

हमारे घर में, शुरू से, महीने भर का सामान एक साथ ही आता था।

फिलहाल, हमारे घर का महीने भर का सारा सामान, बिग बाजार, सहारागंज से ही आता था । महीने में एक बार, वो हमारा अवकाश होता था। पूरा परिवार जाता। दिनभर की छुट्टी लेकर ।पर्ची बनाकर ले जाते, लेकिन अंदर जाते ही पर्ची के पुर्जे-पुर्जे हिल जाते। लिखे गए सामान का तीन-चार-पाँच गुना हो जाता। जिसको जो जरूरत होती ट्रॉली में रखता जाता। एक, फिर दो, फिर तीन, फिर चार, ट्रॉलियाँ भरती जातीं। चावल, आटा, घी, तेल, शक्कर से लेकर फिनायल, अगरबत्ती, कपड़े, बर्तन वगैरह सब वहीं से एक साथ लेते। अम्मा को अच्छा लगता था। अम्मा अपनी पसंद से चावल वगैरह देख कर लेतीं थीं। बिलिंग काउंटर पर अम्मा सामान की निगरानी करतीं। सामान सही से पैक करवातीं। फिर ट्रॉली के साथ बाहर निकलतीं। मुझे भी अच्छा लगती थी अम्मा के अधिकार पूर्ण रवैये की भाव-भंगिमा। हम सहारागंज के सामने, रॉयल कैफे में खाना खाने जरूर जाते थे। महीने में दो-चार बार वहाँ खाना खाने आते थे। अम्मा को आइसक्रीम बहुत पसंद थी। खाने के बाद अक्सर अम्मा के लिए आइसक्रीम मँगवाते। निकलते समय गेट पर खड़े दरबान को जब अम्मा पैसे देतीं और वह सलाम करता तो अम्मा के अंदर से चंद्रावती का भाव उभरते देखा था। यह बहुत कम होता था, जब अम्मा स्वयं को प्रकट करतीं। उन्हें

तलाशना जितना आसान था, उतना ही मुश्किल भी था। व्यक्ति, विशुद्ध रूप से अपने व्यक्तित्व का एकांत ही होता है।

सिम्मी के विवाह से पूर्व, धान रखने की एक प्रक्रिया थी, जो पूरी करनी थी। थोड़ा सा धान, मुझे ले जाकर उसकी होने वाली ससुराल में रखना था। विमल के बाबा, सत्यदेव सिंह, जौनपुर में केराकत के अमहित गाँव के थे लेकिन उन्होंने अपना व्यवसाय मुंबई में खड़ा किया था। मुंबई में उनका कोयले का व्यापार था। विमल एच.एस.बी.सी बैंक में कार्यरत थे।

मुझे जौनपुर जाना था। मुझे लगा जौनपुर, सुल्तानपुर से आसानी से पहुँचा जा सकता है इसलिए मैं पहले लखनऊ से सुल्तानपुर पहुँच गया। रास्ता उल्टा पड़ गया। सुल्तानपुर से जौनपुर के लिए बस देर से मिली और करीब दो बजे जौनपुर पहुँची। वहाँ से उनके गाँव पहुँचने में शाम हो गई।जल्दबाजी में मिठाई वगैरह भी नहीं ले पाया। उनके गाँव पहुँचने पर उनके रिश्तेदारों में से किसी एक ने टोक भी दिया। मैंने अपनी गलती स्वीकार की और मिठाई के पैसे दे दिए ताकि वे मँगवा सकें। लौटते- लौटते रात हो जाती इसलिए शादी का कार्ड और धान सौंप कर, मैं एक घंटे में वहाँ से वापस लौट आया।

लखनऊ पहुँचते-पहुँचते, रात के दो- ढाई बज गए थे. घर पहुँचा तो देखा, युगाँधर को काफी बुखार था, करीब १०३ डिग्री। युगाँधर शुरू में काफी कमजोर था। माथे पर पानी की पट्टी रखी गई। सुबह-सुबह डॉक्टर तिवारी से फोन कर बच्चों के डॉक्टर के बारे में सलाह ली तो उन्होंने डॉक्टर धनंजय का नाम सुझाया जो आलमबाग में अजंता अस्पताल में बैठते थे। अस्पताल फोन कर डॉक्टर धनंजय का अपॉइंटमेंट लिया और युगाँधर को लेकर वहाँ पहुँचे।हाई ग्रेड फीवर था। इमरजेंसी में डॉक्टर को दिखाया। डॉक्टर धनंजय ने कुछ दवाईयाँ लिखीं और कुछ जांचें भी लिखीं। जाँच रिपोर्ट अगले दिन मिलनी थी। अगले दिन रिपोर्ट लेकर मैं डॉक्टर के पास गया। हीमोग्लोबिन का स्तर

काफी कम था, सी.आर प्रोटीन की मात्रा काफी बढ़ी हुई थी। मन में खीझ उत्पन्न हुई ।उसी समय घर फोन कर अपना गुस्सा उतारा और अगले दिन से युगाँधर को खिलाने पिलाने की जिम्मेदारी स्वयं पर ले ली। युगाँधर को मानो भूख लगती ही नहीं थी। कभी उसे भूख से रोते नहीं देखा। किसी ने उसका रोना नहीं सुना। उसके रोने की आवाज कभी पड़ोसियों ने सुनी ही नहीं। बहुत कम खाता-पीता था। रोता बिल्कुल ही नहीं था। लोग उसे जबरदस्ती रुलाने की सलाह देते। बेहद शांत प्रकृति का बालक था। खिलौने का शौकीन था। अपने खिलौनों में ही रमा रहता। खिलौनों के प्रति मेरी आसक्ति ने मानों दूसरा बचपन तलाश लिया था। युगाँधर कुछ दिनों में ठीक हो गया किंतु अजंता हॉस्पिटल और डॉक्टर धनंजय से उसका रिश्ता तीन-चार साल तक बना रहा।

४४.

सिम्मी की सगाई वही मुंबई में ही तय थी। भयंदर में 'जायका' रेस्टोरेंट में। सुधा दी और विक्की नहीं गए थे। बाकी हम सब गए थे। सगाई के दौरान, युगाँधर बहुत रो रहा था मानो उसे सिम्मी बुआ की विदाई का आभास हो रहा था। उसका अधिकतर समय सिम्मी के साथ ही बीतता था। सगाई का आयोजन भव्य था किंतु रिश्तो की गर्माहट की अनुपस्थिति थी। पिछली बार की तुलना में विमल के पिता का व्यवहार बहुत रुखा था। सगाई के उपरांत मैं खाना खा रहा था कि उन्होंने आकर कहा मेहमान जा रहे हैं, उन्हें लिफाफे देने हैं। होटल में उन्होंने पहले ही फोन कर बीस-पच्चीस लिफाफे हजार रुपए और पाँच सौ रूपए के तैयार रखने को कहा था। मुझे खाना छोड़कर उनके साथ जाना पड़ा । उन्होंने कहा, "हो सकता है ज्यादा लोग हों, और लिफाफों की जरूरत पड़े ।अगर आपके पास पैसे ना हों तो मैं पैसे डालकर दे दूँ? आप दे दीजिएगा"। मुझे उनके व्यवहार पर ताज्जुब हो रहा था। विमल की माता जी भी काफी दुखी दिख रहीं थीं। अंदाज लगाना मुश्किल ना था कि बेटे की जिद की वजह से विवाह हो रहा था। उनकी अपनी सहमति उसमें नहीं थी।

होटल लौटते-लौटते रात काफी बीत चुकी थी। होटल में विमल का पिता का फोन आया। उन्होंने कहा जाने से पहले होटल का बिल क्लियर कर दीजिएगा। इतना शुष्क और आपत्तिजनक व्यवहार? कोई कारण नहीं था। हम जबरदस्ती विवाह करने नहीं जा रहे थे। वे यदि नहीं तैयार होते, तो क्या हम अपनी लड़की को जबरदस्ती उनके गले बाँध देते? ऐसे रिश्ते से, क्या संबंध बन सकते थे, जिनकी बुनियाद में ही इतनी अभ्यर्थना हो? दूसरे दिन सुबह हमें लौटना था। अम्मा बिल्कुल खुश नहीं थी। हम भी उदास थे। युगाँधर भी उदास था। सिम्मी बेहद गुस्से में थी। रिश्ते बनने से पहले ही बिगड़ रहे थे।

मुंबई से लौट कर मैं सुमन को लेने नोएडा गया। शादी में अब गिनती के ही दिन बचे थे। सिम्मी की शादी भी, होटल "मेरा मन", से ही होनी थी । घर में शादी थी, पर शादी का माहौल नहीं था। सब कुछ जैसे उदास-उदास था । सब हो रहा था मगर कुछ महसूस नहीं हो रहा था। भरा होकर भी इतना खालीपन क्यों था ? अम्मा चाह कर भी वो सब कर नहीं पा रहीं थीं जो करना चाहती थीं। अम्मा की व्यथा में इतना खालीपन था या सिम्मी के चले जाने का अहसास, घर को भर रहा था? सिम्मी, अम्मा की धुरी थी जिसके इर्द-गिर्द अम्मा की दिनचर्या चक्कर काटती रहती थी। उसका अप्रत्याशित व्यवहार, घर की दीवारों को भी चौकन्ना रखता। जरा सी कहीं खटर-पटर होती, हवाओं में फुसफुसाहट दौड़ जाती, "क्या सिम्मी नाराज है"? यदि इसका जवाब लौटती तरंगे "हाँ" में देतीं तो दीवारें फैल जातीं और यदि "ना" में होता तो दीवारें समेटकर दराज में डाल दीं जातीं और हँसी-मजाक के गुलछर्रे निकाल कर लुढ़का दिए जाते ।खेलो, जितना खेल सकते हो।

सिम्मी, अम्मा की आदत थी। यह आदत छूटने पर अम्मा में किस तरह का परिवर्तन होगा, कोई नहीं कह सकता था। शायद अम्मा स्वयं नहीं जानती थी कि सिम्मी का विवाह उन्हें एक अपरिचित आशंका से मुक्त कर देगा या फिर परिचित संवेदनाओं से पुनः घिर उठेंगी? व्यक्ति कितने भी प्रगाढ़ संबंधों का वेत्ता हो, किसी भी व्यक्ति के साथ अनंत नहीं प्राप्त कर सकता। दु:ख बिछोह का नहीं होता, दुख साथ बिताए गए, उस समय का होता है जिसमें वो दूर रहे, जिसका सदुपयोग नहीं हो पाया ।दुख अनपढ़ नहीं, कुपढ़ होता है सिर्फ अपना अलिफ-बे पढ़ता है और वही सच मानकर जीता है। दूसरे हस्ताक्षर उसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर हैं। दु:ख से कैसे भागें? असंभव है ।कोई नहीं भाग सकता। गीता का उपदेश देने वाले, कृष्ण भी नहीं भाग सके। अभिमन्यु की मृत्यु का पूर्वाभास, उन्हें भी शिविर में रुला गया था। बुद्ध सच की तलाश में दुःखी होकर निकले थे। दुःखी ना होते तो, सिद्धार्थ रह जाते। दुख अकाट्य है, सत्य है। सुख उसी से अवतरित एक क्षीण धारा जो अंततः उसी में जाकर मिल

जाएगी। इस दुख को अम्मा जी गईं और इसी दुख को उत्सव के रूप में मनाती गईं।हम अक्षर पहचानते थे, वे दर्शन पहचानती थीं। इसलिए हम कमजोर थे, वे बेहद मजबूत थीं।

सिम्मी के विवाह के दिन भी, मैं सिम्मी, अम्मा, सुमन, प्रतिभा, सुधा दी आखिरी में होटल में पहुँचे। वहाँ हाहाकार मचा हुआ था। सिम्मी को निजी कमरे में करने के बाद जब नीचे पहुँचा, पता चला, बाराती अपने लिए अलग-अलग कमरे की माँग कर रहे थे। सब अपने- अपने कमरे की चाबी माँग रहे थे। मेरे हाथ-पैर फूल गए। ऐसा संभव नहीं था। मैंने चौदह कमरे बुक कराए थे और विमल के लिए प्रेसिडेंट स्वीट था। मैंने विमल के पिता से कहा, "मैंने चौदह कमरे बुक कराए हैं और उनकी चाबी मैं आपको दिलवा देता हूँ, हर एक के लिए अलग-अलग कमरा बुक करना संभव नहीं है" ।उनके पिता ने कहा, "हाँ, ठीक है, मैं सबको समझा दूँगा "।उसकी थोड़ी देर बाद फिर हाहाकार मचा। पता चला बारातियों का नाश्ता कम पड़ गया। मैंने बैंक्विट मैनेजर महेंद्र सिंह से पूछा तो उन्होंने कहा, " क्या करें, सर, भुने हुए काजू वगैरह सब दो-तीन बार ले लेकर जा रहे हैं, कैसे पूरा पड़ेगा"? मैंने उनसे कहा, "आप कोई त्वरित नाश्ते का प्रबंध कर दीजिए"। उन्होंने कहा, "हम सैंडविच का इंतजाम कर सकते हैं"। मैंने उनसे कहा, " आप कर दीजिए"। बारातियों में एक व्यक्ति था जो लड़ने पर उतारू था। उसने काफी शराब पी रखी थी। काफी देर बहस करने के बाद ,कुछ समझदार बाराती उसे वहाँ से ले गए।

द्वारचार में काफी देर हो गई थी। द्वारचार के बाद पता चला, स्थानीय मेहमान खा-पी कर जा रहे थे। आज तक मैं ये नहीं जान पाया, भोजन प्रारंभ करने का आदेश, बैंक्वेट में किसने दिया था?

विवाह संपन्न होते-होते सुबह के ४ चुके थे। चार बजे सुबह, उन्होंने नाश्ते की फरमाइश शुरू कर दी। बात यह हुई थी कि सुबह बारात प्रस्थान कर देगी इसलिए उनका नाश्ता पैक कर उन्हें दे दिया जाएगा। कोई यह नहीं जानता था

कि चार बजे ,सुबह-सुबह, बारात जाने को तैयार हो जाएगी। जहाँ से नाश्ते का इंतजाम किया था, गोयल स्वीट हाउस, तेलीबाग, उस समय खुला भी नहीं था। मैंने उन्हें फोन किया तो उन्होंने कहा, ”आप आदमी भेज दीजिए, हम तैयार करके दे देंगे”। सुमन गाड़ी लेकर तेलीबाग आई, उसने नाश्ता पैक करवाया और वह नाश्ता बारातियों को दिया गया । केवल चुनिंदा लोग, जो विमल के घर वाले थे, वहीं पर थे। उनके लिए नाश्ते का इंतजाम होटल में ही किया गया था।

अंततः तमाम आशंकाओं को धता बताते हुए, सिम्मी भी लाल जोड़े में विदा लेने को तैयार थी। उसके बगैर घर की कल्पना, दारुण दुख का हाहाकार बनकर प्रकट हुई। मन चीत्कार कर रहा था। सिम्मी का व्यवहार घर में कैसा भी रहा हो, लाडली वह सब की थी। अम्मा के गले लगी, सुमन के गले लगी। प्रतिभा, सुधा दी, पूर्णिमा दीदी, पापा, अर्चना के पैर छुए । मेरे पैर छूकर गाड़ी में जा बैठी। विमल से बस में इतना कह पाया, ” खयाल रखना, विमल”। स्वर भर्रा गया था। पापा को रोते देखा । धीरज और टूटा जा रहा था। सिम्मी ने अब भी पापा से बात नहीं की थी। एक ही स्थान पर अलग-अलग हृदय की व्यथा-कथा बनकर पीड़ा के विभिन्न स्रोतों को आत्मसात कर दु:ख, वासुदेव सा उठ खड़ा होता है और अपना विश्वरूप दिखलाते हुए कहता है, “जो हूँ, मैं ही हूँ। नकारात्मक नहीं, सकारात्मक ऊर्जा, जो तुम्हारे लिए नए पथों का निर्माण करता है । मुझसे डरो मत। मेरे ही बनाए हुए रास्तोँ पर चलकर मनुष्य, मनुष्य रह पाएगा”। सिम्मी चली गई।

४५.

विवाह के कुछ दिन बाद तक सिम्मी को अमहित गाँव में ही रहना पड़ा। वहाँ की दिनचर्या, उसके स्वभाव के अनुकूल बिल्कुल न थी । बाकी सब लोगों के उठने से पहले, कड़ाके की ठंड में, उसे, सुबह चार बजे, ठंडे पानी से नहाना

पड़ता था। बाकी सारा दिन उसे एक कमरे में बंद रहना पड़ता। हफ्ता-दस दिन अमहित गाँव में रहने के बाद वे वापस मुंबई लौट गए।

सिम्मी और विमल को मॉरीशस जाना था। सिम्मी के सारे कागजात यहीं थे इसलिए पासपोर्ट यहीं से बनना था। सिम्मी ने, शादी से पहले ही, यहाँ से पासपोर्ट का आवेदन किया था। दो महीने से ऊपर हो गया, कहीं कुछ पता नहीं चला। सिम्मी ने फोन पर पता करने को कहा । कई बार फोन करने के बाद सत्यापन के लिए लाएसन अधिकारी, बलवंत सिंह घर पर आए। सत्यापन क्या था, खुलेआम रिश्वत थी ।आते ही पैसे की माँग की । मैंने कहा, ''पैसे दे दूँगा किंतु यह तय कर दीजिएगा कि दो दिन में पासपोर्ट मिल जाए क्योंकि मुझे यहाँ से मुंबई भेजना है'' । उन्होंने आश्वासन दिया कि पासपोर्ट कल शाम तक डिस्पैच हो जाएगा । नहीं आया। बलवंत सिंह को कई बार फोन किया तो उन्होंने कहा, ''मैंने तो कह दिया था, आप पासपोर्ट ऑफिस जाकर पता करिए''।पासपोर्ट ऑफिस गया। अधिकारियों से मिला और कहा मुझे आज ही पासपोर्ट चाहिए क्योंकि मुझे मुंबई भेजना है । परसों उनकी फ्लाइट है। बहुत विनती के बाद भी, उन्होंने कहा आज नहीं मिल पाएगा। निराश होकर मैं घर लौट आया। करीब तीन बजे मेरे पास फोन आया कि अगर आपको आज ही पासपोर्ट चाहिए, साढ़े तेरह हजार रूपए लेकर, पासपोर्ट ऑफिस में संजय श्रीवास्तव से मिलिए। चार बजे के करीब मैं पासपोर्ट ऑफिस पहुँचा, संजय श्रीवास्तव से मिला उन्हें साढ़े तेरह हजार रुपए दिए और शाम छः तक पासपोर्ट वहाँ से डिस्पैच कर दिया गया। मुझे उसका डॉकेट नंबर दे दिया गया और कहा गया कि जी.पी.ओ में जाकर कह दीजिए, वह अभी आपका पासपोर्ट आपके स्थानीय पोस्ट ऑफिस को डिस्पैच कर देंगे, जहाँ से आप सुबह उसे लेकर, मुंबई कोरियर कर सकते हैं। मैं जी.पी.ओ गया। उक्त व्यक्ति को डॉकेट नंबर दिखाया और विनती की कि उस पैकेट को तत्काल डिस्पैच कर दिया जाए। उस समय तक वह पैकेट जी.पी.ओ नहीं पहुँचा था। उन्होंने कहा, ''आप इंतजार

कर लीजिए या अपना फोन नंबर दे दीजिए, जैसे ही वह पैकेट आएगा, मैं उसे डिस्पैच करके आपको बता दूँगा"। मैंने इंतजार करना बेहतर समझा। करीब आठ बजे वह पैकेट आया और उन्होंने उसे डिस्पैच कर, नंबर मुझे दे दिया। अगली सुबह सात बजे, अंबेडकर यूनिवर्सिटी के पोस्ट ऑफिस पहुँचा। वहाँ पहचान पत्र दिखाकर पैकेट लिया और उसे तुरंत जाकर, पार्क रोड के, ब्लू-डार्ट ऑफिस से कोरियर किया। अगले दिन सिम्मी की फ्लाइट थी, सौभाग्य से वह पासपोर्ट सिम्मी को फ्लाइट से काफी पहले मिल गया।

और मुझे भी मिल गया । सबक। भ्रष्टाचार के रास्ते सरल, छोटे और सुविधाजनक होते हैं। ईमानदारी की कोई डगर नहीं, एक अंधा कुआँ है, जहाँ की आवाज किसी को सुनाई नहीं देती । भ्रष्टाचार एक चोर रास्ता है, जो एक दिन उस कुएँ के ऊपर से गुजरता है और उस कुएँ को पाट ,उस पर खड़ा हो जाता है। उसे ईमानदारी का स्मारक कहा जाता है, जहाँ दूर-दूर से लोग,अपनी मन्नतें पूरी करने आते हैं।

४६.

युगाँधर, सिम्मी के कमरे में इधर-उधर देखता फिर अपने खेल में व्यस्त हो जाता ।कई दिनों तक उसकी बाल-बुद्धि सिम्मी बुआ की पहेली हल करने का प्रयास करती रही । सिम्मी के इतना करीब रहने के बाद, अचानक सिम्मी का चले जाना, उस बाल-मन को कितनी पीड़ा दे रहा होगा, उसे व्यक्त करना शायद उसके लिए संभव न था पर मेरे लिए उस अभिव्यक्ति को पढ़ना आसान था। उन दिनों वह अक्सर बीमार रहता था। अचानक आधी रात को उसे तेज बुखार चढ़ जाता। बॉबी को बुलाकर अजंता हॉस्पिटल ले जाते। कभी डेढ़ बजे, कभी ढाई बजे, कभी एकदम सुबह चार बजे। बॉबी को जब बुलाओ आ जाता। लखनऊ में बॉबी और डॉक्टर तिवारी इन दोनों ने समय-कुसमय मेरी बहुत मदद की । आजीवन इनका ऋणी रहूँगा।

उस दिन सुबह-सुबह युगाँधर को पेशाब करने में जलन होने लगी । जब पेशाब करता, रोने लगता । डॉक्टर तिवारी को फोन किया। उन्होंने अल्काजोल देने को कहा और गर्म पानी पिलाने को कहा। किंतु उससे ज्यादा राहत नहीं मिली। अजंता हॉस्पिटल गए, पता चला डॉक्टर धनंजय शाम को बैठेंगे ।उस दिन शनिवार था। वापस आ गए। शाम को फिर अजंता हॉस्पिटल गए। डॉक्टर ने अस्पताल में भर्ती करने की सलाह दी। यूरिन इन्फेक्शन का डर था। छोटा सा, दुबला-पतला, युगाँधर टुकुर-टुकुर बस इधर-उधर देख रहा था । भर्ती करने के बाद उसे विगो लगाना था। सुधा दी ने उसे सिस्टर की गोद में सौंप दिया ।थोड़ी देर बाद अंदर से "बुआ" "बुआ" की युगाँधर की चीखें सुनाई देने लगीं। मन बेहद विचलित था, व्यथित था, युगाँधर की पीड़ा से लबरेज, पर अधूरा ना था। थोड़ी देर बाद नर्स, रोते हुए युगाँधर को लेकर आई ।उसका चेहरा लाल और आँसुओं से तर था। हाथ में विगो लगा हुआ था। नवजात शिशुओं के वार्ड में हमें रखा गया । डॉक्टर ने प्राइवेट वार्ड लेने से मना कर दिया। कहा नवजात

शिशुओं के वार्ड में डॉक्टर और नर्सों की निगरानी में रहेगा, बच्चा। विगो से ही युगाँधर को दवाईयाँ दी जातीं। मैं और अर्चना रात में वहाँ रहते, सुधा दी घर चली जातीं। सृष्टि को सुबह विद्यालय जाना रहता था। अगले दिन बारह-एक बजे जब वह हॉस्पिटल आतीं, तब मैं घर जाता, ढाई से साढ़े आठ बजे तक, बच्चों को पढ़ाकर अस्पताल आता। चार-पाँच दिन अस्पताल में रहे। अस्पताल से जब घर लेकर आए, गेट के अंदर घुसते ही उसे गोदी से जैसे ही उतारा, ''अद्दा'' ''अद्दा'' कहता हुआ, युगाँधर, फुर्ती से सीढ़ी चढ़ने लगा। घर-घर होता है, बड़ा हो या छोटा। बड़े और छोटे दोनों के लिए। खिड़की, दरवाजे गिनने के लिए होते हैं, उन्हें कोई सुनता है? सुनी जाती हैं, धड़कनें।

अस्पताल से छुट्टी पाए, अभी एक महीना भी नहीं हुआ था कि युगाँधर के पेट में समस्या होने लगी। उसका पेट गड़बड़ रहने लगा। बीच में पेट के दर्द की शिकायत होने लगी। फिर लेकर डॉक्टर धनंजय के पास गए। उन्होंने नए सिरे से दवाइयाँ लिखीं और सलाह दी की एक बार अल्ट्रासाउंड अवश्य करवा लें। दवाइयों से युगाँधर को फोरी तौर पर राहत मिल गई। अल्ट्रासाउंड कराने का मन नहीं था। अज्ञात भय, मन को तलाश रहा था। मन उसके चंगुल से आजाद रहना चाहता था। सुधा दी बार-बार कहतीं, अल्ट्रासाउंड करवा लो मगर मैं उनकी बात नजरअंदाज कर देता था। अभी दो साल का ही था। पैदा होते ही, तीसरे दिन, सिर का अल्ट्रासाउंड करवाना पड़ा था। दाहिनी कनपटी पर उभरी नसों की बाबत डॉक्टर ने सलाह दी थी कि एक बार अल्ट्रासाउंड करवा लें। दो दिन का ही था युगाँधर, जब उसे चरक डायग्नोस्टिक सेंटर ले गए थे अल्ट्रासाउंड कराने।कितना रोया था ! अब हिम्मत नहीं थी।

पर हफ्ता भर भी न बीता था कि उसकी पेट की दिक्कत बढ़ने लगी। जब कुछ खिलाओ, उँगली से अपनी नाभि की तरफ इशारा करता, फिर रोने लगता, जो खाता सब पलट देता। अम्मा बार-बार कहतीं जाकर दिखा लो, दिखा लो।

कायरता का एक नया प्रारूप मुझे धारण कर चुका था। डर, डर, डर और डर चारों तरफ सिर्फ डर ही महसूस होता। अपनी असफलताओं की लंबी फेहरिस्त में, मैं युगाँधर का नाम नहीं लिखवाना चाहता था।

उस दिन दोपहर में उसकी तकलीफ बढ़ गई। मैं बच्चों को पढ़ा रहा था। सुधा दी ने आवाज देकर मुझे अंदर बुलाया। सर्दियों के दिन थे। ऊपर छत पर अम्मा, अर्चना और सुधा दी युगाँधर को लेकर बैठी थीं। युगाँधर लगातार रोए जा रहा था और अपनी नाभि की तरफ इशारा कर रहा था। मैंने बॉबी को फोन कर गाड़ी भेजने को कहा और अर्चना और सुधा दी को सुविधा डायग्नोस्टिक जाकर उसका अल्ट्रासाउंड करवाने को कहा। उन्हें जब गाड़ी तक छोड़ने आया युगाँधर मेरी तरफ हाथ फैला "पापा" "पापा" कहते हुए रोने लगा। मैं अंदर ही अंदर टूट रहा था। गाड़ी चली गई। मैं स्वयं को संभालने में असमर्थ था। बच्चों को थोड़ी देर अकेला छोड़, मैं अंदर चला गया। फूट-फूट कर रोया।

आज की आशंका मुझे कल शाम से ही हो रही थी।कल शाम, तेज़न से, ईश्वर के यथार्थ पर, पढ़ाते समय बहस होने लगी। तेज़न, एक परिश्रमी और होनहार छात्र था। पिता की आकस्मिक मृत्यु ने उसके अंदर ईश्वर के प्रति कुंठा और विषाद का भाव जागृत कर दिया था। ईश्वर की सार्थकता को उसने सिरे से खारिज कर दिया था। मैंने कहा ईश्वर के अस्तित्व को चुनौती देना, एक बुद्धिजीवी छल के सिवाय कुछ नहीं। ईश्वर के होने और न होने की बहस के बीच एक एक निजी क्षण होता है, जहाँ हर मनुष्य हार कर, सब कुछ ईश्वर पर छोड़ देता है। मैंने पूछा कि क्या उसका विश्वास इस हद तक टूट चुका है कि वो ईश्वर के किसी भी प्रारूप को नकार उसे पैरों से कुचल सकता है? उसका जवाब "हाँ" था। मेरी मेज पर गणेश जी की छोटी सी प्रतिमा थी। मैं यकीन नहीं कर पा रहा था। मैंने वो प्रतिमा उसके आगे कर दी। मुझे लगा वो पीछे हट जाएगा किंतु ऐसा नहीं था। उसके पैर रखने से पहले, मैंने प्रतिमा हटाने का प्रयास किया किंतु उसके पैर का स्पर्श प्रतिमा पर हो ही गया।

एक झनाका सा हुआ। जैसे कोई कान में कह कर गया, इसकी सजा, तुम्हें युगाँधर के माध्यम से मिलेगी। कल से आशंकित था। आज उसी आशंका ने मूर्त-रूप ले लिया था।

करीब साढ़े पाँच बजे, अर्चना और सुधा दी लौट कर आई । गाड़ी उन्होंने वापस नहीं की। सुधा दी गेट से अंदर घुसते ही बोलीं, " इसे फौरन एडमिट कराना है"।

रेडियोलॉजिस्ट ने कहा था उसे एक बूँद पानी भी नहीं दिया जाए। कुछ खाने-पीने को नहीं देना था। फौरन अस्पताल ले जाकर भर्ती कराना था।

मैंने बच्चों को छुट्टी दे दी। अल्ट्रासाउंड की रिपोर्ट देखी। "इंटससेप्सन", अंतर्वलन था। डॉक्टर तिवारी को फोन किया। उन्होंने सलाह दी, फौरन बच्चे को अस्पताल में भर्ती कराएँ और उसे कुछ भी खाने-पीने को ना दें।

सौभाग्य से, उस समय डॉक्टर धनंजय का, अजंता हॉस्पिटल में बैठने का समय था। हम अजंता अस्पताल पहुँचे और तात्कालिक सेवाओं में डॉक्टर धनंजय को दिखाया। रिपोर्ट देखते ही उन्होंने सिर पकड़ लिया। पूछा, "कहाँ थे आप"?

मैंने कहा, " अभी अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट मिली है, तुरंत आपके पास आ गए"।

उन्होंने नर्स से बच्चे को फौरन भर्ती करने के लिए कहा। मुझसे बोले, " शायद, सर्जरी करनी पड़े। ये बीमारी, दस लाख में से, किसी एक बच्चे को होती है"।

उन्होंने युगाँधर को लिटा कर, नाभि के नीचे का हिस्सा टटोल कर देखा। मैंने पूछा, "डॉक्टर साहब, क्या दवा से इसका इलाज सम्भव नहीं है"?

डॉक्टर साहब ने कहा, "देखते हैं"।

कुछ देर बाद, युगाँधर को नर्स, सुधा दी की गोद से ले गई। अनुभव ने बालक को पहले ही डरा रखा था। इस बार उसका आर्तनाद हृदय की समस्त वेदनाओं को चीर उसके अश्रुपूरित, निर्निमेष चेहरे की सिसकियों में परिवर्तित हो गया।

“बुआ-बुआ” “मम्मा-मम्मा” की कलेजा चीर देने वाली चीखों के बावजूद कोई उसके संरक्षण के लिए नहीं आया। उसके शिशु मन की मीमांसा इस रहस्य से पार नहीं पा रही थी। उसके हाथ में विगो, नाक के अंदर पाइप, मुँह के अंदर पाइप। उसकी छटपटाहट की स्वीकार्यता, हृदय को निचोड़, रक्तदान किए जा रही थी। पानी और माँ के दूध के लिए उठती उसकी चीत्कार ने पूरे वार्ड को सन्न कर दिया था। उसके दोनों हाथ दबोच कर, उसे अपनी गोद में इस तरह समेट रखा था कि वो अपनी पाइप या विगो न निकाल सके। उसकी पूरी देह ऐंठ रही थी, चीखें बंद नहीं हो रहीं थीं। मेरा मन-मस्तिष्क, शरीर, हृदय, सब जड़ होते जा रहे थे। दु:ख बेहद व्यक्तिगत होता है ।इसे कभी किसी के साथ नहीं बाँटना चाहिए। मैंने कभी नहीं बाँटा। आज भी नहीं बाँटना चाहता, जो कुछ है जितना है सब समाहित कर लेना चाहता हूँ। इसी क्षण, बस इसी क्षण में, युगाँधर अपनी पीड़ा की अनुभूति में मुझे जी रहा था और मैं अपनी विवशता में उस निर्दोष के दोष को जी रहा था। न उसने हार मानी, न हमने। रात के घने साए ने हमें बख्शा, सूरज ने फिर पनाह दी। साढ़े सात बजे, सुबह, डॉक्टर आए। नाक और गले से पाइप निकाल दी गई। डॉक्टर ने कहा, “एक ढक्कन पानी दे दीजिए” । उस एक ढक्कन पानी पर ब्रह्माण्ड की समस्त विभूतियाँ निछावर थीं।

उस एक ढक्कन पानी की अंतिम बूंद को जब तक युगाँधर ने आत्मसात नहीं कर लिया उसने ढक्कन नहीं छोड़ा। और चाहिए। नहीं। नहीं दे सकते। विडंबना ही थी, अपने बच्चे को एक घूँट पानी नहीं दे सकता, माँ का दूध माँग रहा था, नहीं दे सकता। यही प्रारब्ध है, यही भाग्य है। यही किस्मत है। कौन लड़ेगा इससे?

दोपहर सिम्मी का फोन आया, उससे बात करते-करते रोने लगा। सिम्मी ने मुंबई से, आरती, अपनी सहेली के माध्यम से पैसे भिजवाए थे। सिम्मी हमेशा मेरे साथ खड़ी रहती, सुख हो या दुःख हो। सिम्मी, सुमन और प्रतिभा मेरे लिए छोटी कम, बड़ी बहनें ज्यादा थीं।

दोपहर की विजिट पर, जब डॉक्टर साहब आए तो उन्होंने थोड़ा सा माँ का दूध देने को कहा और यह भी कहा तरल पदार्थ खिलाएँ और थोड़ा-थोड़ा खिलाएँ। कष्ट हुआ, बहुत कष्ट हुआ किंतु इस कष्ट ने कष्ट को अपनी अंतिम सीमा तक जाने से रोक दिया। सर्जरी नहीं हुई ।दवा के माध्यम से ही युगाँधर का इलाज हुआ। दो-तीन दिन दवा देने के बाद, तीसरे दिन, एक्स-रे और अल्ट्रासाउंड कराने के बाद डॉक्टर ने कहा, "सर्जरी की आवश्यकता नहीं पड़ेगी"। और ऐसा ही हुआ। करीब एक हफ्ते अस्पताल में रहने के बाद युगाँधर को लेकर हम घर आ गए। तब से मैने मंगलवार का व्रत प्रारंभ किया था।

४७.

युगाँधर का मुंडन, राम की नगरी, अयोध्या में, हनुमानगढ़ी में करवाया गया। अम्मा बताती थीं, वो बैलगाड़ी से अयोध्या जी आ चुकी थीं। भैरोपुर से, कई साल पहले, गाँव वालों के साथ। खाने- पीने का सामान सब साथ लेकर चले थे। जहाँ रुकते, वहाँ खाना बनाकर खाते-पीते, कीर्तन-भजन करते, करीब दो-तीन दिन में अयोध्या पहुँचे थे ।सरयू नहाकर, हनुमानगढ़ी में दर्शन कर लौटी थीं। तब बैलगाड़ी से आई थीं, आज इनोवा से, किंतु बदलते समय के साथ अम्मा की सादगी और सरलता नहीं बदली। अम्मा का स्वभाव बैलगाड़ी की गति ही था। स्वयं को छिपा नहीं सकती थीं। उनके चेहरे पर उनके भाव प्रचुर स्पष्टता से परिलक्षित होते। न छिपा पातीं, न छिपाने का ढोंग करतीं इसलिए कई बार उनकी स्पष्टता लोगों को खल जाती थी। चाहे मेहमान हो, या मेजबान अम्मा कभी झूठ-मूठ भी किसी की तारीफ नहीं कर पाती थीं। कभी-कभी हमारे सामने बैठा व्यक्ति, अम्मा के इस व्यवहार से सकपका जाता तो हम अम्मा को इशारे से समझाने का प्रयास करते पर अम्मा का व्यवहार वैसा ही रहता, बैलगाड़ी की तरह, सिर्फ गंतव्य नहीं, रास्ते में आने वाले सभी पड़ावों को पढ़ना-समझना। अच्छा लगे तो आत्मसात करतीं वरना अपेक्षित करतीं जातीं।

४८.

सुधा दी, अचानक, सुबह-सुबह ही चिल्लाने लगीं। अम्मा से चीख-चीख कर पूछने लगीं, "कहाँ जाएँ? बताओ कहाँ जाएँ"? चीखने की आवाज सुनकर मैं ऊपर आया। सुधा दी ने किचन के पास, खिड़कियों के शीशे झटके से खोल दिए। एक तरफ का शीशा टूट भी गया। खिड़की के पास जाकर चिल्लाने लगीं। बाहर सबको सुनाने के लिए। सुधा दी विक्षिप्तों की तरह चिल्ला रही थीं। सिम्मी भी अपने कमरे से निकल कर आई। उस समय सिम्मी गर्भवती थी। आवाज सुनकर पापा भी नीचे उतर आए।

जो हो रहा था, कल्पना से परे था। इस घर में, कष्टों ने सीमाएँ लाँघी थीँ किंतु कभी भी इस घर ने अपनी मर्यादाएँ नहीं लाँघी थीं। यह हमारे संस्कार नहीं थे। इस तरह का माहौल इस घर ने कभी नहीं देखा था। दिमाग सुन्न पड़ता जा रहा था, हाथ-पैर शिथिल होते जा रहे थे।

दोनों बाजुओं में सिर छिपा कर खिड़की के पास खड़ा हो गया। सिम्मी ने घबरा कर आवाज दी, "सन्दीप भैया, सन्दीप भैया "!

अम्मा की तरफ देख रहा था। लगा अम्मा इससे ज्यादा बूढ़ी नहीं हो सकतीं। कितनी सारी आड़ी-तिरछी रेखाएँ, अचानक उग आईं थीं। अम्मा उसमें फँसी छटपटाए जा रहीं थीं। दोष किसका था, क्या था, कितना था? कुछ नहीं जानता। जानना चाहता भी नहीं। संसाधनों की कमी, हम सब ने देखी थी। गाहे – बगाहे क्रोध और क्षोभ का भी शिकार हुए किंतु वो क्रोध, वो क्षोभ हमारे नियंत्रण में होता था। जैसे ही देखते उस बनावटी दुराग्रह की पीड़ा का यथार्थ, अम्मा को सचमुच कष्ट देने लगा है, एकदम से सहज हो जाते। अम्मा की क्षमाशीलता की सीमा के अंदर ही रहकर ही अपना दुराग्रह व्यक्त किया। पर आज अम्मा जीते-जी हमारे जीवन से जा चुकीं थीं। अम्मा के चेहरे पर उनके कभी हार न

मानने के भाव दम तोड़ रहे थे।मैं देख रहा था, समझ रहा था पर कुछ कर नहीं पा रहा था। कहाँ गलती हुई? अम्मा ने नहीं बताया। कभी नहीं।

पापा क्रोध में अलग बिगड़ रहे थे। मस्तिष्क-आघात को अभी साल भर भी पूरा नहीं हुआ थी। उनके चेहरे पर छाई विकृति डरा रही थी। मैं उन्हें बार-बार ऊपर जाने को कह रहा था किंतु वे नहीं माने रहे थे।

अभी तक मैंने सुधा दी से कुछ नहीं कहा था।मुझे लगा, मन का विक्षोभ है, थोड़ी देर में शांत हो जाएगा, किंतु जब अम्मा -पापा के लिए उन्होंने अपशब्दों का प्रयोग करना प्रारंभ किया, मुझसे नहीं रहा गया। बहस व्यक्तिगत दुराग्रहों और आक्षेपों पर आ गई। मर्यादाओं की सारी सीमा- रेखाएँ टूट चुकी थीं। कीचड़ फैल चुका था और उसकी जड़ से जो निकल कर आया, वो था- पैसा।

पूरे जीवन में मैंने पैसे को कभी तरजीह नहीं दी। शायद इसीलिए पैसे ने सदैव मेरे साथ शत्रुता का भाव रखा। मैंने उसे बर्बाद किया, उसने मुझे। घर में पड़ा आखिरी पाँच सौ का नोट फकीर को देने में भी मुझे कभी गुरेज नहीं हुआ। इसलिए शायद मेरा और पैसों का छत्तीस का आँकड़ा रहा है। हम एक साथ कभी नहीं रह पाए।

सुधा दी को लगता था मैं पापा की पेंशन पर कुंडली मारे बैठा हूँ। मैं सारे पैसे बचा रहा हूँ, अपने लिए, अपने परिवार के लिए। उस समय आठ-नौ लोग थे परिवार में। कभी किसी चीज की कमी नहीं होने दी। सबकी जरूरतें पूरी करने का प्रयास किया, कभी आगे, कभी पीछे।

ये घर अम्मा-पापा का है और हमेशा उन्हीं का रहेगा। यहाँ जो भी होता था उनके मान-सम्मान को ध्यान में रखते हुए होता था। मेरा- तेरा, मेरे स्वभाव में अंशमात्र भी नहीं था। फिर कैसे, कब, क्यों सुधा दी को ऐसा प्रतीत हुआ, मैं नहीं जानता और आज तक नहीं जान पाया।

चंद्रावती सिंह के दो बच्चों के बीच, एक गहरी विषाद की छाया प्रकट हो गई। जो असंभव था, वह साक्षात समक्ष था और जो साक्षात समक्ष था उसे समझ पाना मेरे लिए बिल्कुल असंभव था।

सुधा दी के हमारे यहाँ आने के कुछ महीने बाद, उमाशंकर सिंह ने तलाक की धमकी का कानूनी नोटिस भेजा था। शादी-ब्याह, रिश्तेदारी सबका मजाक बना रखा था। उनके माता-पिता को फोन कर इसकी जानकारी दी गई तो उन्होंने सुधा दी से कहा कि वो बच्चों को लेकर गाँव में आकर रहें। यह समस्या का समाधान न था। मैंने सुधा दी को अच्छे से समझाया था कि केस लड़ेंगे तो उसमें काफी समय लगेगा और जल्दी फैसला होने की कोई उम्मीद नहीं । बहुत कष्ट उठाने होंगे । मैं जिस अवस्था में रहूँगा, उसी अवस्था में उन्हें भी रहना होगा। यदि इतना धैर्य हो तभी हम केस लड़ सकते हैं। वे केस लड़ने को तैयार हो गईं। हमने अपनी तरफ से नरही के विवेक भट्ट को अपना वकील नियुक्त किया। पहली मुलाकात में उन्होंने जो दावे किए, हमें लगा हम बिना मुकदमे के ही जीत गए। अदालत के दाँव-पेंच में हम नौसिखिए थे। तारीख मिलती गई, होता कुछ नहीं था। आर्मी वाइव्ज वेलफेयर एसोसिएशन में भी सुधा दी को बुलवाया गया। अप्रत्यक्ष रूप से, उन्होंने उमाशंकर का ही समर्थन किया। लब्बोलुआब यह था कि सुधा दी जाकर उनके साथ ही रहें क्योंकि वो पैसे कमाते हैं । हमें केस लड़ना आता नहीं था, वकील जब पैसा माँगते हम दे देते। जो वकील उमाशंकर के कपड़े तक उतरवा लेने की बात करते थे, वे धीरे-धीरे हम पर उमाशंकर से समझौता कर लेने का दबाव बनाने लगे। मुकदमा चलता रहा। गंगा उल्टी बहने लगी।

फिर अचानक सुधा दी को यह क्या और क्यों हुआ? अपनी हैसियत के अनुसार जितना कर पा रहा था, कर रहा था। उस समय घर चलाना कोई हँसी- खेल नहीं था । मैं कैसे घर चला रहा था सिर्फ मुझे या अम्मा को पता था। अर्चना को भी नहीं पता था, जिसे सुधा दी ने मेरे स्वार्थ के साथ जोड़ दिया था।

सृष्टि और विक्की की जरूरतों को कभी मैने भूल कर भी नजरअंदाज नहीं किया था। मधुर ने एक बार मुझे फोन कर कहा था कि मैं सृष्टि और विक्की से घर में झाड़ू-पोछा लगवाता हूँ। इन सब बातों का मुझ पर कभी कोई असर नहीं पड़ता था। सच, सच ही रहेगा, आदमी कितनी भी माथापच्ची कर लें, दो और दो पाँच नहीं होगा और जो सच नहीं है उसकी मीमांसा में सिर खपाना, दो और दो पाँच करना है। मैंने अपने जीवन में बस गिने- चुने लोगों को ही गंभीरता से लिया है। मेरी शिक्षा का मूल मंत्र कोई विद्यालय या विश्वविद्यालय नहीं, बस, मेरी अम्मा ही थीं।

सुधा दी का व्यवहार अम्मा-पापा या सिम्मी के लिए घातक सिद्ध हो सकता था इसलिए मैने विकी को फोन कर, उन्हें घर ले जाने को कहा। अगले दिन वह आया और सुधा दी और सृष्टि को ले गया। उस दिन अम्मा बिल्कुल रिक्त हो गईं। उन्हें कभी इस बात की हल्की सी भी आशंका नहीं रही होगी कि उनके बच्चे उनके सामने ऐसे लड़ेंगे। उस दिन अम्मा जो टूटीं फिर उनके मन को कोई नहीं जोड़ पाया ।अम्मा मुझ पर बहुत भरोसा करती थीं। उन्हें यकीन था कि मैं कभी परिवार में इस तरह का द्वेष नहीं पनपने दूँगा। उनकी निगाह में शायद मैं जिम्मेदार था। मैं परिस्थितियों को नहीं संभाल सका था। पर मुझे बिल्कुल भी ऐसा कुछ होने की आशंका नहीं थी। ना मुझे कभी इसका कारण पता चल सका। पर अम्मा के अंदर जो चिरकन का खुरदरापन था, उस दिन सामने आया जब शाम को सिम्मी के कमरे में उन्होंने मुझसे कहा, ''जब हम मर जाएँ, हमारी किसी भी लड़की को मत बुलाना''। अम्मा की आँखें लबालब भरीं थीं। चेहरे पर खिसियाहट थी। जो अम्मा कह रहीं थी वास्तविकता उसके उलट थी। अम्मा चाहतीं थीं कि उनके अंतिम समय में उनका सारा परिवार उनके पास रहे। अम्मा क्या कहना चाह रही थीं, यह तो मैं समझ गया पर उसी गंभीर मुद्रा में जवाब देना संभव न था। उनका दु:ख कचोट रहा था। गलती हुई थी। भारी गलती हुई थी। अब अम्मा का पूर्ण स्वरूप कभी सामने नहीं आ पाएगा। पर वातावरण को हल्का बनाने के लिए मैंने कहा, ''बेकार की बात मत करो''।

अम्मा ने रिक्त आँखों से मेरी तरफ देखा। वे जानती थीं, बेकार की बातें कौन कर रहा था। अम्मा की छः संतानों में से कोई भी उन्हें नहीं समझ सका। अम्मा हमारे स्वार्थ का परमार्थ बन कर रह गई थीं।

४९.

जावित्री अस्पताल से सिम्मी का फोन था। मुझे तुरंत बुलाया था। शिशु की गर्भ में ही मृत्यु हो चुकी थी। मुँह से बस इतना निकला, “आ रहा हूँ “। हाथ-पैर काँप रहे थे। अम्मा के कष्ट क्या कभी समाप्त नहीं होंगे?वैसे इसकी आशंका थी। कुछ दिनों पहले विमल आए थे। रात में हम सब बैठ कर बातें कर रहे थे, तब सिम्मी ने आशंका जताई थी कि उसे गर्भ में किसी तरह की हलचल नहीं महसूस हो रही ।मैने उसे फ़ौरन अस्पताल चलने को कहा, लेकिन वो नहीं मानी। बोली, कुछ दिन बाद तो जाना ही है। अम्मा ने कहा था, ”लापरवाही न करो, बच्ची, ”। सिम्मी ने किसी की नहीं सुनी।

अम्मा को लेकर जावित्री अस्पताल पहुँचा। डॉक्टर राजुल त्यागी के चैंबर के पास सिम्मी हमें मिली। रोने की वजह से आँखें बुरी तरह से लाल हो रखी थीं। डॉक्टर ने चैंबर में हमें बुलाया और सारी स्थिति स्पष्ट की। नाड़ी, शिशु की गर्दन में उलझी थी। दम घुटने से शिशु की मृत्यु हो चुकी थी। सर्जरी से उसे बाहर निकालना आवश्यक था वरना सिम्मी के शरीर में जहर फैलने का खतरा था।

सिम्मी को भर्ती कर लिया गया। प्राइवेट वार्ड में मैं, सिम्मी और अम्मा, और हमारे बीच शोक की लहर, उस नवजात के स्वागत के लिए ठाँठें मार रही थी, जिसने संसार की दुर्गति देखने से, वापस लौटना बेहतर समझा। विमल को फोन कर सब बताया। विमल ने कहा वह पहली फ्लाइट से पहुँच रहा है। सिम्मी को दवाइयाँ दी गईं थीं। सर्जरी में अभी वक्त था। मैं रिपोर्ट पढ़ रहा था । मेरी नजर अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट पर पड़ी। रिपोर्ट, दो घंटे पहले की थी, जिसमें गर्भ में एक जीवित भ्रूण का जिक्र था । दुविधा में दिमाग उलझा था। मुझे चाहिए था, उस रिपोर्ट की कॉपी कर, अपने पास रख लेता लेकिन मैंने नर्स को बताया । थोड़ी देर में डॉक्टर राजुल त्यागी भागी-भागी आईं और मुझसे वो रिपोर्ट माँगी। मुझसे

कहा, "इट्स अ टेक्निकल मिस्टेक"। मैं हतप्रभ था। थोड़ी देर में दूसरी रिपोर्ट आई। जिसमें निष्क्रिय भ्रूण का जिक्र था। उसे लाकर फाइल में लगा दिया गया। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ बैठा रहा। आलीशान अस्पतालों की दीवारें बहुत मँहगी होती हैं जो नींव में पड़े काले चिट्ठे औने-पौने दामों में खरीद लेतीं हैं। इस बात को लेकर हंगामा हो सकता था। किंतु मैं सिम्मी, अम्मा और दुख के बीच में बँटा आधा-अधूरा ही था। स्वयं को ढूँढ़ ही नहीं पाता था।

आठ बजे करीब सर्जरी हुई।नर्स ने आवाज दी, "चंद्रकांता सिंह के साथ जो भी हैं, जाकर बच्चे को ले लीजिए"। मेरी हिम्मत नहीं हो रहीं थीं। मैंने कहा, "नहीं, बच्चा नहीं चाहिए"। नर्स ने कहा, "बच्चा तो आप ही को लेना पड़ेगा, हम नहीं रख सकते" ।थोड़ी देर बाद, एक प्लास्टिक की आयताकार टोकरी में सफेद कपड़े में ढका हुआ नन्हा शव मेरे हवाले कर दिया गया। क्या पृथ्वी का वजन, उससे ज्यादा रहा होगा? गोल मटोल, बेहद सुंदर बालक था। उसे दाहिनी करवट रखा गया था। कहीं निष्क्रियता का कोई चिह्न नहीं था। मालूम होता था, निश्चिंत सो रहा है। बस साँसें ही नहीं चल रही थी। इतना स्वस्थ और सुंदर बालक निष्क्रिय पड़ा था या ईश्वर की संवेदना?

जीवन से बड़ा भार उठाए, मैं वार्ड में आया। अम्मा रोने लगीं। मैं भी रोने लगा। माँ अचेत पड़ी थी, बालक को एक नजर भी ना देख पाई। सिम्मी का एक कपड़ा लिया, बालक पर डाल दिया ।माता-पुत्र के क्षणिक संबंध का कुछ तो सार हो। माँ का स्पर्श, माँ की महक ही बालक की अंतिम विदाई का उपहार थी। गाड़ी लेकर सुनील आए थे। टोकरी को गोद में लेकर मैं पीछे बैठा, सारे रास्ते रोता गया। हिचकियाँ बँधने लगीं। जीवन में नहीं सोचा था, इतने नन्हे बालक की अंतिम यात्रा का एकाकी गवाह बनूँगा।

श्मशान पहुँचने पर, सुनील मेरे साथ अंदर तक गए। वहाँ के लोगों को बुलवाया और एक पेड़ के नीचे गड्ढा खुदवाया। इस गड्ढे में धीरे से बालक को लिटा दिया। नींद में खलल ना हो। अम्मा कहतीं थीं, आदमी का जियरा बहुत मजबूत

होता है। मोह, बस एक साँस भर का ही तो होता है वर्ना कौन कलुषित पाषाण-हृदय प्राणी, किसी नवजात को, जमीन में दो हाथ नीचे दबा, उसी जमीन पर पैर रख पाएगा? मिट्टी अपने हाथों से डाली। इन हाथों की तिर्यक रेखाओं के सफर में वे नन्ही मुट्ठियाँ भी आ गईं थीं जिन्होंने मेरी रेखाओं को कस कर भींच लिया था और आगे सफर पर जाने से इंकार कर दिया। मिट्टी भरने के बाद उन लड़कों ने दुरमुट से मिट्टी को अच्छे से दबा दिया और ऊपर बड़े-बड़े पत्थर रख दिए। मैंने कहा, ''यह क्यों''। सुनील ने धीरे से कहा था, "कोई जानवर खोद कर शव निकाल न ले"। मैं सहम गया। भूख का साम्राज्य कितना अभिशप्त है। श्मशान में भी जीवित है ।मैंने लड़कों से कहा, "और पत्थर ले आओ"। पूरी तरह पत्थर से ढँकने के बाद, मैं वहाँ से हटा। सुनील ने कहा, "इन्हें कुछ पैसे दे दीजिए"। मैने उन लड़कों की तरफ देखा, सब बारह से पंद्रह साल की उम्र के बीच के थे। संसार में मानव-विकास की गाथा से किताबें भरी पड़ी हैं। श्मशान, जीवन और मृत्यु को एक साथ पाल रहा है। कोई भेदभाव नहीं। अपने सत्कर्मों के पुण्य- फल पर लहालोट मानव! आ। आ,और आकर देख, तेरी विकास-यात्रा के भव्य स्वागत के लिए, पुष्प-गुच्छ, श्मशान, अपनी चिताओं से उगा रहा है। मैंने पाँच सौ रुपए सुनील को थमा दिए और गाड़ी की तरफ चल दिया। मैंने उस बालक को अलविदा नहीं कहा, उस दिन भी नहीं, आज भी नहीं, कभी नहीं।

५०.

लगभग सवा साल बाद, वही रूप, वही शारीरिक बनावट, वही रंग लेकर, शिवि आया। कोई विश्वास नहीं करता, किंतु इस संसार में एकमात्र मैं ही था, जिसने उस बालक को अपनी गोद में उठाया था, अपने सीने से लगाया था। इस दुनिया में एकमात्र मैं था, जिसके साथ उसने अपनी अंतिम यात्रा तय की थी। मैं कैसे पहचानने में गलती कर सकता हूँ? पी.जी.आई के मैटर्निटी वार्ड में १९ जनवरी २०१५ को वह वापस सिम्मी की गोद में लौट आया। विधि का विधान ही ईश्वर की क्रीड़ास्थली है। इत्तफाक था कि उसके पैदा होते ही नर्स ने उसे सबसे पहले मेरी ही गोद में थमाया। अम्मा ने कहा, " यहाँ लाओ, हमको दो"। उसे गोद में लेते ही अम्मा बोलीं, "जन्म सुफल होइ गय"। सिम्मी, विमल से किसी बात पर नाराज थी। विमल को नहीं बुलाया था, किंतु मेरा मन इस बात के लिए कतई सहमत नहीं था, इसलिए मैंने विमल को बुलाया ताकि अपने पहले बच्चे को, पहले दिन पितृच्छाया की अनुभूति दे सके। विमल पी.जी.आई के पास ही होटल में रुके थे। मैंने उन्हें अस्पताल बुलाया, बहाने से शिवि को बाहर लेकर आया और विमल की गोद में थमा दिया। नवजीवन का आगमन, अंशमात्र भी विषाद युक्त ना हो, मेरा आशय बस इतना ही था। नवजात शिशु को अधिक देर बाहर रखना ठीक नहीं था। विमल से उसे लेकर, मैं वापस, सिम्मी के कमरे में लौट आया। उसका नामांकरण भी मैंने ही किया, एकार्णव।

सिम्मी ने शिवि का मुंडन विंध्याचल में कराने का निश्चय किया । बॉबी की गाड़ी से ही गए थे। दर्शन करने पहुँचे तो अपार भीड़ थी। कतार में दूर से ही दर्शन करवाया जा रहा था ।गर्भ गृह में नहीं जाने दिया जा रहा था। मैं जब आगे पहुँचा, वहाँ खड़े एक व्यक्ति ने धीरे से पूछा, " अंदर जाना है ?पूरे परिवार को दर्शन करा देंगे, ५०० ₹ में"। मैंने उसकी हथेली पर ५०० ₹ रखे और पूरे परिवार

के के साथ अंदर दर्शन के लिए प्रवेश किया । भगवान के दर्शन में भी माया की ही माया है। कौन यहाँ मुक्ति के लिए आता है? मुक्ति से मुक्ति मिले, इसी प्रार्थना के साथ श्रद्धा पुनि-पुनि मानव-योनि की आकांक्षी है। इसी आकांक्षा ने ईश्वर को भी लेन-देन की कतार में खड़ा रखा है। बिना रिश्वत ईश्वर का सामीप्य महापाप है। खबरदार ! ईश्वर को सब जगह मत ढूँढ़िए। वह थक चुका है। मंदिर में ही है, वहीं आराम कर रहा है। यही वर्तमान का आध्यात्म है। सूक्ष्म पर स्थूल की विजय। पुण्य पर पाप की जय। कबीर की उल्टी वाणी को हमने पकड़कर सीधा कर दिया, अब पत्थर और पहाड़ दोनों पूजे जाते हैं। पत्थर पूजने पर छोटे हरि और पहाड़ पूजने पर बड़े हरि मिलते हैं। छोटे हरि फुटकर वालों के लिए बड़े हरि टकसाल वालों के लिए।

वहाँ काफी पैदल चलना पड़ा था। वहाँ से लौटने के कुछ दिन बाद ही अम्मा को चलने में दिक्कत होने लगी। आशा हॉस्पिटल के अस्थि-विशेषज्ञ डॉक्टर देवेश मौर्य को दिखाया। उन्होंने दवाइयाँ दी और कहा इन दवाइयों से ठीक हो जाएँगी। नहीं हुईं। नौबत यहाँ तक आई कि वह सहारा लेकर ही चल पातीं। तब डॉक्टर तिवारी ने डॉक्टर यू.के. जैन को दिखाने की सलाह दी। एक बार फिर डॉक्टर तिवारी ही हमारे तारणहार बने। डॉ जैन ने एक्स-रे देखकर कहा, " हो सकता है घुटनों की कटोरियाँ बदलनी पड़ें। दो हड्डियों के बीच अंतर बढ़ चुका है "।फिर भी उन्होंने पंद्रह दिन की दवाइयाँ दी और पैरों के लिए व्यायाम बताए। गर्म पानी में नमक डाल, उसमें तोलिया निचोड़कर, उससे सिकाई करने को भी कहा। तीन-चार दिन में ही फ़र्क दिखने लगा। पंद्रह दिन पहले अम्मा को स्ट्रेचर पर डॉक्टर के चेंबर में ले जाना पड़ा था, पंद्रह दिन बाद अम्मा अपने पैरों पर चलकर गई थीं। डॉक्टर साहब की दवाइयों से ज्यादा उनके बताए हुए व्यायाम कारगर सिद्ध हुए। डॉक्टर स्वयं, इस बात पर जोर देते कि व्यायाम नियमित तौर पर किया जाए। अगली बार वो सारे व्यायाम करके दिखाने को कहते। ना बताने पर मरीज और उसके साथ वाले को डॉक्टर की डाँट सुननी पड़ती। अम्मा से भी डॉक्टर साहब ने सारे व्यायाम करके दिखाने को कहा। कुछ व्यायाम अम्मा नहीं बता पाईं। मुझे डाँट पड़ी। हालाँकि अम्मा को मैं सारे

व्यायाम करवाता था किंतु जबरदस्ती करनी पड़ती थी। अम्मा को बताना पड़ता तब वह करती थीं शायद इसलिए डॉक्टर के सामने सारे व्यायाम नहीं बता पाईं।

कई महीने तक डॉक्टर जैन की दवाइयाँ और उनके व्यायाम चलते रहे।अम्मा बिल्कुल सामान्य तौर पर चलने-फिरने लगीं। सीढ़ियाँ चढ़तीं। टहलने जातीं और अपने सारे काम कर लेतीं। अम्मा को किसी भी काम के लिए किसी पर भी निर्भर रहना बिलकुल नहीं पसंद था। कितना मना करने पर भी वह अपने और पापा के सारे कपड़े खुद धोतीं। इस बात को लेकर उनसे कई बार मेरा झगड़ा भी हुआ पर अम्मा, अम्मा थीं। कोई भी हो, अम्मा अपने सिद्धांतों से भी कभी समझौता नहीं कर पाईं। कुछ लोगों को यह दंभ या अहंकार प्रतीत होता था। अहंकार था। अम्मा में कूट-कूट कर भरा था, किंतु स्वयं को अपने सीमित दायरे में रख, सच से आँख मिलाने के साहस का अहंकार था।अपने संसाधनों से बाहर पैर पसारने की कभी कोई कोशिश नहीं की। हम जो कुछ लाकर देते, चुपचाप रख लेतीं। एक से एक मँहगी और सुंदर साड़ियाँ उन्हें लाकर दीं किंतु वे हमेशा साधारण साड़ी ही पहनतीं। कभी-कभी बहुत क्रोध आता था, झगड़ा भी होता था किंतु वह नहीं मानतीं। हाँ, कभी-कभी अपने मन से, यदि हुआ, तो वो कोई अच्छी साड़ी निकाल कर पहनतीं। जब तक रहीं अपने चुनाव, अपनी पसंद, नापसंद पर किसी और को आधिपत्य स्थापित करने नहीं दिया।

अम्मा को कार का बहुत शौक था, लेकिन कभी व्यक्त नहीं किया। उनके लिए एक बार कार बुक भी कराई थी। लोन भी पारित हो गया था किंतु फिर घटना-चक्र कुछ इस कदर तेजी से बदला, बुकिंग निरस्त करनी पड़ी। अम्मा के लिए कार नहीं खरीद पाया किंतु अम्मा को कहीं भी आना-जाना होता उनके लिए कार का इंतजाम अवश्य कर देता। बॉबी जो था। उसने कभी भी ना नहीं किया। रात-दिन, सुबह- शाम जब भी जरूरत पड़ती, कहीं भी जाने के लिए गाड़ी भेज देता।

५१.

डॉक्टर ने कहा, “आपके यहाँ सोना आया है”। १८ अप्रैल २०१८ को महालय का जन्म हुआ। उसी अस्पताल में, जहाँ युगाँधर पैदा हुआ था। महालय का नामांकरण भी, उसके जन्म से पूर्व, मैने ही किया था। युगाँधर, एकार्णव और महालय, तीनों नाम मेरे ही द्वारा चुने गए थे ।अकस्मात। किंतु तीनों नाम की सार्थकता और सामंजस्य, औसतन एक ही सार में गर्भित है ।पता नहीं, क्यों हुआ और कैसे हुआ? किंतु भविष्य इन तीनों नाम के प्रयोजन अवश्य ढूँढ़ लेगा। इस बार भी सिम्मी ही दौड़कर मेरे पास आई और बोली, ” संदीप भैया, बहुत सुंदर लड़का है सारे फीचर्स बने-बनाए हैं”।

अम्मा और पापा बेहद प्रसन्न थे। युग- महालय की जोड़ी संपूर्ण हो गई। महालय युगाँधर का संपूरक ही था। युगाँधर जितना शांत और सरल था, महालय उतना ही चंचल और शरारती ।महालय पर काफी कुछ शिवि की छाप थी। तीनों संलग्न थे। सबसे अजीब बात थी शुरुआती दौर में शिवि, युगांधर की देखा-देखी मुझे “पापा” बुलाता और विमल को “अंटा” ।बच्चों के शब्दकोश काफी प्रायोगिक एवं विस्तृत होते हैं ।उनके नवीनतम शब्दों का संस्करण, अर्थ- विश्लेषण उनकी मुस्कुराहटों की गहराई में निहित होता है, जहाँ तक बड़ों का पहुँचना नामुमकिन होता है क्योंकि बड़े अपने शब्दों को लेकर काफी संकुचित, चौकन्ने और आशंकित होते हैं। उनके शब्दकोष सीमित, संभ्रांत और अप्राकृतिक होते हैं।

५२.

दीदी का फोन आया था। सावित्री बुआ के तीसरे बेटे, गुड्डू, के लीवर में गाँठ थी।कुसुम जीजी की दूसरी बेटी, नमिता से पता चला। नमिता उन दिनों राम मनोहर लोहिया अस्पताल में ही थी, जहाँ गुड्डू का इलाज चल रहा था। बबलू को फोन किया तो पता चला, कुछ दिनों में उसकी सर्जरी होने वाली है। जिस दिन सर्जरी होनी थी, उस दिन सुबह बबलू पी.जी.आई आए थे। उन्हीं के साथ मैं राम मनोहर लोहिया अस्पताल गया था। सर्जरी शुरू हो चुकी थी । मैं ऑपरेशन थिएटर के बाहर लॉबी में खड़ा था। गुड्डू की पत्नी वहीं सामने बैठी रो रही थी। गुड्डू का बेटा उसे समझाने का प्रयास कर रहा था। कितना अजीब सा लग रहा था ! गुड्डू का असली नाम बृजेंद्र था। उसे कभी किसी चीज के लिए संजीदा नहीं देखा था। हमेशा हँसता रहता था । स्ट्रेचर लेने से मना कर दिया था, अपने पैरों पर चलकर, ऑपरेशन थिएटर गया था । घर में बोल कर आया था, ''मैं वापस लौट कर आऊँगा''। वह भी मेरी तरह घर पर ही बच्चों को पढ़ाता था। दो बेटे थे। उसकी पत्नी को साँत्वना देने के लिए मैंने कहा, ''रोइए नहीं ।ऑपरेशन सफल होगा। इस अस्पताल में बड़े-बड़े ऑपरेशन हुए हैं''। कितना आसान होता है, किसी को साँत्वना देना? एक औपचारिकता ही तो निभानी होती है। मुझे नहीं आता। मैं सामने वाले के दुःख में बहने लगता हूँ। औपचारिकता के मुखौटों से मुझे बेइंतहा नफरत है। किसी के भी दु:ख में यदि शामिल भी होता हूँ तो अपने मौन में ही सामने वाले का दुखातिरेक महसूस कर, आत्मसात कर लेता हूँ। शब्दों से नहीं खेलता। अपनी सहानुभूति की लफ्फाजी थोप कर, उनका दु:ख बढ़ाने की फितरत नहीं है मेरी, इसलिए असामाजिक हूँ। शाम हो गई, फिर रात । ऑपरेशन फिर भी चल रहा था। रात आठ बजे मुझे लौटना था, मैं लौट आया।

लौटने के कुछ घंटे बाद, बबलू का फोन आया। गुड्डू को ऑपरेशन थिएटर से बाहर ले आया गया था। मन में संतोष हुआ किंतु थोड़ी देर बाद पता चला गुड्डू के पेट में पानी भर रहा है इसलिए उसे वापस ऑपरेशन थिएटर ले गए हैं। सुबह, सुधा दी का फोन आया, उन्होंने गायत्री बुआ से बात की थी। गुड्डू की हालत काफी गंभीर हो चुकी थी। सुबह आठ बजे के करीब आलोक का नम्बर मिलाया। पता नहीं किसने फोन उठाया। "भैया चले गए" बस इतना सुनाई दिया और प्रतिक्रिया का आक्रोश आँसू बनकर बह निकला। गुड्डू चला गया, यकीन नहीं हो रहा था। कमबख़्त, जिंदगी सोचने का मौका भी नहीं देती। पलकें भी नहीं झपक पातीं और दृश्य बदल जाते हैं। अम्मा को पता चला, अम्मा के मुँह से बस " हे! भगवान" निकला। थोड़ी देर शांत बैठी रहीं फिर बेचैन हो उठीं। बोलीं", हम जाएँगे"।

मैं, अम्मा, पापा और सुधा दी आलमबाग, बुआ के घर पहुँचे। पहले कई बार इस घर में आ चुका था। गुड्डू की शादी में उसके कपड़े खरीदने, मैं ही साथ गया था।शादी में उसे तैयार भी मैंने किया था। पहले, आलमबाग से जब भी गुजरता, कभी-कभी गुड्डू चौराहे पर दिख जाता था।मैं मुस्करा कर रह जाता था, उसके खिलंदड़ अंदाज पर। आज सब शांत था। घर अधूरा लग रहा था। फूफा बाहर, शांत ,इधर-उधर टहल रहे थे। किसी से कुछ नहीं बोल रहे थे। दुःख की अनुभूति, दुखी होने के वहम से बहुत बड़ी होती है। चीर कर रख देती है। एक पिता का कंधा दस बेटों की जिम्मेदारी उठाने के बावजूद तना रहेगा किंतु एक जवान बेटे की मृत्यु उस कंधे को झुका देती है। फूफा ने दो- दो जवान बेटों की अर्थी को कंधा दिया। उस हृदय की वेदना का परिचय इतना क्लिष्ट है कि घटनाएँ दबे पाँव, मुँह फेर लेतीं हैं। गुड्डू का पार्थिव शरीर घर पहुँचते ही हाहाकार मच गया। दु:ख, रूप बदल-बदल, कब किस घटना का मंचन करेगा, क्या कोई जानता है? यह मेरे साथ नहीं होगा, यह विश्वास मूर्खतापूर्ण है और यही सुख है। ईश्वर के अंदर खेल-खेलने की वैसी ही क्रूरता है जैसे किसी अबोध शिशु में। कुछ भी तोड़कर फेंक सकता है, कभी भी, कहीं भी। बस, अंतर, मात्र

रोने का है। शायद। शायद, ईश्वर रोता है । नहीं। पता नहीं। कह नहीं सकते। हो सकता है। कभी उसे पुनः उस खिलौने की आवश्यकता हो तो रोता हो, पर अबोध शिशु अपने द्वारा किए गए नुकसान की प्रतिक्रिया के भय से अवश्य रोता है। मानव मात्र का हँसना- रोना ही ईश्वर का मनोरंजन है। देता जाता है, देता जाता है। लो, और लो, लेते जाओ। यह पिता है, यह माता है, यह बंधु है, यह भगिनी है, यह सखा है । पत्नी भी लो, बच्चे भी लो। संसार की अनुरक्ति भी लो। फिर एक रूठे बच्चे की तरह कहता है, "लाओ, मैंने जितनी टॉफियाँ दी थीं, वह सब वापस करो"। वापस करना पड़ता है, कोई चारा नहीं । उसकी जोर- जबरदस्ती की शिकायत कहाँ करें? सब कुछ लौटा कर, उसके पाले में लौटना पड़ता है। फिर वह नए खिलौने को भेजता है, जाओ, अब तुम खेलो। भगवान और इंसान के बीच, पृथ्वी के प्रांगण में खेली जाने वाली क्रूरतम कीड़ा।

उस शाम जलती चिता में, गुड्डू की कथा समाप्त। पर उसकी नींव के तीन अध्याय अब भी अपूर्ण थे, जो शायद गुड्डू की कहानी को जीवित रखें। अब जब भी आलमबाग चौराहे से गुजरता हूँ, सीधे देखता हूँ, दाएँ- बाएँ नहीं। तलाशने को वहाँ कुछ नहीं । हाहाकार, अपने शोर से बहुत बड़ा होता है। शोर, बस सांकेतिक होता है। हाहाकार जो हृदय में उबलता है, उसकी आँच एक पूरे कालखंड को भस्म कर देती है, राख उसके हिस्से आती है, जिस जमीन पर वो कालखंड उगा था, बाकी सब, कोलाहल का दायित्व ही होते हैं।

५३.

२०१९। दिसंबर महीने के आखिरी दिन थे। एक रात मैंने सपने में देखा, एक जीप, हमारे घर के गेट के अंदर घुसती है और ड्राइविंग सीट की बगल वाली सीट पर से गुड्डू उतरता है। सपना यहीं टूट जाता है। अगली शाम, सिम्मी से बात करते समय, सिम्मी बताती है कि अम्मा के दाहिने सीने में गाँठ है। वहाँ कभी-कभी दर्द उठता है, मवाद भी रिसती है। सिम्मी ने कहा, उसने मुझे पहले भी बताया था किंतु मुझे याद नहीं आ रहा था ।क्यों? अम्मा को छोटी से छोटी चीज मुझे याद रहती है। कैसे भूल गया? यह खबर सुनने के बाद जो भय मन में व्याप्त हुआ, वह बिल्कुल बचपन वाला था। अम्मा को खो देने का डर। अंदर तक काँप रहा था, मैं ।बिल्कुल वैसे ही जैसे कलकत्ता में अम्मा की तबीयत खराब होने पर काँप रहा था।

उन दिनों अम्मा बेहद कमजोर थीं। रात में काम करते-करते अचानक चक्कर आने लगा । जमीन पर लेट गईं। कहने लगीं, ''अब हम न बचब''। मैं रोने लगा। चंद्रा आंटी को पता चला तो वो दौड़ी आईं। अम्मा को गोद में उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया ।सामने कमरे में पड़ी छोटी खटिया पर चादर से स्वयं को सिर तक ढँक कर रोए रहा था और रबड़ की गाय के अंदर जमा किए गए चार-पाँच सिक्के बार-बार गिने जा रहा था। क्या पता कब जरूरत पड़ जाए? जरूरत नहीं पड़ी। चंद्रा आंटी के घरेलू उपचार से अम्मा को काफी राहत मिली ।उस दिन से अम्मा का सिर भी ,यदि दर्द होता, मन आशंकाओं से भर उठता था।

मैंने सिम्मी से कहा, "अम्मा को किसी डॉक्टर के पास नहीं ले जाऊँगा ।दवा खाकर आजिज आ चुकी हैं"। पर सिम्मी ने कहा, " एक बार दिखा लीजिए"। डर बहुत लगता था ।जब भी अम्मा को लेकर डॉक्टर के पास जाता, मन, अनजान आशंकाओं से भरा रहता । अम्मा की जिजीविषा अप्रतिम थी। उनका मुझ पर विश्वास अतुलनीय था।यह विश्वास कहीं टूट न जाए, इसकी शंका

हमेशा बनी रहती ।मेरे साथ, कहीं भी, वो नितांत निश्चिंत होकर जातीं ।इसी के सापेक्ष उनके साथ रहने पर मन में दृढ़ता रहती। वो मेरा विश्वास, मेरी शक्ति और मेरा यथार्थ थीं।भले ही कुछ ना करतीं, उनकी उपस्थिति मात्र से ही मैं निश्चिंत रहता। बाहर भी कहीं होता तो इस बात का संतोष रहता घर पहुँचते ही अम्मा के दर्शन होंगे। इसमें कोई दो राय नहीं, वह मेरे लिए ईश्वर से ऊपर हो चुकी थीं और इस दुविधा का प्रायश्चित मेरी पूजा होती।

अगले दिन, मैंने, अर्चना के साथ, अम्मा को स्त्री रोग विशेषज्ञ, डॉक्टर वरदा अरोड़ा के पास भेजा। मन, स्थिति को सरलतम परिपेक्ष में देखना चाहता था, किंतु वास्तविकता स्थिति को खींच ले गई अपने पाले में। उन्होंने एक मलहम और कुछ दवाइयाँ दीं। किंतु साथ में एफ.एन.ए.सी जाँच के लिए भी लिखा।

उस दिन, अम्मा ने दवाइयों की पहली खुराक ही खाई थी। रात भर सो नहीं पाईं। रात भर अम्मा दस्त और उल्टियों से परेशान रहीं। कहने लगीं, “अब हम मर भी जाएँ, तब भी ये दवा नहीं खाएँगे”। मैंने वह दवाइयाँ बंद कर दीं और एफ.एन.ए.सी जाँच करवाने का फैसला कर लिया।

प्रतिभा लखनऊ में ही थी। माही डायग्नोस्टिक्स में जाँच हुई। रिपोर्ट अगले दिन शाम सात बजे तक मिलनी थी किंतु ऑनलाइन, दोपहर बारह बजे तक देखी और डाउनलोड की जा सकती थी। उस दिन बुधवार था। मैं सबसे नीचे कमरे में, बार-बार लॉग-इन कर, रिपोर्ट देखने का प्रयास कर रहा था। ठीक बारह बजे रिपोर्ट अपलोड हुई। रिपोर्ट देखते ही मैं सन्न रह गया। हाथ-पैर सुन्न पड़ते जा रहे थे। हमेशा से अम्मा की मेडिकल रिपोर्ट साँत्वना देती, सुकून देती ।इस बार नहीं। पैरों के नीचे जमीन नहीं, धँआ-धुँआ था ।कुछ कहने, सुनने, सोचने, समझने, का सामर्थ्य नहीं था। दिमाग एकदम शून्य हो गया। बस सामने लिखा, शब्द, मानो दिमाग को दबोच, उसे धीरे-धीरे मार रहा था। रिपोर्ट में बस एक ही शब्द लिखा था “पॉजिटिव “। दु:ख, पीड़ा, कष्ट मनुष्य को क्या सचमुच स्वार्थी बना देतें हैं? ‘मैं’ और ‘मेरा’ का भाव ‘क्यों’ पर टाँग, वह स्वयं को

इतना समेट लेता है कि स्वयं को संसार का सबसे दु:खी प्राणी मान लेता है। यही सच की विकरालता है। तात्कालिक समय, उसके अंशमात्र को ही संपूर्ण मान कर संतुष्ट हो जाता है।

करीब एक घंटा निःशब्द बैठे रहने के बाद, मैंने प्रतिभा को आवाज दी। प्रतिभा उस समय सिम्मी से फोन पर बात कर रही थी । मैंने उसे नीचे आने को कहा। प्रतिभा नीचे आई तो मैंने उसे रिपोर्ट के बारे में बताया । पी.जी.आई जाकर सारी प्रक्रिया समझकर आने को कहा। एक घंटे में प्रतिभा सारी जानकारी लेकर आई । सुबह तीन-चार बजे से वहाँ भीड़ लग जाती थी। पहले नवीन ओ.पी.डी में जाकर पंजीकरण करना होगा। उसी दिन शाम को डॉक्टर वरदा अरोड़ा से अम्मा को पी.जी.आई रेफर कराया।

यहाँ से अम्मा की अनंत-यात्रा शुरू हुई। अकेले। किसी को साथ नहीं लिया।

बृहस्पतिवार,सुबह साढ़े तीन बजे ही मैं पी.जी.आई की नवीन ओ.पी.डी में था। मेरे आगे, कतार में चार-पाँच लोग और थे। धीरे-धीरे कतार बढ़ती जा रही थी। करीब साढ़े छः -सात बजे पंजीकरण वाली खिड़की खुली। मरीज की समस्या सुनने के बाद, उन्होंने मुझे एंडोक्राइन सर्जरी वार्ड में जाने को कहा। पंजीकरण की फाइल लेकर, मैं प्रथम तल पर एंडोक्राइन सर्जरी वार्ड के सामने पहुँचा। वहाँ पहले ही लंबी कतार लगी थी । उन दिनों कोरोना की शुरुआत थी। लोग मास्क लगाए, भरसक दूरी बरतने का प्रयास कर रहे थे। नंगी आँखों में उम्मीदें, हताशा, भय और शंकाएँ भटक रहीं थीं। अस्पताल की दीवारों पर सर मार रहीं थीं। मुक्ति के लिए। कितनी शांत उद्विग्नता थी, जो प्रश्नों का लिहाज भी कर रही थी और निवारण की खोज के लिए यात्रा के दुर्धर्षों को चुनौती भी दे रही थी। देश के अलग-अलग हिस्सों की आशाएँ पूरे पी.जी.आई परिसर में बिखरी पड़ी रहती। बच्चों के रुदन से कुनमुनाती सुबह को सुरक्षाकर्मी चेतावनी देने लगते हैं। फाइलों, झोलों और मरीजों की फसल सी उगी रहती है। डॉक्टर,

नर्स, सेवाकर्मी, सफाईकर्मी अपने-अपने मोर्चों पर तैनात। सब इन्हीं के भरोसे हैं। करीब आठ, साढ़े-आठ बजे एंडोक्राइन सर्जरी वार्ड खुला।

फ़ाइलें जमा करने की होड़ मच जाती है। सबको जल्दी है। इलाज की। कष्ट निवारण की। अस्पताल से छुट्टी की, मगर पी.जी.आई को कोई जल्दी नहीं। सबसे कहता है, मुझसे मिलने आए हो। इत्मीनान रखो। आराम से मिलो। सबसे मिलता है। कोई मिलकर प्रसन्न है, कोई हताश है, कोई बदहवास। परिसर से गेट तक भावनाओं की लंबी कतारें हैं।

मैंने जब फाइल जमा की उन्होंने पूछा, " मरीज कहाँ है"? मैंने कहा, "घर पर हैं। पास ही में घर है। बुला लूँगा"। उन्होंने कहा, " बुला लीजिए"। घर पर प्रतिभा को फोन कर अम्मा को साथ लाने को कहा। बॉबी को पहले ही घर पर गाड़ी भेज देने को कहा था। करीब नौ बजे प्रतिभा, अम्मा को लेकर पी.जी.आई पहुँची। मास्क लगाए, अम्मा, धीरे-धीरे आ रहीं थीं।उस मास्क के पीछे सिर्फ अम्मा ही नहीं,समाज का एक हिस्सा था। आँखों की गतिशीलता स्वयं को तलाश रही है, इस भीड़ में। भीड़! जहाँ अम्मा भी रिक्त रहतीं, मैं भी। उनकी रिक्त आँखों की इबारत पढ़ने का साहस मुझमें नहीं था।

दस बजे करीब, डॉक्टरों ने आना शुरू किया। ग्यारह बजे अम्मा के नाम की गुहार हुई, " चंद्रावती सिंह"। जिस चेंबर में हमें जाना था, अटेंडेंट ने इशारे से बताया। मैं, प्रतिभा और अम्मा अंदर गए। अंदर एक रेजिडेंट डॉक्टर थीं। अम्मा की फाइल देख रहीं थीं। पूछा, "क्या दिक्कत है"? मैंने जैसे ही बोलना चाहा, डॉक्टर ने कहा, "आपको बोलने की बहुत जल्दी है, मरीज को बोलने दीजिए" ।मैंने जैसे ही जवाब देने को प्रयास का प्रयास किया, उन्होंने कहा, "आप बाहर जाइए"। मैं चुपचाप बाहर आ गया। थोड़ी देर में फिर मुझे बुलाया गया।रेजीडेंट डॉक्टर ने अम्मा से कहा, "आपको स्तन कैंसर है"। डॉक्टर की स्पष्टवादिता से मैं एकदम हड़बड़ा गया। मैं अम्मा का चेहरा देखने लगा। कोई प्रतिक्रिया नहीं। अम्मा को सुनाई नहीं दिया था। भगवान का शुक्र है। यदि अम्मा को पता चल

जाता तो वह बुरी तरह टूट जातीं। मानसिक त्रास ही उनकी जान ले लेता। रेजिडेंट डॉक्टर हमें अंदर के चेंबर में वरिष्ठ डॉक्टर से मिलवाने ले गईं। डॉक्टर एम.सबारत्नम, एंडोसर्जन, बेहद जिंदादिल और हँसमुख व्यक्तित्व। अम्मा को देखते ही बोले, "माताजी, हम आपका एक छोटा सा ऑपरेशन करके सीने की गाँठ निकाल देंगे। चिंता मत कीजिए"। दक्षिण का होने की वजह से, उनके स्वर में वहाँ का पुट अवश्य था किंतु उनकी हिंदी सुसंस्कृत थी। फिर उन्होंने कहा, ''माता जी घबरा तो नहीं रही"? मैंने कहा, "नहीं, वो एक बहादुर महिला हैं, उनसे ज्यादा मैं घबराता हूँ"। डॉक्टर हँसे और रेजीडेंट डॉक्टर से कहा, "इन्हें सोमवार की तारीख दे दो"। फिर हमसे मुखातिब होकर बोले, "शनिवार तक सारी जाँचें करवा कर, शनिवार को इन्हें भर्ती कर दीजिए। सोमवार को इनका ऑपरेशन कर दिया जाएगा"। अद्भुत था। जिस पी.जी.आई में लोग महीनों क्या, साल-साल इंतजार करते थे, वहाँ दो दिन के अंदर सर्जरी की तारीख मिलना, किसी अजूबे से कम न था। करीब पंद्रह-बीस जाँचें लिखी गईं थीं। उस दिन खून से संबंधित जाँचों के लिए नमूने नहीं दे पाए क्योंकि खून के नमूने सुबह सात, साढ़े-सात बजे लिए जाते हैं। बाकी जाँच के पैसे जमा कर, अगले दिन की तारीख ले वापस आ गए। अम्मा ने एक-दो बार अवश्य पूछा, "क्या बीमारी है"? मैंने कहा एक गाँठ है, दाहिने सीने में, उसे ऑपरेशन से निकाल देंगे। पापा को भी यही बताया था।आज पापा जब इसे पढ़ रहे होंगे,पता नहीं क्या प्रतिक्रिया होगी, पर अपने विवेक के अनुसार जो मुझे सही लगा था, मैंने किया। अपनी बहनों को छोड़ कर और किसी से इसकी कोई चर्चा नहीं की। बीमारी से अधिक घातक, बीमारी की प्रतिक्रिया होती है।

अगले दिन, सुबह साढ़े-सात बजे, फिर अम्मा को लेकर पी.जी.आई पहुँचे। खून की जाँच के लिए वही तय वक्त था। वहाँ, पहले ही, बहुत लंबी कतार थी। अम्मा और प्रतिभा को एक जगह बिठाकर, मैं कतार में लग गया। करीब डेढ़ घंटे बाद हमारा नंबर आया। उसके बाद कई और जाँचें हुईं। एक्स-रे, अल्ट्रासाउंड, मैमोग्राफी, सीने के ऊतक निकाल कर उसको जाँच के लिए

भेजा गया, जो एक तरह की छोटी-मोटी सर्जरी ही थी, ई.सी.जी, ईको, पी.एफ.टी। पी.एफ.टी की जाँच पूरी नहीं हो पाई। जो व्यक्ति उस जाँच के लिए बैठा था, नितांत रुखे स्वभाव का था। एक यंत्र था, जिसमें अम्मा को पूरी तेजी से साँस छोड़नी रहती, फिर खींचनी रहती। अम्मा उसे सही तरीके से नहीं कर पा रहीं थीं। वह व्यक्ति चिल्लाने लगता। अंततः उसने कहा, "आज नहीं हो पाएगा, फिर किसी दिन लाइए"। मैंने कहा, " सोमवार को इनकी सर्जरी है ।कल इन्हें भर्ती होना है। उसने कहा, "तो हम क्या करें, जब यह सही से नहीं कर पा रहीं हैं"। हम वापस चले आए। लौटते-लौटते शाम हो गई थी। सारी जाँचें पूरी नहीं हो पाई थीं इसलिए शनिवार को भर्ती करने का सवाल ही नहीं था। उस दिन प्रतिभा झाँसी लौट गई।

किंतु रविवार को सुबह पी.जी.आई से फोन आया और पूछा गया कि हमने चंद्रावती सिंह को शनिवार को भर्ती क्यों नहीं करवाया? मैंने उन्हें बताया पी.एफ.टी टेस्ट नहीं हो पाया है इसलिए हमने नहीं भर्ती कराया। उन्होंने कहा, सोमवार को उन्हें भर्ती कर दीजिए सारे टेस्ट वहीं हो जाएँगे।

सोमवार, सुबह अम्मा को लेकर पी.जी.आई पहुँच, एण्डो सर्जरी विभाग में जाकर सारे कागज जमा किए। पैसे चूँकि कार्ड से ही जमा करने थे, कई बार चौथी मंजिल का चक्कर लगाना पड़ा। तब जाकर अम्मा को प्राइवेट वार्ड मिला। दिनभर उनकी अलग-अलग जाँचें चलती रहीं। रात में भी उनके रक्तचाप, दाँतों की जांच हुई। फिर आखिरी में डॉक्टर ने हीमोग्लोबिन ग्लूकोज स्तर के लिए सैंपल बाहर ले जाने को कहा। मैंने कहा, " मैं अकेले अम्मा के साथ हूँ और कोई है नहीं"। डॉक्टर सबा ने अपने एक आदमी को भेजा जाँच के लिए। जाँच में ग्लूकोज का स्तर चार सौ तक था ।डॉक्टर ने पूछा, " क्या इन्हें मधुमेह है"? मैंने कहा, "नहीं"। डॉक्टर ने अम्मा को इंसुलिन दिलवाया।

रात के खाने के बाद,अम्मा को सर्जरी होने तक खाली पेट रहने को कहा गया था। कुछ दवाएँ थीं, जो सर्जरी के तीन-चार घंटे पहले देनी थी। उसके बाद कुछ

नहीं, पानी भी नहीं। रात में मुझे, नर्स बुलाकर डॉक्टर फरहीन के पास ले गई। डॉक्टर फरहीन ने मुझे एक फॉर्म देकर, भरने को कहा । फॉर्म में सर्जरी को हाई रिस्क श्रेणी में रखा गया था। मेरे हाथ-पैर फूल गए ।मैंने सिम्मी को फोन कर यह बताया और उससे कहा, "मैं फार्म पर दस्तखत नहीं कर रहा हूँ"। मैंने डॉक्टर फरहीन को फॉर्म लौटाते हुए कहा, "मैं उस पर दस्तखत नहीं करूँगा"। डॉक्टर फरहीन ने डॉक्टर सबा को फोन कर इसकी जानकारी दी ।डॉक्टर सबा ने उनसे कहा वह मुझे समझा देंगे। थोड़ी देर बाद डॉक्टर सबा आए और मुझे साथ लेकर कमरे के बाहर आ गए। उन्होंने कहा, " शायद तुम्हारी मदर को कैंसर नहीं है। शायद किसी और जमाव से गाँठ है"। थोड़ी देर बाद वे फिर आए और कहा, "हम उन्हें पूरा बेहोश नहीं करेंगे। न्यूरोसर्जन इसकी इजाजत नहीं दे रहे हैं।लोकल एनेस्थीसिया देंगे"। थोड़ी देर बाद वह फिर आए और कहा, "हम वह गाँठ निकाल देंगे, पूरा स्तन नहीं निकालेंगे। क्योंकि उन्हें इस उम्र में तीन-चार घंटे बेहोश नहीं रख सकते। न्यूरोसर्जन इसकी इजाजत नहीं दे रहे" ।

मैं बहुत अधिक दुविधाग्रस्त हो गया। अंततः मैंने फॉर्म साइन कर दिया पर अंदर ही अंदर बहुत अन्यमनस्क महसूस कर रहा था। एक मन कर रहा था सर्जरी के लिए मना कर दूँ। अम्मा को वापस घर ले जाऊँ। यदि मनुष्य "अगर" से मुक्त हो पाता तो उसकी अधिकांश परेशानियों का हल निकल आता।"अगर", "मगर", "किंतु", "परंतु", "ऐसा" ,"वैसा" ,पहन रात मेरे इर्द-गिर्द नाचती रही, कहा, "मेरे साथ नाचो"। मैं भी नाचता रहा अपनी बोझिल दुविधाओं के साथ। सुबह चार बजे, अम्मा को दवा देकर, मैं बाहर आया। चाय पीकर, पी.जी.आई गेट की तरफ जाने वाली सड़क पर बैठा। पैसा। नकद पैसे कम थे। अस्पताल के अंदर इंटरनेट नहीं काम करता था। इस जगह से इंटरनेट साफ पकड़ता था। पे.टी.एम पर करीब अट्ठाईस हजार रुपए का सोना, पाँच-पाँच सौ, हजार कर, खरीद रखा था। उसे रुपए में बदलकर अपने खाते में ट्रांसफर कर वापस आ गया। अम्मा के पास लौट आया, अम्मा अभी भी सो रहीं थीं ।

सुबह-सुबह सुमन अस्पताल आ गई थी। सात बजे के करीब, नर्स ने मुझे बुलाया और पैसे जमा करने को कहा। कार्ड से भुगतान चौथी मंजिल पर होता था। जब तक भुगतान कर वापस वार्ड में आया, पता चला अम्मा को लेकर ऑपरेशन थिएटर में जा चुके हैं। ऑपरेशन थिएटर के बाहर, वेटिंग एरिया में मैं जाकर बैठ गया । सुमन भी वहीं थी। थोड़ी देर में सुधा दी भी आ गई। वहीं बैठे-बैठे रोने लगीं। उन्हें बहुत जल्दी रोना आ जाता है । उन्हें रोता देख मुझे क्रोध आ रहा था।रोना एक विकल्प है, किंतु अंतिम विकल्प। अभी हमने हथियार नहीं डाले थे। एक-एक कर जिन मरीजों की सर्जरी होती जाती उनके तामीरदारों का नाम पुकारा जाता। साढ़े ग्यारह बजे, डॉक्टर सबारत्नम, सर्जन के लिबास में स्वयं बाहर आए, और पुकारा "चंद्रावती"। मैं फौरन गया तो उन्होंने मुझसे कहा, "तुम इतना डर रहे थे ।शी इज़ अ ब्रेव लेडी"। सर्जरी के समय अम्मा को पूरा बेहोश नहीं किया गया था। केवल निश्चित हिस्से को सुन्न कर ऑपरेशन किया गया था। डॉक्टर ने कहा, "उन्हें थोड़ी सी चाय और दो बिस्किट खिलाओ"। कैंटीन से चाय, बिस्किट लाकर अम्मा को खिलाया। अम्मा को अपने कमरे में जाने की जल्दी थी। खुद उठकर जाने लगीं। नर्स चिल्लाने लगी, उसने कहा, "हम ले चलेंगे"।आधे घंटे बाद अम्मा को उनके कमरे में पहुँचा दिया गया ।

रात में डॉक्टर सबा जब अम्मा को देखने आए उन्होंने मुझे अलग ले जाकर कहा, "हमने जो हिस्सा निकाला है, उसे एफ.एस.एल के लिए भेज दिया है। लेकिन उस हिस्से के आसपास की कोशिकाएँ बेहद सख्त हैं। इन-सीटू-कार्सिनोमा है। हमारे विशेषज्ञों के अनुसार यह कैंसर ही है"। मैं क्या कह सकता था? मैं क्या कर सकता था? पिछले दो दिन, बेहद उलझन भरे रहे। आशा और निराशा दोनों एक ही मुट्ठी में बंद थीं। मुट्ठी खोलने पर, क्या हाथ में रह जाएगा, कैसे जान सकता था? पापा बार-बार फोन कर रहे थे। पापा से कहा, "सब ठीक है, ऑपरेशन हो चुका है"।

दीदी को भी, ऑपरेशन की पहली रात, फोन कर दिया था। दीदी ने कहा था, ''कल तो आना मुश्किल है'' ।सर्जरी के अगले दिन दीदी, भइया, जीजा और बाबू आए थे। अम्मा, दीदी को देखकर कितनी प्रसन्न होतीं थीं। जैसे उनका विश्वास लौट आता था। पर दीदी को फुर्सत नहीं रहती थी। कभी-कभार आतीं थीं। दीदी ने अम्मा से कहा, "परेशान ना हो, जल्दी ठीक हो जाओगी"। अम्मा की प्रश्नसूचक निगाहें इसका अर्थ तलाशने लगीं। ऑपरेशन हो जाना, उनके लिए इलाज था। उन्हें कैसे बताता, यही आगाज था। दीदी उसी दिन लौट गईं। भइया ने मुझे कुछ पैसे दिए, दीदी ने भी कुछ पैसे दिए। सहानुभूति जताने का यह, एक और तरीका है, जो वास्तव में मुसीबत के कुछ सवाल हल कर ही देता है।

शनिवार सुबह, डॉक्टर ने कहा, यदि हम चाहें तो एक दिन के लिए अम्मा को घर ले जा सकते हैं। अगले दिन सुबह फिर भर्ती करना पड़ेगा। इसमें अम्मा को ही परेशानी होती । लिहाजा मैंने मना कर दिया और कहा बार-बार लाने, ले जाने से बेहतर है यही रहें। किंतु उसी दिन दोपहर तक अम्मा को डिस्चार्ज करने की तैयारी होने लगी। मुझे एंडॉक्राइनोलॉजी डिपार्मेंट अप्वाइंटमेंट लेने को भेजा गया और इंसुलिन काउंसलिंग के लिए भी भेजा गया। इंसुलिन पेन के द्वारा इंसुलिन देने का तरीका बताने में, नर्स को महज दो मिनट लगे और मुझे सीखने और समझने में, दो-तीन दिन लग गए। एफ.एस.एल की रिपोर्ट आने में अभी एक हफ्ते का समय था, डॉक्टर सबा ने मुझे एक हफ्ते बाद आकर मिलने को कहा।

५४.

अम्मा को लेकर हम घर आ गए। घर फिर से भर गया। अम्मा-पापा, मैं, अर्चना, सुमन, प्रतिभा, सिम्मी, युगाँधर, महालय और शिवि। घर चहक उठा। मैं अम्मा के पास बेड पर बैठा था। महालय भागा-भागा आया और चुपचाप मेरी गोद में बैठ गया। एक हफ्ते अस्पताल में रहने के बाद मैं घर लौटा था। भावनाएँ मनुष्य को क्या कमजोर कर देती हैं? मैं नहीं मानता। उनकी अभिव्यक्ति ही तो जीवन में प्राण सिंचित करती है। “चरैवेति-चरैवेति” का सशक्त आत्म बल यहीं से उद्भाषित होता है। जहाँ भावनाएँ प्रशस्त-पथ के किनारे अभिनंदन करती रहती हैं। “हाँ, तुम चलो। तुम्हारी गति में ही और कई जीवन सम्मिलित हैं। निराश हो? हताश हो? फिर भी चलो क्योंकि जो तुम्हारे साथ जुड़े हैं, वे निराश नहीं हैं, हताश नहीं हैं क्योंकि तुम उनकी आशा का केंद्र बिंदु हो”।

अम्मा परिवार के बीच खिल उठतीं थीं। सभी, अम्मा के लिए कुछ ना कुछ करना चाहते थे। अम्मा ये लोगी ?अम्मा चाय पियोगी? अच्छा, सेब खा लो ।नहीं? तो थोड़ा जूस पी लो । थोड़ी देर लेट जाओ, अम्मा। इस छोटे से घर को अम्मा कितना बड़ा बना देतीं थीं। सब समा जाते थे। कहाँ? किसी को कोई शिकायत नहीं? चाय के प्याले लिए सब अम्मा को घेर कर बैठे थे ।घर ऐसे ही होते हैं। रंग-रोगन, क्षेत्रफल, सजावट, आँखों को सुख देकर अंतर्धान हो जाते हैं पर मन को भिगोने वाली बरखा, ऐसे ही कई बादलों के टुकड़ों द्वारा पृथ्वी को घेर लेने पर होती है ।प्रतिभा, सुमन, सिम्मी बाजार जाने को तैयार थीं। क्या-क्या लाना है? फल, पनीर, बिस्कुट और तो कुछ नहीं? अम्मा आशीर्वाद थीं। युगाँधर, शिवि, महालय की चंचल छाया, अम्मा के स्नेह से परिपूर्ण स्वयं को अभिभूत पा रही थी।बच्चों के चेहरों पर जमी हुई खिलखिलाहट गतिमान थी। शायद अब सब ठीक है। पर मैं अपराध बोध से ग्रस्त था ।शायद मैं अम्मा से छल कर रहा था।

एंडॉक्राइनोलॉजी विभाग में मुझे एक चार्ट दिया गया था। एक महीने तक सुबह, दोपहर, शाम, रात शुगर लेवल जाँच कर उसमे लिखना था। इंसुलिन देने के पहले और उसके बाद खाना खाने के आधे घंटे बाद। शुरू में इंसुलिन देते समय हाथ काँपते थे पर अम्मा सहज रहतीं। डॉक्टर ने कहा था, जैसे-जैसे शुगर का स्तर कम होता जाएगा, इंसुलिन की मात्रा कम करते जाना है। डॉक्टर ने डेढ़ सौ से ऊपर शुगर लेवल को चिंताजनक श्रेणी में रखा था। अम्मा का स्तर डेढ़ सौ के अंदर ही रहता । कभी-कभार १६०-१६७ तक पहुँच जाता । कभी- कभी इंसुलिन देने पर उनका शुगर-लेवल एकदम नीचे आ जाता। अम्मा के शरीर में कंपनी होने लगता। तब उन्हें सेब दिया जाता जिससे शुगर- लेवल सामान्य हो सके।

इस बीच, एक हफ्ते बाद, डॉक्टर सबा से मिलने गया। उन्होंने कहा, " पी.जी.आई में ऑन्कोलॉजी डिपार्मेंट नहीं है इसलिए तुम जाकर डॉक्टर आलोक गुप्ता, मेदांता अस्पताल, लखनऊ, से मिलो। वो टाटा कैंसर रिसर्च हॉस्पिटल, मुंबई और एम्स, नई दिल्ली में काम कर चुके हैं। आगे का इलाज वही तय करेंगे"। उन्होंने मुझे एफ.एस.एल की रिपोर्ट दिलवा दी और डॉक्टर आलोक गुप्ता को स्वयं का नाम बता देने को कहा। वहाँ से सीधे, मैं मेदांता गया। मेदांता में डॉक्टर आलोक गुप्ता से मुलाकात की। बेहद सज्जन और जहीन व्यक्तित्व। उन्होंने मेरी सारी बातें बड़े इत्मीनान से सुनीं और डॉक्टर सबा से भी फोन पर बात की। फिर उन्होंने अगले दिन अम्मा को लेकर आने को कहा ।

अगले दिन अम्मा को लेकर, डॉक्टर आलोक गुप्ता के पास गया। डॉक्टर ने अम्मा को देखने के बाद, इलाज को अम्मा की उम्र और प्रतिरोधक क्षमता के अनुसार, तीन स्तर में बाँट दिया। पहला रेडियोथैरेपी, दूसरा हारमोन नियंत्रण और तीसरा कीमोथेरेपी। क्योंकि अम्मा की उम्र ज्यादा थी उन्होंने सरमन कीमोथेरेपी में ट्रैस्टुज़ुमैब के सत्रह इंजेक्शन, हर इक्कीस दिन पर लगवाने की सलाह दी। हार्मोन नियंत्रण के लिए उन्होंने टैमौक्सिफेन की एक गोली,

प्रतिदिन, तीन साल तक लेने को कहा। इन सब के पहले उन्होंने कई और जाँच करवाने के लिए कहा। मसलन बोन डेंसिटी टेस्ट, के.एफ.टी, एल.एफ.टी वगैरह। इसके अलावा कार्डियोलॉजिस्ट को भी दिखाने को कहा क्योंकि बिना उनकी अनुमति के कीमो देना मुमकिन नहीं था। इसके अलावा शुगर, सी.बी.सी, ई.सी.जी वगैरह की नियमित, हर पंद्रह दिन पर जाँच आवश्यक थी। डॉक्टर से बात करते समय मैं बीच-बीच में अम्मा की तरफ देखता। क्या अम्मा समझ रही हैं? आँखों में सपाट भाव रहता, जैसे इन सब से उनका कोई मतलब ही ना हो। क्या अम्मा जानती थीं, मैं उनसे क्या छुपा रहा था? पापा अक्सर जोर देकर पूछते, बीमारी क्या है? खाली इतना बताता उनके दाहिनी सीने में गाँठ थी, उसी का इलाज चल रहा है। झूठ मैंने नहीं बोला किसी से भी।ना अम्मा से, ना पापा से। बस सच की विभीषिका की आँच को ओट देने का प्रयास किया। सच, शायद दोनों को तोड़ देता। यह मेरा भय था ।दोनों को जिस अदम्य साहस से जीवन जीते देखा था, उस जिजीविषा को कम करने का साहस मुझ में नहीं था। पर अब लगता है शायद अम्मा को सब पता था । एक दिन उन्होंने मुझसे हँसते हुए पूछा था, " क्या हमको कैंसर है"? वह हँसी अंदर तक भेद गई थी। कितनी बड़ी चुनौती थी स्वयं के विश्वास को! अपनी विवशता के नंगेपन को ढँकने के लिए जलती क्रोध-अग्नि में छलाँग लगा दी। गुस्से में कहा था, "हाँ, है । तुमको बैठे-बैठे बस यही बेकार की बातें सोचनी रहतीं हैं"? अम्मा ने कहा, " गुस्सा क्यों करते हो, भइया ?क्या कोई पूछता नहीं"? कहाँ था भगवान? कहाँ था? इतनी सहज और सरल स्त्री की इतनी भयावह परीक्षा लेकर क्या मिल जाएगा ?आजीवन परिश्रम, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास और सहर्ष त्याग की कथा का सार, इतना नृशंस लिखकर, क्या भगवान ने अपनी कलम न चूम ली होगी? उसके खेल का सबसे प्रिय शगल क्या मनचाहे खिलौने का क्रूरतम अंत ही होता है? अम्मा ने कर्म किया, फल की चिंता नहीं की। भगवान ने सबसे कड़वा फल दिया और कहा, " लो, चंद्रावती तुम्हारे हिस्से में बस यही है"।

डॉक्टर सबा ने डॉक्टर आलोक गुप्ता का पर्चा देखा और कहा, “बाकी तो मैं करवा दूँगा, रेडियोथैरेपी के लिए ए ब्लॉक के रेडियोथैरेपी विभाग में, डॉक्टर शगुन से जाकर मिलना होगा “। उन्होंने डॉक्टर शगुन के नाम पर्चा लिख कर दिया। जब मैं रेडियोथैरेपी विभाग में पहुँचा, वहाँ बहुत भीड़ थी। काउंटर पर मैंने डॉक्टर सबा का पर्चा दिखाया तो उन्होंने कहा बिना पूर्व नियोजित समय के डॉक्टर से मिलना मुश्किल है। फिर भी उन्होंने एक कमरे की तरफ इशारा करते हुए कहा, ” वहाँ पर एक बार बात कर लीजिए”। वहाँ जाकर मैंने सारी बातें बताई तो एक अटेंडेंट, डॉक्टर सबा का पर्चा लेकर डॉक्टर शगुन के चेंबर में गई। करीब दो-ढाई घंटे बाद, मुझे चेंबर में बुलाया गया। डॉक्टर शगुन ने कहा, “हम ऐसे रेडियो-थेरेपी की तारीख नहीं देते। मुझे पता करना होगा सर्जरी में कितना हिस्सा निकाला गया है, कितना हिस्सा छोड़ा गया है ।इसके अलावा सर्जरी के बाद की सारी रिपोर्ट मैंने देखी नहीं है”। उन्होंने उस समय डॉक्टर सबा से फोन पर भी बात की। फिर उन्होंने अम्मा को लेकर आने की तारीख दी। रेडियोथैरेपी होगी या नहीं, तभी निश्चित होगा।

५५.

सुनसान सड़क पर दौड़ती हमारी गाड़ी। जगह-जगह पुलिस गाड़ी रोक कर पूछताछ करती। कागज माँगती मगर उसे हाथ नहीं लगाती ।दूर से ही देखती, दूर से ही बात करती और दूर से ही इशारा करती, जाने का। मनुष्य, मनुष्य की परछाईं मात्र से भयभीत था। साँसों में षड्यंत्र था। आँखों में अविश्वास था। नकाब हकीकत थे ।चेहरे, कोई कहानी। डर की परछाइयाँ, इतनी लंबी होती जा रहीं थीं, उगते सूरज को ढँक देतीं। दिन निकलते ही रात हो जाती। प्रकृति के ठहाके चिता में चटकती लकड़ियों की ताल पर और भयावह लगते जब वे अपने सुर में हर गली, हर मोहल्ले से उठते रुदन और हाहाकार के नृशंस उपनिवेश को शामिल कर लेते ।यह साम्राज्य किसका है ?बोलो तो? प्राकृतिक प्रश्न-चिन्ह की दुम के नीचे सरकारें नकाब बाँट रहीं थीं। लो, छुप जाओ। सड़कें लाशों की चहलकदमी के लिए खाली छोड़ दी गईं थीं। श्मशान और कब्रिस्तान की तिजोरियाँ भर रहीं थीं। कतारें लंबी थीं।आगे, पीछे की कोई व्यवस्था नहीं थी।मृत्यु का सामूहिक प्रयास था।अर्थी नहीं, पूरा श्मशान निकलता।

महाशक्तियों के आर्थिक दुराचार का नतीजा अपने पितृ समाज से अपना अधिकार, अपना नाम माँग रहा था। नाम दिया गया, कोरोना और अधिकार क्षेत्र के नाम पर समस्त मानव प्रजाति को थाली में परोस कर रख दिया गया। अम्मा कहतीं थीं, दुनिया लय हो जाएगी। दुनिया लय हो रही थी। लाशें, महुए की तरह चू रहीं थीं और बिनी जा रहीं थीं। कोरोना महामारी, एक रहस्यमय परिपेक्ष का आँकलन था। इसकी सुगबुगाहट राजनैतिक गलियारों से उठतीं और औद्योगिक घरानों तक जाकर लावे की तरह पटपटा उठतीं। दबी जुबानें चुहियों की तरह चिचियातीं, क्या समस्त विश्व के आर्थिक समीकरणों को दुरुस्त करने के लिए यह नया अध्याय मानव इतिहास में जोड़ा जा रहा है या समस्त विश्व की जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए विश्व के तमाम विराट देशों की, यह एक सोची-समझी रणनीति है। मृत्यु का सरलीकरण भी एक

राजनैतिक विचारधारा ही है। बात कुछ भी हो, चूहे कभी बिल्ली के गले में घंटी बाँध नहीं पाए। कोरोना का असर छोटे देशों पर नहीं पड़ा मगर जितने भी बड़े-बड़े देश थे, सब इसकी चपेट में आ गए। चीन, अमरीका, रूस, भारत, फ्रांस, ब्रिटेन। इटली जिनमें एक अपवाद रहा।

कोरोना ने वैश्विक राजनीति को एक नई पहचान दी। सार वही पुराना था, जिसकी लाठी उसकी भैंस। मगर इस बार लाठी और भैंस दोनों के रूप बदल गए। और लाठियाँ चलने लगीँ, रूस और यूक्रेन में। अमेरिका का हथियार उद्योग फूलने फलने लगा। दवा उद्योग पहले ही पर लगाए उड़ रहा था, इस तरह कोरोना ने अमरीका की गिरती हुई अर्थव्यवस्था को फिर से संभाल लिया।

पर इन फलती फूलती अर्थव्यवस्थाओं के नीचे, दबे, कुचले, सामान्य लोग, जिन्हें अर्थव्यवस्था, मुद्रास्फीति के आँकड़ों का हेर-फेर नहीं आता था, दैनिक रोजी-रोटी में ही उलझ कर रह जाते हैं। दो और दो चार ही कर पाते हैं पांचवे की कोई जुगत नहीं बनती। वे सब इन अर्थव्यवस्थाओं के ख्याली पुलाव की दम- घोंटू खुश्बू के नीचे, दबकर मर गए।

इसलिए सड़कें वीरान हैं, सुबह हैरान हैं। सूरज निकलता है और खो जाता है। कोई दिखता ही नहीं। क्या उसे मोतियाबिंद हो गया है?

इन सब में, पीछे सीट पर, ऊपर से नीचे तक ढँकी, अम्मा। सिर पर कवर, चेहरे पर मास्क, हाथ में दस्तानें, पूरा शरीर ढँका हुआ, केवल दो आँखें। वैसी ही रिक्त आँखें मानो इन सब से कुछ लेना-देना नहीं। मानो सब पता हो। किसी भी पुरानी हड्डी से पूछिए, नई हड्डियों में लगने वाली जंग के दस्तावेज, उन्होंने लिखे तो नहीं, मगर पढ़े जरूर हैं। यह तो होना ही था।

अम्मा की पहली कीमो बिना किसी व्यवधान हो गई, किंतु दूसरी कीमो से पहले पी.जी.आई से फोन आया कि अब कहीं और करवा लें। कोरोना की वजह से संख्या में कटौती की जा रही है। मेदांता में करवाने पर एक बार का खर्च करीब दो लाख तक आता। मेरे लिए असंभव था। मैंने डॉक्टर सबा के

सहायक से बात की। उन्होंने डॉक्टर सबा से बात कर, आश्वासन दिया कि पी.जी.आई में ही करवा देंगे, लेते आइएगा। तब जाकर जान में जान आई।

दूसरी कीमो से पहले, कोरोना की पहली लहर व्यापक रूप में फैल चुकी थी। लॉकडाउन हो गया था। कंटेनमेंट जोन बन रहे थे। कीमो से पहले अम्मा की जाँच करवानी होती थी। अम्मा को मास्क, स्कल कैप, ग्लव्स पहनाकर, सैनीटाइज कर, तब ले जाया जाता। तब जाँच करवाई जाती। अम्मा चुपचाप सब देखतीं, जो कहा जाता वह करतीं। सफ़र के अगले मोड़ की रूपरेखा क्या होगी शायद अनुमान लगाने का प्रयास करतीं।

जब दूसरी कीमो के लिए वार्ड पहुँचे, वहाँ कहा गया, नीचे डॉक्टर शुभाशीष से मिलकर आइए। वहाँ पहुँचे। डॉक्टर अभी आए नहीं थे। चारों तरफ शंकाओं की परछाइयाँ स्वयं को सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहीं थीं। मानव समाज में मानव निषेध था ।फाइल जमा कर हम और अम्मा इंतजार करने लगे। डॉक्टर बारी-बारी से नाम बुलाते। हमारी बारी आई तो डॉक्टर ने कहा, "कोरोना की जाँच का फॉर्म भरिए। जाँच करवाइए ।जाँच की रिपोर्ट निगेटिव आई, तब इंजेक्शन चढ़ेगा"।मरीज और तामीरदार दोनों को जाँच करनी आवश्यक थी। इसलिए पहले मुझे पी.जी.आई में मरीज के तौर पर नामांकन करवाना पड़ा। अपनी फाइल बनवानी पड़ी। तब डॉक्टर ने दो फार्म के लिए लिख कर दिया। तीन हजार रुपए, एक जाँच के ।जहाँ जाँच हो रही थी, वहाँ पहले ही लंबी कतार थी। अम्मा को एक जगह बिठाकर, मैं कतार में लग गया। दो बजे लंच हो गया। हमारा नंबर करीब साढ़े तीन बजे आया। रिपोर्ट अगले दिन मिलनी थी। घर लौटते- लौटते पाँच बज गए। सुबह साढ़े सात बजे गए थे। अम्मा का धैर्य और सहनशीलता विलक्षण थी। अस्पताल में कुछ खाती-पीती नहीं थीं। सुबह चाय के साथ थोड़ी सी दलिया खा कर गईं थीं। कोई शिकायत नहीं करतीं, कोई ग्लानि नहीं ।जहाँ बिठा देता, वही घंटों बैठी रहतीं। मुझे इधर-उधर भाग-दौड़ करनी रहती ।बस, जब सब सारा काम हो जाता और अस्पताल से निकलना रहता, तब उनके चेहरे पर एक हल्की सी इत्मीनान की छाया दिखाई देती।

रिपोर्ट निगेटिव आने के अगले दिन, फिर अम्मा को लेकर गया। इंजेक्शन लगवाने की प्रक्रिया भी लंबी चौड़ी होती थी। पहले फाइल जमा करनी पड़ती। नंबर आने पर डॉक्टर जाँच रिपोर्ट देखते। अम्मा का रक्त-चाप और वजन नापते। शुगर-लेवल का रिकॉर्ड देखते, तब जाकर दाखिले का फॉर्म दिलवाते। उसके पैसे भरने जाना पड़ता। उसकी रसीद दिखाने पर, फिर वो सारे इंजेक्शन की रिक्वेस्ट, एच.आर.एफ में भेजते। उसका भुगतान नीचे काउंटर पर करने के बाद, वही रसीद ले जाकर, एच.आर.एफ से सारे इंजेक्शन लाकर, डे- केयर में देने होते, जहाँ अम्मा भर्ती होतीं। अब से हर चौदह दिन पर कोरोना की जाँच आवश्यक थी। मरीज और उसके तामीरदार, दोनों की रिपोर्ट निगेटिव हो, तभी अनुमति मिलनी थी अन्यथा नहीं ।करीब-करीब हर दूसरे- तीसरे दिन मेदांता या पी.जी.आई दौड़ना पड़ता। पी.जी.आई के, अलग-अलग विभागों में दिखाने के लिए, सुबह तीन-साढ़े तीन बजे ही पहुँच जाना पड़ता। लौटने का समय निश्चित ना होता। हर पल संशय की स्थिति बनी रहती। कब, किस कदम पर, कोरोना साथ में, घर में प्रवेश करे। घर में दो छोटे बच्चे थे, दो बुजुर्ग थे ।येन-केन-प्रकारेण उन्हें सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास किया जाता।

इंजेक्शन लगने के अगले दिन से दो-तीन दिन तक अम्मा को पेट में काफी तकलीफ रहती। दो-तीन दिन तक खाने-पीने की समस्या रहती। उसके लिए अलग दवाइयाँ दी गईं थीं। हड्डियों की मजबूती बनाए रखने के लिए अलग दवा थी। कुल तीन इंजेक्शन चढ़ाए जाते थे। इंजेक्शन लगने के दो दिन पहले से अलग दवा दी जाती। कुल मिलाकर, अम्मा के मुँह का स्वाद, इतनी दवाइयों और इंजेक्शन से जाता रहा। हमेशा कहतीं, "ऐसा लगता है मुँह में दवाइयाँ भरी हुई हैं"। दवाइयाँ मुझसे ही लेतीं, कोई और देता तो कहतीं, संदीप को एक बार दिखा लो। हर बार बीमार होतीं, तो मैं जिस भी डॉक्टर के पास ले जाता, उनकी दवाइयों से अम्मा को जल्द राहत मिल जाती। उनकी दवाइयाँ अम्मा को जल्दी अच्छा कर देतीं। अम्मा को अटूट विश्वास था, मुझ पर ।उन्हें यकीन था एक दिन यह सब दवाइयाँ बंद हो जाएँगी। अम्मा का यह विश्वास, मन को बेहद उदास कर देता।

रोज शाम, सिम्मी का फोन आता था। अम्मा से रोज बात करती थी। प्रतिभा और सुमन का भी अक्सर फोन आता और साल में दो- एक बार वो आतीं और अम्मा के साथ कुछ दिन अवश्य बितातीं। सुधा दी पास ही में रहतीं थीं, अक्सर जाकर अम्मा से मिल जातीं। अम्मा, दीदी को बहुत याद करतीं। कभी मैं कहता, फोन लगाकर बात कर लो तो अम्मा निराश भाव से कहतीं, "रहै द्या, उनके लगे कहाँ टाइम अहै"। उनके चेहरे और स्वर से एक साथ टपकती पीड़ा को संभालना चाहता था। वही अम्मा थीं। विशुद्ध अम्मा । स्वयमेव ही प्रकट होता, यह अदृश्य कोलाहल, बिना प्रयोजन आक्रामक हो जाता। साँस लेना मुश्किल हो जाता था। आँखें मिलाकर, क्या अम्मा के रिश्तों की दरिद्रता अपने आँखों से देख पाता ? दीदी जब भी आतीं, रुकती नहीं थीं। अम्मा यदा-कदा उनसे रुक जाने को कहतीं तो दीदी कहतीं, 'छुट्टी कहाँ है"? कितने साल हो गए थे, सब आते थे, अम्मा के पास कुछ दिन बिताते थे। अम्मा सबके बच्चों से मिलकर खिल उठतीं। जो बन पड़ता, जितना बन पड़ता, सामर्थ्य अनुसार करतीं। कभी नहीं सोचतीं किसी को अच्छा लगेगा या बुरा। जिसको जो पसंद होता, अम्मा अपने हाथ से बनातीं ।

दीदी आतीं और चली जातीं। रुकती नहीं थीं। अम्मा मन मसोस कर रह जातीं। हर शाम वह कितने उत्साह से पूछतीं, "किसी का फोन आया, क्या"? प्रतिभा, सुमन, सिम्मी, सुधा दी, इनसे तो अक्सर बातें करतीं थीं। फिर यह "किसी का" कौन था? क्या मैं नहीं समझता था? पर अम्मा स्वयं को इतना पीछे क्यों खड़ा रखतीं थीं? कभी भी नहीं समझ पाया? यह दु:ख बचपन से, मेरे अंदर भरता गया। अम्मा क्यों सबके सामने नहीं आतीं थीं? अब यह दु:ख समय से बड़ा हो चुका है, अनंत। इसकी कोई भरपाई नहीं। अब यही दु:ख सुकून देता है। अम्मा किसी न किसी रूप में ही, साथ हैं।

माँ, एक शाश्वत भाव है। किसी भी भाषा, धर्म, संप्रदाय, पंथ, समाज, राज्य, देश की गतिशीलता और उसकी क्रिया। उसे नजरअंदाज करना उच्च कोटि की सांकेतिक मूर्खता है। संबंधों का प्रथम परिचय, माँ करवाती है। वही आधार बनता है। वही संबंध समाज, स्थान, काल, राष्ट्र और विश्व और फिर उससे

कहीं आगे, स्वयं तक ले जाता है। एक अटूट श्रृंखला बनती जाती है। जिसकी पहली कड़ी माँ ही होती है ।उत्पत्ति और सृजन को इंगित करने वाली, वैचारिक पृष्ठभूमि में माँ का ही सत् होता है। सृजन और उत्पत्ति के सोपान पर स्वयं को उधेड़ती जाती है, श्रृंखलाएँ मजबूत होती जाती हैं, बनती जाती हैं। सृजन से मोह है, स्वयं से उदासीन। नदी, पेड़, पर्वत, पुष्प, सागर, प्रकृति का प्रत्येक अंश, उसकी दिनचर्या, मातृत्व को आत्मसात कर, अनादि से अनंत की यात्रा तय कर रहा है। उसी मातृत्व के चरण-रज से उठतीं, त्रिगत अनुभूतियाँ, यात्रा के तीनों चरण, ब्रह्मा, विष्णु और महेश की अंतर्यामी साधना का प्रतिफल बन जाती हैं। माँ बहुत पीछे रह जाती है, श्रृंखला की पहली और अनदेखी कड़ी। कितनी रहस्यमयी है माँ! ईश्वर को कोई जान नहीं पाया। नहीं, कोई नहीं जान पाया। जो जानने का दावा करते हैं, वे फरेबी हैं, झूठे हैं, मक्कार हैं। अव्वल दर्जे की धूर्तता है। ईश्वर के अखण्ड स्वरूप को, अपने-अपने स्वार्थ के टुकड़ों का आध्यात्म बना, बेचते हैं। हँसी -खेल है, क्या? समस्त ब्रह्मांड को अणु मात्र की साजिश में डुबो देने वाले, रहस्य को जानने के बाद, उस रहस्यमयी गुत्थी के अंतिम सिरे को जिसने पकड़ रखा है, उस तक पहुँचने में या तो समस्त सृष्टि की आयु कम पड़ती है या एक क्षण का कोटि-कोटि भाग भी अपार है। दोनों में से, समय का कोई भी प्रारूप, मानव की समझ से बाहर है। इसलिए ईश्वर उसकी पकड़ से बहुत दूर है और शायद माँ भी ।

हाँ! इसीलिए अम्मा भी स्वयं को सबसे पीछे खड़ा रखतीं हैं। मैं भी पीछे ही रहना चाहता हूँ। सबसे पीछे। अम्मा की तरह। किंतु इतना धैर्य, इतना आत्मबल और स्वयं से मुक्त होने की शक्ति कहाँ से लाऊँ? बहुत मुश्किल होता है सबसे पीछे खड़ा होना, जहाँ पता होता है कि हमारे पीछे कोई नहीं।

५६.

हम सब एक ही कमरे में सोते थे। महालय, अम्मा के बगल में ही लेटता था। शुरू से वह अम्मा के पास ज्यादा रहा ।सोने से पहले, अम्मा, उसके पैर दबातीं और कहतीं, “दिन भर, बहुत मेहनत करता है”। महालय उनके झुर्रीदार चेहरे को उँगलियों से टटोलता और कहता, ”अद्दा, ये कैसे हो गया”? अम्मा जोर से हँस देतीं और कहतीं, “अद्दा बूढी हो गई हैं”। महालय भी हँस देता। जीवन के दो छोर मिलकर हँसते। जीवन का सार यही तो होता है। दोनों छोर जुड़ जाने पर ही जीवन-चक्र संपूर्ण हो जाता है, अन्यथा जीवन की सार्थकता नष्ट हो ही जाती है। वर्तमान में टूटे परिवारों में ये छोर अपरिचित हैं इसलिए परिवार अपूर्ण रह जाते हैं और दरकने लगते हैं।

ए.सी में अम्मा को जल्दी ही ठंड महसूस होने लगती इसलिए अम्मा को अलग से कंबल दिया जाता किंतु रात भर वह कंबल अम्मा, महालय को ओढ़ातीं रहतीं और वह हटाता रहता। रात में जब भी अम्मा की नींद खुलती, महालय के सिर पर हाथ फेरतीं, उसे दुलारतीं पुचकारतीं। उसकी जरा सी आवाज पर वह उठ बैठतीं और लाड़ से पूछतीं, “का भइया, का”? ममता की लहर का घनत्व, रात्रि के अभेद्य सन्नाटे भी नहीं नाप सकते थे।

अम्मा एक बार, सिम्मी के पास, कुछ दिनों के लिए गुड़गाँव गईं थीं। पापा भी साथ थे। विमल का स्थानांतरण, कुछ दिनों के लिए गुड़गाँव हुआ था। लखनऊ से मुंबई की अपेक्षाकृत, गुड़गाँव, पास होने की वजह से, मैंने सोचा वहाँ कुछ दिन रहकर अम्मा का मन बदल जाएगा। वैसे भी अम्मा उन दिनों सिम्मी को बहुत याद करतीं थीं। वहाँ से लौट कर जब आईं तो मुझसे कहने लगी, “युगाँधर की बहुत याद आती थी, मन करता था कहाँ पा जाएँ और उसे खिला लें”। एकदम बच्चों जैसी आकांक्षाएँ थीं, अम्मा की। जमीन की थीं इसलिए पंख नहीं उगने दिए। सूखी मिट्टी पर वर्षा की पहली बूँद की अनुभूति थीं, अम्मा,

जो इस सोंधी महक को अपने रिश्तों में तलाशतीं थीं। शायद यही वजह है सरलता और सहजता के किरदारों से आसानी से घुल मिल जातीं अन्यथा क्लिष्ट किरदारों में कहीं खुद को खो न दें, स्वयं को समेट लेतीं।

पी.जी.आई में समय बहुत लगता है। डॉक्टर कहते, "यहाँ, यह समझ कर कभी मत आइए कि दो-एक घंटे में काम हो जाएगा। दिन भर की छुट्टी लेकर आया कीजिए "।

कार्डियोलॉजी विभाग में डॉक्टर को दिखाकर अनुमति लेनी थी कि अम्मा को ट्रैस्टुज़ुमैब में दिया जा सकता है या नहीं। सुबह आठ बजे बुलाया था, शाम छः बजे हमारा नंबर आया। सुबह जल्दबाजी में अम्मा को रक्तचाप की दवा देना भूल गया था। डॉक्टर ने रक्तचाप नापा और पूछा, "इन्हें दवा दी थी" ?बस, मेरा सिर ना में हिलने की देर थी, डॉक्टर इतनी जोर से चिल्लाए कि मैं एकदम स्तब्ध रह गया ।उन्होंने कहा, "मैं लिख दे रहा हूँ इसमें, आप मरीज की दवाई का ख्याल नहीं रखते"। और उन्होंने उस पर सचमुच लिख भी दिया। हालांकि उन्होंने अनुमति भी दे दी पर यदि डॉक्टर सबारत्नम की निगाह उस पर पड़ गई तो उनकी प्रतिक्रिया का अनुमान कर मेरी रूह काँप रही थी।

बात तब की है, जब सारी औपचारिकताएँ पूरी कर, उनके पास पहुँचा था तो उन्होंने नर्स को बुलाकर मरीज की रिपोर्ट में यह लिखने को कहा कि मरीज को टैमोक्सिफेन दी जा रही है और अगले हफ्ते से ट्रैस्टुज़ुमैब साइकिल शुरू कर दी जाएगी। मैंने कहा, "सर, टेमौक्सिफेन अभी नहीं दे रहे"। उन्होंने गुस्से में पूछा, "इसमें लिखा है, तो क्यों नहीं दे रहे"? मैंने कहा, "सर, कहीं मिल नहीं रही"। जैसे बम फूटा हो। "व्हाट डू यू थिंक ?एम आई ए फूल? पैंतीस पैसे की दवा नहीं दे सकते, अपनी मदर को? हर जगह मिलती है"। मैंने सचमुच पता किया था पी.जी.आई से लेकर तेलीबाग, चारबाग कहीं नहीं मिल रही थी। मैंने कहा, "सर, सच में नहीं मिल रही"। डॉक्टर सबा ने नर्स से कहा, "राइट इन द

रिपोर्ट दैट द अटेंडेंट ऑफ पेशेंट फॉलोज द डॉक्टर एटी पर्सेंट एण्ड रेस्ट ट्वेंटी पर्सेंट, ही इज़ इन ऑटो पायलट मोड"। नर्स पूरी गंभीरता से, हँसी रोकने का प्रयास कर रही थी ।

पी.जी.आई में डॉक्टर बेहद दबाव में काम करते हैं, इसमें कोई दो राय नहीं। देश के कोने-कोने से आए मरीजों की आशा पर खरा उतरने की चुनौती कम नहीं होती। कितने मरीजों को उन्हें, उन्हीं के स्तर पर उतरकर समझाना पड़ता। मरीजों की अवहेलना, अज्ञानता, मासूमियत, क्रोध, विवशता, आशा, निराशा, अलग-अलग रूप में झेलना पड़ता, उसे समझना पड़ता है।

वहाँ से निकलते समय विचार आया, क्यों ना एच.आर.एफ में जाकर टैमौक्सिफेन का पता कर लिया जाए। वहाँ भी नहीं थी। वहाँ पर्चा बनाने वाले व्यक्ति ने कहा, "इस समय क्लोजिंग चल रही है ।दवाइयों के पुराने स्टॉक वापस जा रहे हैं, नए स्टॉक मार्च अंत या अप्रैल शुरू में आएँगे। जाकर, डॉक्टर साहब को बता दीजिए"। मैं नहीं गया। जाकर यह सब कहना, डॉक्टर सबारत्नम की अवमानना होती। मैं जानता था वे एक बेहद प्रतिभावान और सौम्य प्रकृति के व्यक्ति थे । इसका प्रमाण उन्होंने अगली मुलाकात में दिया जब उन्होंने अपने बर्ताव के लिए क्षमा माँगी । उनकी महानता का इससे सटीक प्रमाण हो ही नहीं सकता ।

कोरोना की वजह से जो लॉकडाउन हुआ, उसने ट्यूशन आने वाले बच्चों की संख्या कम कर दी। उसके बाद भी नियमित रूप से मेदांता और पी.जी.आई आने-जाने में पूरा दिन निकल जाता। रोज बच्चों को मोबाइल पर संदेश भेजना पड़ता, अपनी अनुपस्थिति का। धीरे-धीरे बच्चे एकदम आना बंद हो गए। आर्थिक चुनौतियाँ बढ़ती जा रहीं थीं। बिलों का भुगतान करना नामुमकिन हो रहा था। इलाज के दौरान आनन- फानन में लिए गए क्रेडिट कार्डों का भुगतान बकाया रहने लगा। बिजली का बिल कई महीनों का बाकी रहने लगा। फोन की घंटियाँ बिल भुगतान के लिए धनघनाने लगीं। वसूली के लिए अमर्यादित

भाषा और आचरण का सहारा लिया जाने लगा। घर पर आ धमकते। चीखते-चिल्लाते ।मान,सम्मान ,प्रतिष्ठा,सदाचार,इन सब का एक ही पर्याय है- पैसा। दीवारों से साए और फिर उनके नाक-कान निकलने लगे। नाकों ने सूँघना शुरू किया, कानों ने सुनना। जुबानें छटपटाने लगीं, हमें कहाँ छोड़ जाते हो ? ८६१ ए आशीर्वाद, चटखारे लेती जबानों का नया स्वाद बन गया ।बाहर निकलता, लोग दबी जुबान में इशारा करते, "क्यों सर, पढ़ाना बंद कर दिया क्या"?कहते हैं , नहीं,माफ कीजिएगा,कहते थे, साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के वीभत्स स्वरुप को देख, दर्पण चूर-चूर हो गया और समाज नंगी तस्वीरों का साहित्य बन गया।अब दोनों एक दूसरे की पीठ खुजाते हैं और दोनों प्रसन्न हैं। अब समाज एक साहित्यिक स्वार्थ है और साहित्य एक स्वार्थी समाज है।

बहनों ने बहुत मदद की ।खासकर सिम्मी ने। सिम्मी से सहज भाव में अपनी सारी तकलीफें बताता। सुमन, प्रतिभा गाहे-बगाहे आर्थिक रूप से मदद करतीं। राम कृपाल जीजा ने भी अम्मा के इंजेक्शन लगवाने में बहुत मदद की।

बिजली का बिल अस्सी हजार तक पहुँच गया था। उस दिन अम्मा के इंजेक्शन लगने की तारीख थी। इंजेक्शन लगवा कर करीब डेढ़ बजे लौटा तो पता चला बिजली विभाग वाले आए थे। बिजली काट दी। अर्चना ने बहुत मिन्नत की थी कि मुझे आ जाने दें किंतु वे नहीं माने। आते ही बिजली विभाग के उतरेठिया सब-स्टेशन गया। वहाँ से मुझे वृंदावन कॉलोनी भेजा गया। अगले दिन युगाँधर की वार्षिक परीक्षा थी। वृंदावन कॉलोनी में एक जगह से दूसरी जगह भेजा गया। वहाँ काउंटर पर बैठे व्यक्ति से मैने समस्या बताई और यह भी बताया कि मेरे पास पूरे पैसे नहीं हैं। उस व्यक्ति ने कहा जितना है अभी कर दीजिए और बाकी का दो-तीन दिन बाद का चेक दे दीजिए। मुझे, ऊपर कार्यकारी अभियंता से मिलकर लिखवाने को कहा। ऊपर गया। कार्यकारी अभियंता नहीं थे। काफी देर वहाँ इंतजार करता देख, एक व्यक्ति ने मुझसे कारण पूछा। मैंने सब बताया तो वह मुझे अपने साथ नीचे एक कमरे के सामने ले गया और जाकर बोला, "अंदर साहब से लिखवा लीजिए"। अंदर साहब, मुँह में मसाला भरे बैठे थे।

बोलने भर की भी गुंजाइश नहीं थी। आसपास और कई लोग बैठे थे। सबके चेहरे सूजे हुए थे । बाहर परिसर में लिखा था “यहाँ पान मसाला खाना सख्त मना है”। साहब ने इशारे में वजह पूछी। मैंने सब बता दिया यहां तक यह भी बताया कि कल मेरे बच्चे का इम्तिहान है। साहब ने कागज पर कुछ लिख दिया। मैं फौरन बाहर आया, तीस हजार का चेक जमा किया। मेरे साथ के व्यक्ति ने कहा, ”आप इस पते पर जाइए वहाँ यह रसीद दिखाकर, कनेक्शन जोड़ने को कह दीजिएगा। रसीद के लिए आपको आठ सौ रुपए, कनेक्शन फिर जोड़ने के जमा करने पड़ेगें”। वहाँ से जैसे ही निकला, जूते का तला अचानक से निकल गया और झटके में मोबाइल हाथ से सड़क पर गिर गया । स्क्रीन चूर हो गई।

सामने सूरज ढल रहा था। अँधेरा गुनगुना रहा था। ढलता सूरज वाकई खूबसूरत लगता है पर उस खूबसूरती में ढलान होती है, उपेक्षा होती है। धरती, ढलते सूरज में रोमांस का साइंस देखती है, ढलता सूरज बनने में, संन्यास है।

५७.

फरवरी २०२२ में अम्मा के इंजेक्शन खत्म हो जाने थे। नवंबर२०२१ के पहले हफ्ते में चौदहवाँ इंजेक्शन लगना था। बीच में दिवाली पड़नी थी ।कोरोना की जाँच चौदह दिनों तक ही मान्य होती थी। अगले इंजेक्शन के लिए कोरोना की जाँच करवा ली थी। दीवाली के अगले दिन रिपोर्ट आने वाली थी। दीवाली के एक दिन पहले, घर की पूरी साफ-सफाई कर शाम को मैं नहाने गया। महालय और युगाँधर बीच वाले कमरे में थे ।अम्मा, ऊपर, पापा के कमरे में टी.वी देख रहीं थीं। नहाने के दौरान फोन की घंटी बजी थी। नहा कर निकला तो देखा अम्मा, महालय और युगाँधर के साथ बैठी हैं। मैंने फोन देखा। पी.जी.आई का नंबर था। मैंने उसी नंबर पर फोन मिलाया। फोन किसी ने नहीं उठाया। दो-तीन मिनट बाद उसी नंबर से फिर फोन आया। पूछा गया, "क्या चंद्रावती सिंह का घर है"? मैंने कहा, "हाँ"। उधर से आवाज आई, "चंद्रावती सिंह की कोविड रिपोर्ट पॉजिटिव है"। फोन रख दिया गया। कान सुन्न पड़ गए। क्या करना चाहिए? दो मिनट शांति से बैठा रहा__। फिर सभी बहनों को संदेश भेज दिया "अम्मा को कोरोना है"। अर्चना को बुलाया। दोनों बच्चों को लेकर नीचे जाने को कहा। अम्मा को कोरोना है, यह उसे भी बता दिया। अम्मा को भी बताया। अम्मा को सिम्मी वाले कमरे में ले गया। पूरा कमरा सैनिटाइज़ किया। अम्मा को कमरा बंद कर अकेले नहीं रख सकता था इसलिए बीच वाले हिस्से में किसी को भी आने-जाने से मना कर दिया था। अम्मा चुपचाप बेड पर बैठी विरक्त आँखों से टुकुर-टुकुर देख रहीं थीं। एक शब्द भी नहीं कहा था, उन्होंने। बस, जो बोलता जाता करतीं जातीं। उन्हें मास्क पहना कर, बेडरूम, स्टोररूम, बाथरूम, डाइनिंगरूम, किचन, सब सैनिटाइज़ किया। फिर अम्मा से कहा, "अम्मा, पापा को चाय बनाकर और बच्चों को दूध वगैरह देकर फिर आता हूँ"। अम्मा बोलीं, "जाओ"। किचन में जाकर चाय बनाई, दूध गर्म किया।

ऊपर कमरे में पापा को चाय, नाश्ता दिया और नीचे अर्चना और बच्चों के लिए चाय और दूध वगैरह ले गया। अपने लिए चाय लेकर जैसे ही बैठा, उसी नंबर से फिर फोन आया, "संदीप सिंह"? मैंने कहा, " जी, बोल रहा हूँ"। "आपकी कोविड रिपोर्ट पॉजिटिव है"। चैन की साँस ली। अम्मा को अकेले नहीं रहना पड़ेगा। अर्चना को बुलाया। उसे सब बताया। मैं और अम्मा, सिम्मी वाले कमरे में बंद। ।आइसोलेशन । दोनों बच्चे, अर्चना और पापा बाहर। पापा को नीचे ना आने का सख्त निर्देश दिया गया था। दोनों बच्चे नीचे रहेंगे, अपने कमरे में। अर्चना, केवल खाना बनाने किचन में आएगी । ८६१ए आशीर्वाद सन्न रह गया । हवाएँ मुस्कुरा रहीं थीं। बहुत होशियार बनते थे! अब भुगतो। खामोशी दबे पाँव आई थी और पसरती गई, पसरती गई। बस फोन की घंटियाँ घनघनाती जा रहीं थीं। एक फोन, गुडंबा से, एंबुलेंस के ड्राइवर का भी था। उसने नाम, पता पूछा और कहा, "हम आ रहे हैं, दोनों मरीजों को ले जाने"। मैंने कहा, "हमारे अंदर ऐसे कोई लक्षण नहीं हैं। हम अस्पताल नहीं जाएँगे, घर में ही अलग कमरे में चौदह दिन रहेंगे"। उसने कहा, "सर, हमें निर्देश है, हम आ रहे हैं"। रात ग्यारह बजे, एंबुलेंस लेकर वे पहुँच गए। मैं नीचे आया। मैंने उनसे कहा, "हमें अस्पताल नहीं जाना है, हम घर पर ही आइसोलेशन में हैं"। उन्होंने कहा, "आपको पुलिस के सामने लिख कर देना होगा"। मैंने कहा, "मैं इसके लिए तैयार हूँ"। उन्होंने पुलिस बुलाई। मैंने पुलिस वालों से भी यही कहा कि हमें संक्रमण के कोई लक्षण नहीं हैं । उन्होंने पूछा, फिर हमें पता कैसे चला कि कोरोना है? मैंने कहा, "पी.जी.आई में टेस्ट हुआ था"। उन्होंने कहा, "पी.जी.आई क्यों गए थे"? मैंने कहा, "मेरी माँ का वहाँ इलाज चल रहा है"। एक फॉर्म जमीन पर रख दिया और कहा, "इसको भर दीजिए और एक आवेदन दीजिए कि आप स्वेच्छा से, कोविड मैरिज होने के बावजूद, घर में ही आइसोलेशन में रहना चाहते हैं"। मैं अंदर से कागज और कलम लेकर आया क्योंकि वह अपना कागज और कलम देने को तैयार नहीं थे। आवेदन लिखा, फॉर्म भर, उन्हें विदा किया। मानव विकास के रास्ते में खड़े विषाणु ने कहा,

“धरती, अंबर, पाताल नाप लिया, अब मुझे नापो”। ऐसी भगदड़ मची कि सब स्पष्ट हो गया। कबीर की बात मान, सब ने अपना घर तो फूँक दिया मगर कबीर के साथ नहीं गए वापस उसी फुँके हुए घर में लौट आए। जलते घर का मोह नहीं छोड़ पाए।

ऊपर आया। अम्मा जाग रहीं थीं। अम्मा ने पूछा, “कौन था”? अम्मा को सब बताया। अम्मा ने कहा, “हमें ना तो सर्दी, ना जुकाम, ना खाँसी, फिर यह सब कैसे”? मैंने कहा, ”कोरोना लक्षण के साथ और बिना लक्षण के भी होता है। यह स्पर्शोन्मुखी है। अब टेस्ट रिपोर्ट में लिखा है, तो है “।

अगले दिन दिवाली थी ।सुबह आठ बजे फोन आया, सरकारी फोन। परिवार में बाकी सब की भी कोरोना की जाँच होगी। आ रहे हैं । दस बजे के करीब, बेतहाशा शोर मचाती, एक सफेद जीप ,घर के बाहर रुकी। खिड़कियाँ खुल गईं। बालकनी भर गई। सवालिया निगाहें, हवा का कॉलर पड़कर लटक गईं, ” बता ना, क्या हुआ? मेरी कसम”! हवाओं में गप्पों की खुश्बू कितनी उत्तेजक थी। लहरदार चाशनी तैयार थी ।

जीप से पाँच-छह लोग उतरे। उनमें से एक, शायद जो डॉक्टर थे, सर से पाँव तक ढँके थे। कोरोना बचाव दस्ते का अभिन्न अंग। हमारे घर के बाहर कुर्सी पर बिठाकर बारी-बारी सबका टेस्ट हुआ । पापा, अर्चना, युगाँधर, महालय। सब कोविड निगेटिव थे। महालय को छोड़, बाकी सबको कोरोना से बचाव के लिए दवाइयाँ दी गईं। एक ने अगल-बगल झाँकते पड़ोसियों से चिल्ला कर पूछा, “और किसी को जाँच करवानी है”? राम- राम- राम। हवाएँ उनके इस दुर्दांत सवाल पर सन्नाटे में आ गईं। खिड़कियाँ खिन्न हो गईं।बालकनी सुन्न पड़ गईं। टेस्टिंग किट बाहर जलाने लगे तो पड़ोसी आग-बबूला हो गए। “क्या गजब कर रहे हैं, सबको कोरोना फैलाएँगे क्या”? दो मिनट तक सबको समझाने के बाद फिर उसे वहीं जला दिया गया ।

हमारे लिए दवाइयाँ गेट पर फेंक दी गईं। और एक पत्थर के नीचे एक पर्चा दबा दिया गया। कहा, " पर्चा देखकर दवाइयाँ खाइएगा"। जैसे ताव से वे आए थे, वैसे ही ताव से चले गए।

मैंने दवाइयाँ और पर्ची दोनों लीं और ऊपर आ गया। जो दवाइयाँ पर्चे में लिखीं थीं, उनमें से एक भी दवा नहीं थी। मैंने दिए हुए नंबर पर फोन कर बताया कि दी गई दवाएँ और पर्चे में लिखी दवाएँ बिल्कुल अलग हैं"। उन्होंने कहा, "हमें जो दवाइयाँ दी गई हैं, हमने वही दी"। मैंने कहा, "फिर हम ये दवाइयाँ नहीं खा सकते"। वहाँ से फोन काट दिया गया। थोड़ी देर बाद फोन आया कि वो दवाइयाँ बदलने आ रहे हैं। थोड़ी देर बाद वे दूसरी दवाइयाँ फेंक कर चले गए ।

रोज सुबह-शाम, मुख्यमंत्री कार्यालय से फोन आता। तापमान और ऑक्सीजन का प्रतिशत पूछते, बस ।उसी दौरान मुख्यमंत्री कार्यालय से एक दिन फोन पर पूछा गया, "क्या चंद्रावती सिंह का घर है"? मैंने कहा, "हाँ"। फिर पूछा, "क्या उन्हें मुफ्त राशन मिलता है"? मैंने कहा, "नहीं"। "क्यों नहीं मिलता"? उन्होंने लाख टके का सवाल दागा था। गजब की निष्ठा और जिम्मेवारी थी। मुझसे पूछ रहे थे, मुफ्त राशन क्यों नहीं मिलता। व्यवस्था में आम आदमी की इतनी पैठ हो सकती है, सोचा ना था। फिर भी कहा, "यह आप जानिए"। उन्होंने फोन काट दिया ।

दिवाली आई। प्रकाश-पर्व है इसलिए अँधेरे में आई। मुँह छिपाए आई। आने से पहले उसने घर की बत्तियाँ बुझा दीं। एकदम सन्नाटे में आई और बोली, "अब मैं जा रही हूँ"। कब आई, कब गई? नहीं बता सकते। दिवाली के अगले दिन प्रतिभा और शुभ आ गए थे। अर्चना के लिए अकेले सब संभालना मुश्किल था। महालय, युगाँधर छोटे थे। पापा ऊपर ही रहते थे, उन्हें नीचे नहीं आने दिया जाता था। प्रतिभा के आने से अर्चना को काफी सहयोग मिला। एक से भले दो। वैसे भी प्रतिभा इन सब मामलों में काफी कुशल है।

रोज, सुबह उठकर, दोनों कमरे में झाड़ू, पोछा लगाने के बाद कमरे की प्रत्येक वस्तु को सैनिटाइज करता। व्यायाम करने के बाद, नहाता, पूजा करता, अम्मा के लिए बाथरुम में गर्म पानी कर रख देता ।उनके कपड़े आलमारी से निकाल कर देता। उनके नहाने के बाद उनके कपड़े धोकर, डेटॉल से साफ कर कमरे का दरवाजा खोल, बाहर रख देता। प्रतिभा या अर्चना वहाँ से लेकर उसे सूखने को डाल देतीं। उसके बाद अम्मा का और अपना तापमान और ऑक्सीजन प्रतिशत नापता। तक तब तक मुख्यमंत्री कार्यालय से फोन आ जाता। हमारा चाय, नाश्ता, खाना सब दरवाजे के बाहर ऐसे ही रख दिया जाता। दरवाजा खोलकर उसे अंदर से हम ले लेते। खाने-पीने के बाद, सारे बर्तन धोकर सैनिटाइज कर फिर दरवाजे के बाहर उसे रख देते। उन्हें दोबारा धुला जाता। खाली समय में शिवाजी सावंत की "युगंधर" पढ़ता, अम्मा से बतियाता। किसी न किसी का शाम को अवश्य फोन आ जाता। अक्सर सिम्मी और सुमन का। पूरी शाम कट जाती। चौदह दिन पहाड़ नहीं थे। पता भी नहीं चला, पर कभी-कभी महालय दरवाजे के पास आकर खड़ा हो जाता और शीशे से झाँकता, तब लगता दरवाजा खोलकर उसे गले से लगा लूँ।

पन्द्रहवें दिन हम बाहर आ गए। इन चौदह दिनों में हमें एक छींक तक नहीं आई । भूख खूब लगती, डटकर खाते-पीते। इत्मीनान से सोते । चौदह दिन मानो ईश्वर ने उपहार स्वरूप मुझे और अम्मा को दिए थे। जाओ, आराम करो, बहुत थके हो दोनों। लेकिन यह आराम बहुत भारी पड़ा। एक-दो दिन बाद पी.जी.आई फोन कर आने का समय माँगा तो उन्होंने कहा, आइसोलेशन से निकलने के एक महीने बाद, कोरोना टेस्ट की रिपोर्ट लेकर फिर आना है।

एक महीने बाद कोरोना नेगेटिव रिपोर्ट लेकर हम फिर पी.जी.आई पहुँचे। ट्रैस्टुज़ुमैब साइकिल दोबारा शुरू करने। रेजिडेंट डॉक्टर ने डॉक्टर सबा से बात की ।उन्होंने हमें एक बार फिर डॉक्टर आलोक गुप्ता से परामर्श करने को कहा।

कोरोना की दूसरी लहर अत्यंत निर्मम थी। उत्तर-प्रदेश में चिता के लिए लकड़ियाँ सूख नहीं पा रहीं थीं। कब्रिस्तान की मिट्टी कम पड़ने लगी थी। हर गली, हर मोहल्ले से हृदयभेदी चीत्कार, करूण रूदन पागलों सा निकलता और दिन-रात सहम जाते । प्रकृति की उदारता को मनुष्य ने व्यक्तिगत लूटमार का साहित्य बना दिया था। अब प्रकृति मृत्यु की मनुहार बरसा रही थी। लूटने की आवश्यकता नहीं थी, वह लूटने आई थी । हिसाब बराबर करने। गेहूँ, घुन सब पिस रहे थे। चक्की बहुत महीन पीस रही थी। सरकारें हाथ उल्टा कर अपनी पीठ ठोंके जा रही थीं। लोगों की चिता की लौ में सब धुँधला दिख रहा था। अम्मा को रेडियोथैरेपी की जो तारीख मिली थी, वह भी कोरोना की दूसरी लहर की भेंट चढ़ गई। रेडियोथैरेपी विभाग से फोन आया कि इस समय उनकी रेडियो- थैरेपी नहीं की जा सकती।

डॉ अशोक तिवारी भी कोरोना की दूसरी लहर की भेंट चढ़ गए, मगर पता चार-पाँच महीने बाद चला। बगल वाले श्रीवास्तव जी ने बताया। हृदय विदारक समाचार था। मुश्किल से एक किलोमीटर पर उनका आवास था। वहाँ से खबर कब चली और कब यहाँ पहुँची ! कोरोना का आविर्भाव शायद मनुष्य, मनुष्य के बीच बढ़ती दूरियों का अहसास दिलाने के लिए ही था। बंद दरवाजे, बंद खिड़कियाँ और बंद होने लगे थे । लाशें उठ रहीं थीं मगर कंधे सब अजनबी ही थे ।प्रकृति कहती रही मुझसे मत खेलो, लोगों ने समझा ये भी खेल का हिस्सा है,और खेले,जी भर खेलै,जब तक जान न निकल गई,खेलते रहे।

ऐसे में इतना जोखिम उठा कर, कोरोना टेस्ट करवाया, अम्मा का भी, अपना भी। पी.जी.आई लेकर गया ।सशंकित मन प्रत्येक चरण पर कहता, “आगे क्या है, पता नहीं। रहने दो, जाने दो। वहाँ से कौन सी खबर निकल कर आ जाए, कह नहीं सकते” ।हृदय के विपरीत ध्रुव एक साथ आवाज देते। किसकी सुनूँ?

ताकत ही सबसे बड़ी कमजोरी होती है। प्रकृति का नियम है। जो पानी घर को मजबूती देता है, वही उसका सर्वनाश भी कर देता है। जीवन की लालसा ही, मृत्यु का कारण है। मनुष्य की ताकत ही उसे कमजोर बनाती है। अम्मा मेरी ताकत थीं और वही मुझे कमजोर बना रहीं थीं।

डॉक्टर आलोक गुप्ता ने पुनः सारी जाँचें करवाने को कहा। अम्मा अब ऊब चुकीं थीं। ऐसे वातावरण में, जहाँ स्वयं की श्वासों की निष्ठा पर प्रश्नचिन्ह हों, अम्मा को भीड़-भाड़ वाली जगह पर बार-बार ले जाने में हिचक होती। भय की परछाइयाँ साथ चलतीं। फिर भी अम्मा ने सारी जाँचें करवाईं। पर अब अम्मा को बहुत मनाना पड़ता, अम्मा जल्दी तैयार नहीं होतीं थीं, डॉक्टर के पास जाने को या जाँच करवाने को। रिपोर्ट लेकर मैं आलोक गुप्ता के पास फिर गया।उन्होंने रिपोर्ट देखकर कहा, "अपनी माता जी को एक बार फिर लेकर आइए"। अम्मा को फिर किसी तरह मना कर ले गया। डॉक्टर गुप्ता ने फिर से अम्मा का मुआयना किया और बताया दाहिनी काँख में नई गाँठ उभर रही है। ये वही क्षेत्र था, जहाँ गाँठ की आशंका डॉक्टर सबा को प्रारंभ से ही डरा रही थी।उस समय वहाँ गाँठ नहीं थी, अब? उन्होंने कहा टैमौक्सिफेन कोई फायदा नहीं कर रही है। उन्होंने ट्रैस्टुज़ुमैब के साथ एक और इंजेक्शन लिखा फुल्वेस्ट्रेंट और ऑस्टियोपोरोसिस के लिए एक और इंजेक्शन लिखा प्रोलिया। यह बीमारी रक्तबीज सी होती है। फैलती जाती है। डॉक्टर हार नहीं मानते। उनकी कर्तव्य के प्रति निष्ठा है। आखिरी वक्त तक वे दवाइयाँ देंगे पर मैं दुविधा में था। कोरोना की दूसरी लहर का प्रकोप और जीवन के अंतिम चरण में अम्मा का संघर्ष। दोनों के बीच से अम्मा को ले जाना था, एक सामान्य जीवन जी लेने की चाहत किसमें नहीं होती? वही सुकून अम्मा को देना चाहता था।"नहीं! तुम थक चुके हो, डरपोक! अपने आराम के लिए अम्मा का इलाज करने से कतरा रहे हो"? "नहीं !अस्पताल में पाइप, इंजेक्शन और दवाइयों के मकड़जाल में छटपटाती अम्मा को मैं नहीं देख सकता"। अम्मा ने मेरी तरफ देखा। मैंने कहा, "सब ठीक है"। गाड़ी पर और कोई बात नहीं हुई। एक साथ,

मेरे अंदर के कई रूप, मुझे डराते, धमकाते, समझाते, धिक्कारते, उपहास करते, विनती करते। सब, स्वयं की सलाह को अंतिम सत्य मान रहे थे ।गाड़ी घर की तरफ जा रही थी, मैं अनगिनत दिशाओं की तरफ जा रहा था। जीने का दुख ही तो मृत्यु है। जीवन उसी राह पर चलता है ।कोई भी हो। गति धीमी हो या तीव्र, यात्री नहीं, गंतव्य यात्री तक पहुँचेगा। उसका समय, गति, स्थान, सत्य है। हम अपनी चाल धीमी करने का प्रयास करते हैं ताकि उस तक पहुँचने में समय लगे। सोची-समझी मूर्खता है। वह हम तक पहुँचती है और निकल पड़ती है अनंत यात्रा पर ।उस यात्रा का रहस्य, ईश्वर तक भी नहीं पहुँच पाया है, महात्माओं की बिसात क्या? इसी जीवन-मृत्यु की यात्रा के विभिन्न पड़ाव हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश। आप नहीं मानेंगे पर समय, मनुष्य के भीतर इन तीनों को उभार देता है ।वह मिलकर भी नहीं मिल पाते। गाड़ी रुक जाती है। घर आ गया। घर अम्मा का कर्म क्षेत्र। कितनी लंबी लकीर खींचता गया । भैरोपुर, उतुरी, कानपुर हिमाचल प्रदेश, कोलकाता, बोकारो, मसरिया, झाँसी, महोबा और लखनऊ। यात्रा जारी है। ८६१ ए आशीर्वाद चहक उठता है, चंद्रावती आ गईं।

निश्चय कर लिया गया, अम्मा को सामान्य जीवन जीने का अधिकार था। उनका संघर्ष, उनका अपना संघर्ष है। एक जीवट व्यक्तित्व, उधार की बैसाखियाँ नहीं पसंद करता । अम्मा, बिल्कुल नहीं। हमेशा कहतीं, "हम अपने अंतिम समय तक अपने हाथ-पैर के भरोसे रहना चाहते हैं"। तब अम्मा के अंदर विशुद्ध चंद्रावती मुखरित होती। स्वाभिमान से लबरेज, नितांत एकल स्वरूप में । किसी के हिस्से में बँटी नहीं रहतीं। अम्मा की दवाइयाँ कम कर दी गईं। केवल बेहद जरूरी दवाइयों को जारी रखा गया ।

५९.

विकी का विवाह तय हो गया था। अम्मा बेहद उत्सुक थीं। इसके पहले २०१९ में गोल्डी का विवाह हुआ था। उसमें जाने के लिए भी अम्मा बेहद उत्सुक थीं । प्रतिभा, सुमन, सुधा दी, सिम्मी, सब ने काफी दिन पहले से ही तैयारी की थी। अम्मा का तीसरी पीढ़ी के प्रथम विवाह में सम्मिलित होने का उत्साह अभूतपूर्व था। वैसे भी गोल्डी का बचपन, अम्मा की अन्य अनुभूतियों की निधि में संचित था। दीदी, महीनों पहले से, अम्मा को सहेजे थीं। किंतु मैं सशंकित था। अम्मा के खान-पान को लेकर। अम्मा बेहद संकोची स्वभाव की थीं। उनका खाना- पीना और दवाइयाँ नियत समय पर हो पाएँगी या नहीं, इस बात में संदेह था। विवाह के घर में हजारों काम होते हैं। व्यस्तता की कोई सीमा नहीं होती । किंतु अम्मा का उत्साह देखकर उन्हें रोकने का मन नहीं था, फिर भी मैंने अपनी शंका जाहिर कर दी। अम्मा ने कहा, "हमको कुछ नहीं होगा। अब हम, तुम लोगों के कहने पर नहीं चलेंगे। हमारा जो मन होगा हम करेंगे। सब की शादी हो गई है अपना-अपना घर संभालो। हम किसी को बैठ कर रखाएँगे थोड़े ही"। जरूरत से ज्यादा ध्यान रखने पर अम्मा बौखला जातीं। अम्मा के कहने का अर्थ मैं समझता था और अम्मा से लड़ता और कहता, "तम्ही तो मेरी शादी के पीछे पागल थी। तुम्हीं लोगों ने जबरदस्ती की, नहीं तो, मैं तो शादी के लिए तैयार नहीं था"।ये नोंक-झोंक अक्सर अम्मा से होती और अंततः एक-दो घंटे का मौन हमारे संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर जाता। अम्मा को लगता था, मैं उनका ध्यान रखने के चक्कर में अपने वैवाहिक दायित्वों को पूरा नहीं कर रहा जबकि अम्मा जानतीं थीं ऐसा नहीं था। अम्मा के अंदर यह अपराध-बोध क्यों और कब आया, मुझे नहीं पता पर अम्मा बार-बार मुझे इस बात का अहसास दिलाने का प्रयास, अपने व्यंग्य-बाणों से करतीं। कई बार अम्मा-पापा उतुरी जाकर रहने की बात करते, गुस्से में मुझे कहना पड़ता, "तो इस घर को ताला लगाकर जाइए या जिसे बुलाना हो उसे बुलाकर घर सौंप

जाइए।मैं यहाँ नहीं रहूँगा”। इसके बाद फिर सब शांत हो जाता। कई बार बेहद बेचैनी होती, क्या अम्मा-पापा खुश नहीं हैं? हर तरफ से प्रयास करता पर गाहे-बगाहे यह मुद्दा उठ ही जाता। कभी-कभी लगता बर्तन को और कितना आकार देना है, जो कुम्हार इतनी निष्ठुरता से चोट कर देता है ?

बहरहाल, गोल्डी के विवाह के दो-तीन दिन पहले, अम्मा की तबीयत खराब हो गई। अम्मा नहीं गईं। कोई नहीं गया। अम्मा की गिनी-चुनी इच्छाओं में से एक और इच्छा अधूरी रह गई। अम्मा की उदासी मेरे मन में स्वयं के अक्षम होने का विश्वास और दृढ़ बना देती। कोशिश करता, पूरे मन से कोशिश करता पर कोशिश कारगर नहीं होती। कभी-कभी लगता अम्मा की अधूरी आकांक्षाओं को निमित्त बनाकर भगवान ने मुझे उनके इकलौते पुत्र के रूप में, अम्मा का श्राप बना दिया। इस बार मैंने कुछ नहीं कहा। विकी के विवाह में सम्मिलित होने सुमन, आदित्य, आशू, प्रतिभा, गुड़िया, सब आए थे। सुबह होते ही सब नहा धोकर सुधा दी के यहाँ चले जाते। एक दिन। दो दिन। तीन दिन। सुमन ने एक दिन सुबह-सुबह प्रतिभा से कहा, ”जल्दी चलिए, सुधा दी वहाँ अकेली हैं”। अम्मा, वहीं बेड पर बैठी, टुकुर-टुकुर उन सबको देख रहीं थीं। सुमन, प्रतिभा को दूर बैठी सुधा दी के अकेलेपन का अहसास खाए जा रहा था, एक हाथ की दूरी पर बैठी, अम्मा की आँखों की रिक्तता नजर नहीं आ रही थी। खूब जोर से चिल्लाने का मन हो रहा था। अम्मा अपनी बेटियों पर जान छिड़कती थीं। चाहतीं थीं वो आएँ, उनसे बोले- बतियाएँ। तीन दिन से यह सब सुबह जाते और रात में लौट के आते। उम्र के इस पड़ाव में, एकांत की विभीषिका, क्या इन सब की समझ से परे थी? सिम्मी का फोन आया था, पूछा, “कहाँ हैं सब”? मैंने जब बताया तो उसे भी आश्चर्य हुआ, उसने कहा, “यह तो गलत बात है”।

अम्मा की नजर में, उनका दुख, उनकी पीड़ा, सब गलत बात थी। अम्मा जब रोती थीं न, उनके आँसू नहीं गिरते थे। सब रोक लेतीं थीं। बस, आँखें लाल रहतीं। अम्मा का रोना बहुत कम लोग पहचानते थे। पर जब बोलतीं, एक-एक शब्द रुदन परोसता, हाहाकार बरसता, कलेजा छलनी हो जाता। शब्द भारी

भरकम नहीं होते, मगर अर्थ? उनका निर्वहन मुश्किल हो जाता। जब शरीर रोता है तो आँसू गिरते हैं। जब आत्मा रोती हैं तो आँसू हाथ खड़े कर देते हैं। इतनी वेदना समाहित करना उनके बूते के बाहर होता है। शारीरिक रूदन भावों का शिष्टाचार होता है ।आत्मा का रुदन, वेदना की असह्य पीड़ा होती है, जो व्यक्तिगत होती है, सामाजिक सरोकार नहीं, इसलिए अम्मा ने उसे किसी से भी साझा नहीं किया। वह चंद्रावती का दुख था, अम्मा का त्याग था ।

विकी के विवाह में सब गए थे। पापा-अम्मा, प्रतिभा, गुड़िया, सुमन, आदित्य और आशू। ना मैं गया, ना अर्चना, ना युगाँधर, न महालय। अम्मा चाहतीं थीं कि बच्चे उनके साथ जाएँ। मैंने नहीं भेजा ।

एक चीज माँ-बाप को अवश्य समझनी चाहिए, जैसे बच्चों के साथ किया गया दुर्व्यवहार, माँ-बाप को पीड़ा देता है, वैसे ही माँ-बाप के साथ किया गया दुर्व्यवहार बच्चों को उतनी ही पीड़ा देता है। माँ-बाप ताउम्र बच्चों के संरक्षक होते हैं, इसमें कोई दो राय नहीं किंतु एक निश्चित समय के बाद यह भार बच्चों को ही उठाना चाहिए। जब माँ-बाप लौट कर अपने बचपन में प्रवेश करते हैं, तब उनका मान-सम्मान बच्चों की ही जिम्मेदारी होती है। माँ-बाप को इसे भी उतनी ही सहजता से लेना चाहिए, जितनी सहजता से वे उम्र के इस धोखे को लेते हैं । उमाशंकर ने, जो सुधा दी के साथ किया, मधुर ने, जो प्रतिभा के साथ किया और आनंद ने जो सुमन के साथ किया, सबका सब अक्षम्य है। अहंकार के किरदार संवेदना का रोल निभाने में असमर्थ होते हैं। अम्मा की वो व्यथा, वो पीड़ा, वो आँसू, सबका सब, आज भी मुझ पर कर्ज है। इसलिए मैं नहीं गया ।

अम्मा, शादी में जाकर खुश थीं। युगाँधर, महालय जाते तो और खुश होतीं पर तराजू के दूसरे पलड़े पर जो कुछ था, वह भी अम्मा का ही था और यकीन मानिए अम्मा की खुशी से अधिक भारी था।

६०..

अब अम्मा अधिकतर समय पापा के साथ ही व्यतीत करतीं। सुबह उठकर पापा के साथ टहलने जातीं। जाने से पहले, दोनों को काढ़ा पीने को दिया जाता। घूम कर आने के बाद चाय पीकर, फिर वो पापा के साथ सबसे ऊपर वाले कमरे में चली जातीं। उनका स्नान वगैरह वहीं होता था। कितना भी, अम्मा को कहा जाता कि यहीं बीच वाले बाथरूम में नहा लें, अम्मा नहीं मानतीं थीं। नहा कर, पूजा कर, फिर नाश्ते के समय नीचे आतीं। नाश्ता कर, अपनी दवाइयाँ खाकर फिर ऊपर चली जातीं। फिर सीधे दोपहर के खाने के समय आतीं। उसके बाद थोड़ी देर आराम करने के बाद, चार बजे के करीब फिर ऊपर जातीं। टीवी देखने। पापा उन्हें समाचार की वस्तु-स्थिति समझाते, फिल्मों में या धारावाहिकों में जो भी घटित हो रहा हो उसकी पृष्ठभूमि समझाने का प्रयास करते हालांकि पापा इन सब में परिपक्व नहीं थे। फिल्मों और धारावाहिकों से नितांत अछूते थे। कभी नहीं देखते थे, पर अम्मा के लिए लगाते थे और साथ बैठकर देखते थे। इस दौरान ही पापा में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिला। पापा अम्मा की हर चीज का ख्याल रखते। अम्मा को अब दाहिना हाथ उठाने में दिक्कत होती थी। पापा कपड़े बदलने में उनकी मदद करते, उनके कपड़े सूखने के लिए फैलाते और सूख जाने पर, वही तह लगा कर रखते। छः बजे शाम को, चाय का समय होता। अम्मा, पापा के साथ नीचे आतीं चाय पीने के बाद अम्मा यहीं रहतीं। पापा भी साढ़े-आठ बजे तक युगाँधर, महालय की पढ़ाई-लिखाई देखते। वास्तव में यह परिवार का समय होता। सब साथ होते। पुरानी कहानियों की मीमांसा होती, बदलते समय का अफसोस। किस्सों के मर्तबान से चटपटे किस्से निकलते और नोएडा से मुंबई और झाँसी तक घूम आते। रास्ते बदलते रहते, कभी मुंबई पहले आ जाता, कभी नोएडा, तो कभी झांसी। सात, साढ़े- सात तक फोन की घंटियाँ बजने लगतीं। अरे, कोई हमे भी

सुनो। और फोन पर हम ऐसे बातें करते जैसे आमने-सामने बैठे हों। बस बातों के केंद्र में अम्मा ही होतीं । सिम्मी रोज फोन करती थी, कभी- कभार सुमन, प्रतिभा । कभी-कभी सुमन, सिम्मी और प्रतिभा का फोन एक के बाद एक लगातार आता। अम्मा ज्यादा देर फोन पर बात नहीं कर पातीं थीं। अम्मा असहज महसूस करने लगतीं तो फोन पर कहतीं, "संदीप से बात करनी है"? फिर फोन मुझे दे देतीं। कभी-कभी कहतीं, "का बात करी, तू ही बात कै ल्या"। मैं हँस देता। पर अम्मा को फोन का इंतजार रोज रहता । अम्मा को मोबाइल चलाना सिखाने की बहुत कोशिश की। उनके लिए अलग-अलग तरह के मोबाइल भी खरीदे पर जिस चीज में अम्मा का दिलचस्पी न हो, उसे उन पर नहीं थोपा जा सकता। सारे मोबाइल कबाड़ हो गए। अंत में कॉर्डलेस फोन पर अम्मा सहज होकर बातें करने लगीं।

अम्मा अब कमजोर हो चलीं थीं। कई बार जब पापा के साथ सुबह टहलने जातीं, चक्कर आता और गिर पड़तीं। कहतीं ऐसा लगता है जैसे कोई घुमाकर पटक देता है। अम्मा अब भूलने भी लगीं थीं। कब किससे फोन पर बात की, याद नहीं रहता था।

अम्मा, उतुरी और भैरोपुर को बहुत याद करतीं। पापा से अक्सर वहाँ चलने को कहतीं। बच्चों की पढ़ाई और पैसों की तंगी के वजह से मैं बार-बार टालता रहा। एक बार अम्मा ने पापा से कहा, "बॉबी को बुला दो, पैसे हम दे देंगे"। पर मैं फिर टाल गया। किंतु अम्मा के अंदर के उद्वेग को देखकर मन कचोटता था।

पापा के कमरे की छत टपकने लगी थी। बरसात में पूरे कमरे में पानी भर जाता था। छत का दरवाजा जर्जर हो चुका था। बीच वाले हिस्से के प्रमुख दरवाजे की चौखट दीमक खा चुके थे। बंद करने की कोई सूरत नहीं थी। बड़ी खिड़कियों के, किचन की कैबिनेट के सारे काँच टूटे थे। पापा के कमरे से जुड़े बाथरूम और सिम्मी के कमरे से जुड़े बाथरूम के दरवाजे बंद करना मुश्किल था। कुल मिलाकर घर की स्थिति या हमारी आर्थिक स्थिति में कौन अधिक

जर्जर था, कहना मुश्किल था। पापा की पेंशन से ही घर चल रहा था। मेरी कमाई नगण्य थी। बच्चे अब बिल्कुल ही नहीं आते थे। अभूतपूर्व रूप से, मैं तिरस्कृत था। ऐसे में घर चलाना बहुत मुश्किल था ।महीना समाप्त होते-होते, दूध भी उधार लाना पड़ता था। अम्मा को क्या यह सब बताता, या पापा को बताता? जो कुछ था, वह उन्ही का था और उनके लिए पर्याप्त था पर जो कुछ उनका था उसमें से तो हम स्वयं के लिए भी खींचतान कर रहे थे । समस्या यही थी। सांत्वना के लिए एक्सप्रेस प्लाजा की दुकान का किराया आता था किंतु जीरा ऊँट के लिए नाकाफी था। कोई कह नहीं सकता था, यह वही परिवार है जो बिग बाजार से तीन-तीन, चार-चार ट्रॉलियों में घर के सामान उठाकर, महीने में दो-तीन बार रॉयल कैफे में खाना खाने जाता था। तीन-चार हजार के फल और सब्जी हर सप्ताह आते। बच्चों के खिलौनों से घर भरा रहता। किसी भी मॉल या दुकान में घुसने से पहले कभी जेब नहीं देखनी पड़ती थी।

पर समय ने कहानी नए सिरे से लिखने की सोची। इस कहानी में रोमांस नहीं था।। २०१९ के अंत से समय ने नई कलम, नई पोथी पर पुराने कथानकों के लिए नए किरदार लिखना आरंभ किया। इसमें रहस्य था, रोमांच था, संघर्ष था, बेबसी थी, क्रोध था, अपमान था, पीड़ा थी। समय अपनी लेखनी पर भाव-विभोर था, किंतु कभी यह स्पष्ट नहीं कर पाया कहानी में यह नया मोड़ क्यों लाया? घमंड जैसी कोई चीज हमारे पूरे घर में शायद कभी शह नहीं पाती थी। जो जैसा था उसी में से हँसी चुरा लेते। हँसते अब भी थे हम, और खुलकर हँसते। इतना हँसते कि समय खिसिया जाता और दो-चार नए कठिन प्रकरण लिख डालता। हमें तो वो निभाना ही था पर समय हमारे लिए स्वयं को क्यों बदल ले रहा है, वह हम नहीं समझ पाए। वह हमें नहीं बदल पाया। परिस्थितियों को बदल दिया। बस इसी बात से खीजा समय, एक-एक कर सारे दरवाजे बंद कर रहा था। पर कहीं ना कहीं से चोर रास्ता निकल ही आता और हम उससे बाहर आ जाते ।

इस बार भी चोर रास्ता मैंने ढूँढ़ ही लिया और हम उतुरी के लिए निकल पड़े। तय किया गया, पहले भैरोपुर उसके बाद फिर उतुरी जाएँगे।गाड़ी, बॉबी की ही थी। बॉबी साथ में ही था, उसके साथ रहने पर हम निश्चिंत रहते थे। एकदम परिवार के सदस्य जैसा। सुल्तानपुर में हमारे रिश्तेदारों के यहाँ भी वह परिवार का अभिन्न अंग ही समझा जाता है।

६१

भैरोपुर

सालों बाद भैरोपुर जा रहे थे। अर्चना, युगाँधर और महालय पहली बार भैरोपुर जा रहे थे। पहले जब भी कोई भैरोपुर जाने की बात करता, अम्मा क्रोधित होतीं। अम्मा नहीं चाहतीं थीं, भैरोपुर की आर्थिक विपन्नता सबके समक्ष हो।जो था, जितना था, जैसा था, अम्मा को स्वीकार था।दया और सहानुभूति की अपेक्षा, न अम्मा ने कभी किसी से की, न उसका थोपा जाना स्वीकार किया।

भैरोपुर बहुत छोटा और आर्थिक रूप से काफी पिछड़ा गाँव है। नाना, कामता प्रसाद सिंह के एक भाई और थे रामदत्त सिंह। नाना के पिता जमादार सिंह गाँव के संपन्न व्यक्तियों में गिने जाते थे। नाना ब्रितानी सेवा में मुख्य बावर्ची थे। अच्छी आमदनी थी। घर की खेती भी प्रचुर थी। अपनी सेवाकाल में नाना रंगून में भी कुछ दिन रहे थे। नाना खाने-पीने के शौकीन थे। अम्मा बतातीं थीं, दाल में ढेर सारा घी डलवाने के बाद, वह कटोरी में अलग से घी लेकर खाने बैठते। काफी आकर्षक डील-डोल था। उनका पहला विवाह, फैजाबाद के महाराजीपुर गाँव की कन्या से हुआ था, जिससे उनकी दो पुत्रियाँ हुईं, चंद्रावती और विमला। अम्मा की उम्र महज चार-पाँच वर्ष की रही होगी, जब उनकी सगी माता का देहांत हुआ।

नाना अधिकतर बाहर रहते थे। घर में दो छोटी बच्चियाँ थीं। नाना ने दूसरा विवाह किया। कटरा गुलाब सिंह, प्रतापगढ़ के पास के गाँव, कटरा मेदिनी के धाकड़ हरीबख्श सिंह के पुत्र छोटकू सिंह की बेटी राधारानी सिंह से उनका दूसरा विवाह हुआ।यह वह दौर था, जब राजपूत नाक पर मक्खी बैठने ना देते। सिर पर साफा और रूआबदार मूँछों की पहचान थे, ठाकुर। बात की बात में

तलवारें निकल आतीं और सिर उड़ा दिए जाते ।एक जुबान पर जान कुर्बान कर दी जाती। ऐंठ ऐसी होती कि घर फूँक तमाशा चलता। हरि बख्श सिंह, छोटकू सिंह और बड़कू सिंह की तूती बोलती थी। शर्त जीत गए तो सामने वाले की नाक काटकर कौवे को खिला दी। सनक में ऊँट को कोठे पर चढ़ा दिया।

राधा रानी जब ब्याह कर आईं, नाना की दोनों बच्चियों का भार उन पर था। पर अम्मा को कभी सौतेलेपन का अहसास नहीं हुआ। राधारानी ने अपने बच्चों की तरह उन्हें पाला। दूसरे विवाह से नाना के तीन संतानें हुईं, विद्या मौसी, भुल्लर मामा(महेंद्र प्रताप सिंह)गुड्डा मौसी(माधुरी सिंह).अम्मा बतातीं थीं, नाना जहाँ भी जाते, कुछ ना कुछ विशेष खरीद कर लाते। घर में एक बारात भर का सामान था। और तो और बड़े-बड़े चँवर भी रखे थे ।

अम्मा के विवाह के कुछ साल बाद, नाना ने विद्या मौसी का भी विवाह कर दिया। भैरोपुर के पास ही नौगंवा गाँव में रामचंद्र सिंह से मौसी का विवाह हुआ। उनके बड़े भाई, सहदेव सिंह, सुल्तानपुर में शिक्षा विभाग में डिप्टी इंस्पेक्टर तैनात थे। पापा, महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज में, उन दिनों पढ़ाते थे। रामचंद्र सिंह विवाह के बाद प्राइमरी सरकारी विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हुए ।पापा से मिलने सुल्तानपुर भी आए थे। किंतु विवाह के सात वचनों की संपूर्णता के चौथे-पाँचवें वर्ष में ही रामचंद्र सिंह की लू लगने से मृत्यु हो गई । उनकी कोई संतान नहीं थी। मौसी वापस भैरोपर लौट आईं। एक ही स्थिति के, दो अलग-अलग निष्कर्ष, समकालीन ही थे ।हमारी बड़की माई भी कम उम्र में विधवा हुईं थीं किंतु उन्हें हमारे आजी- बाबा ने कभी उपेक्षित नहीं रखा। ससुराल में ही रहीं। ससम्मान ।उनके भी कोई संतान नहीं थी। विद्या मौसी भी समय के इस कुचक्र में फँसी किंतु ससुराल पक्ष ने हाथ खींच लिए। समय किरदार के हिसाब से स्याही और शब्दकोश दोनों बदल लेता है। कर्मों का फल क्या होता है ? कुछ नहीं। सिर्फ कर्म होते हैं, बाकी भाग्य होता है। साहित्यिक चुनौतियाँ, यथार्थ की चुनौतियों की तुलना में बेहद हल्की और

लिजलिजी होती हैं। बीस-पच्चीस ईंटों को पीठ पर लाद, दिन भर, तीसरी-चौथी मंजिल तक पहुँचाने वाले के कर्मों का फल क्या बस एक मुट्ठी चावल होता है ? झुक कर जूते के फीते तक बाँधने में असमर्थ धन्ना-कुबेरों के कर्म का फल छप्पन भोग होता है क्या? अगला-पिछला कुछ नहीं होता। कर्म अपने रास्ते चलता है, भाग्य अपने रास्ते ।गीता में कर्मों के फल का विश्लेषण नहीं है, बस कर्म हैं। गीता में फलों के विश्लेषण को हाथ भी नहीं लगाया, कृष्ण ने, क्योंकि वे कर्म योगी थे, भाग्य से वो भी नहीं जीत सके।

विधवा होने के उपरांत, मौसी भैरोपुर में ही रहने लगीं। मौसी, भुल्लर मामा की अपेक्षा अधिक कर्मनिष्ठ और चिंतनशील थीं। जब हम कलकत्ता में थे, नाना का निधन हो गया था। अम्मा बतातीं थीं, नाना की पीठ पर एक बड़ा फोड़ा हुआ था, वह कभी ठीक नहीं हो पाया। शायद उन्हें भी कैंसर था। कभी कोई जाँच नहीं हुई इसलिए यकीनी तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। अंततः उन्हें फालिस मार गया और इस दौरान उनकी मृत्यु हो गई ।घर की खेती और नाना की पेंशन ही विद्या मौसी, भुल्लर मामा और गुड्डा मौसी के जीवन का भरण पोषण करती ।

गुड्डा मौसी विवाह योग्य थी।

उनका विवाह, बात की बात में, उतुरी में ही तय हो गया। उस समय हम उतुरी में ही थे । दोपहर का समय था। पापा ने लंबरदार सूरजू सिंह के मझले पुत्र विनय सिंह से गुड्डा मौसी के विवाह की बात चलाई। विनय सिंह के बड़े भाई रामकुमार सिंह जो मुंबई में रहते थे, उन दिनों उतुरी में ही थे ।उन्हें बुलाया गया उनके सामने जब प्रस्ताव रखा गया। उन्होंने कहा, "काका, हम आपसे अलग नहीं है। जो आप कहें वह करने के लिए तैयार हैं"। बात ही बात में पंडित बुलवाए गए। नाम के हिसाब से, नक्षत्रों की गणना पर विचार कर पंडित जी ने कहा, "उत्तम"। लो जी, दो घंटे में, तपती धूप में विवाह तय। इससे अधिक सरल प्रक्रिया क्या होती ? किंतु अम्मा सशंकित थीं। पापा से कहतीं, "हम

इतनी बड़ी जिम्मेदारी नहीं लेंगे, कल को कुछ हुआ तो तुम ही जिम्मेदार माने जाओगे"।

पर विवाह हुआ। हम घराती भी थे, हम बाराती भी। उतुरी में हमारे घर बिल्कुल आमने-सामने ही हैं। उतुरी के रिश्ते से विनय हमारे बड़े भाई थे और भैरोपुर के रिश्ते से मौसा। हम सब विवाह के पहले ही, अम्मा के साथ भैरोपुर पर आ गए थे ।पापा बारात में आए थे । विवाह सद्भावपूर्ण माहौल में संपन्न हुआ। विनय के पास अच्छी खेती और जुझारू व्यक्तित्व था। खेती में वह बहुत मेहनत करते और उसी हिसाब से उनकी पैदावार भी थी। थोड़ी बहुत खींचतान के अलावा उनका वैवाहिक जीवन सफल है। आज उनके दो जवान बेटे अंकित और शिवा हैं। अंकित वहीं अपनी खाद की दुकान चलाते हैं। उनका विवाह शिल्पी से हुआ, उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई। शिवा नौकरी की तलाश में हैं। अंकित का जब विवाह हुआ था, अम्मा जाना चाहती थीं किंतु कोरोना की वजह से नहीं जा सकीं। कुल मिलाकर अम्मा की आशंका निर्मूल सिद्ध हुई।

मामा का विवाह इंद्रावती से हुआ, जो पास के ही एक छोटे से गाँव, डाड़ी कै डिहवा से थीं। अम्मा, मामा को लेकर बहुत चिंतित रहती थीं। मामा स्वभाव से आलसी थे। उन्हें पत्नी भी वैसी ही मिली। दोनों ही गैर- जिम्मेदार थे। खेती-बाड़ी विद्या मौसी ही देखतीं थीं। धीरे-धीरे वहाँ की आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती गई। मामा की दो बेटियाँ थीं, आरती और प्रार्थना और दो बेटे। मामा बुरी संगत में पड़ गए थे। शराब वगैरह पीने लगे थे। वह तो विद्या मौसी थीं किसी तरह जर्जर किश्ती को खे रहीं थीं। इसी बीच नानी को भी लकवा मार गया। सुल्तानपुर जिला- अस्पताल में लाया गया। अम्मा -पापा लखनऊ से गए थे। अम्मा बताती थीं, उनके हाथ में, हाथ वाला पंखा दिया जाता तो उसे डुलाती रहतीं। बस इतनी ही चेतना थी। जिस दिन अम्मा-पापा वहाँ गए, उसके दो-एक दिन बाद ही नानी का निधन हो गया।

मामा की बड़ी बेटी, आरती का विवाह विनय ने तय करवाया था। सब के आर्थिक सहयोग से आरती का विवाह हो गया। अम्मा ने अपनी तरफ से सोने की चेन और कुछ नकद पैसे दिए थे। कहने को आरती का पति मुंबई में काम करता था, विवाह के बाद उसके दुर्गुण सामने आने लगे। बेहद शराबी व्यक्ति था। आरती के विवाह के सारे जेवर बेच दिए। काम-धाम छोड़ दिया। आरती गाँव में, अपनी ससुराल में ही रहती है। उसका एक लड़का है, जो भैरोपुर में मौसी के पास ही रहता है। वहीं पढ़ता है। प्रार्थना के विवाह की जानकारी हमें एक साल बाद मिली। मौसी ने बिना किसी को बताए उसका विवाह कर दिया था। कारण क्या था, कोई नहीं जानता। अम्मा बहुत नाराज हुई थीं। गुड्डा मौसी को फोन किया तो पता चला, उन्हें भी इस विवाह का आमंत्रण नहीं मिला था। प्रार्थना का विवाह, मामा के निधन की बाद ही किया गया था। मामा को शराब की बुरी लत लगी थी। एक बार उनके दाहिने हाथ ने काम करना बंद कर दिया था। लखनऊ में, लाल अस्पताल में उनका इलाज हुआ था। डॉक्टर ने जो दवाइयाँ और व्यायाम बताए, उनके प्रति मामा बेहद लापरवाह रहे। कुछ दिन बाद, पुनः शराब का सेवन आरंभ कर दिया। तीन-चार साल बाद फालिस ने फिर आक्रमण किया। अब की असर घातक था ।बात भी नहीं कर पा रहे थे। पापा-अम्मा, उन्हें देखने सुल्तानपुर जिला अस्पताल गए थे। उसी दिन ग्लोब हॉस्पिटल के डॉक्टर पुनीत से मैंने, डॉक्टर तिवारी की सलाह पर, बात की। उन्होंने मरीज को लाने को कहा। मैने शाम को, पापा को फोन कर किसी तरह मामा को लखनऊ लेकर आने को कहा। अगली सुबह, मामा नहीं रहे। अम्मा के लिए यह अत्यंत दुखद घटना थी। अम्मा, मामा के लिए सदैव चिंतित रहतीं थीं। उन्होंने, मामा से, अपने एक लड़के को, यहाँ लखनऊ, हमारे पास भेज देने की विनती भी की थी ताकि वह पढ़- लिख सके। मामा अपने एक लड़के को लेकर ,लखनऊ आए भी, किंतु लड़का यहाँ रुकने को बिल्कुल तैयार नहीं था। रोने लगा, कहा, “भाग जाऊँगा”। मामा को उसे वापस ले जाना पड़ा।

भैरोपुर की जिम्मेदारी मौसी उठा रही हैं। मामा के निधन पर अम्मा भैरोपुर गईं थीं। उसके बाद अब जा रहीं थीं। तब और अब की अम्मा में काफी अंतर था। तब अम्मा सशक्त थीं, अब अशक्त।शंकरगंज चौराहे से भैरोपुर को जाने वाली सड़क काफी ऊबड़-खाबड़ थी। गाड़ी में झटके लग रहे थे। अम्मा क्रोधित हो गईं। मुझसे कहने लगीं, "कहाँ लेकर जा रहे हो, हमको ?यहीं उतार दो हमको"। बहुत समझाने पर शांत हुईं।

काफी पूछते-पाछते हमें अपना ननिहाल मिला किंतु उसके सामने एक विकट समस्या खड़ी थी। घर तक पहुँचने के लिए डेढ़ फीट गहरा गड्ढा पार करना था जिसे देखते ही अम्मा पुनः भड़क गईं।

कहने लगीं, "कहाँ लेकर आए हो? हम नहीं जाएँगे।संदीप, हमको वापस ले चलो, नहीं तो हम यहीं जान दे देंगे। भले होइ जाब्या सब"। विद्या मौसी वहीं खड़ी थीं।ये सब देख रोने लगीं। बोलीं, "बहिनी, हम बिद्दा हईं। पहिचानू नाय" ?

अम्मा ने कहा, "पहचान क्यों नहीं रहे"? अम्मा को कंधे का सहारा देकर गड्ढा पार करवाया। अब अम्मा संयमित थीं। आँगन में तख्त और दो-तीन खटिया पड़ीं थीं। हम वहीं बैठ गए।

मौसी ने आँगन और दो-तीन कमरे पक्के करवा लिए थे। दरवाजे पर भैंस भी बँधी थी । मौसी की कर्मठता ने मामा की गृहस्थी और उनके बच्चों का जीवन बचा लिया था। मामा के निधन के बाद, मामी को उनके मायके वाले ले गए थे और जमीन-जायदाद में हिस्सा पाने के लिए मुकदमा दायर किया था। मौसी ने तब भी हिम्मत नहीं हारी थी। मुकदमा लड़ा, किंतु मामी के परिवार के स्वार्थ की कोई इंतहा न थी। मामी की तबीयत बहुत खराब हो गई थी। उनका इलाज कराने की बजाय, मायके वालों ने उन्हें भैरोपुर में लाकर घर के सामने छोड़ दिया था। कौन कहता है, आदमी गुफाओं से निकल आया है? गुफाओं को अपने कंधे पर ढो रहा है और सारा बनैलापन खीसें निपोरे, हमारे इर्द-गिर्द

शालीनता की भेड़चाल चल रहा है। कुछ दिन बाद मामी का देहांत हो गया। कमर से झुक गईं थीं, मौसी, पर मन की दृढ़ता अटल थी। पैर में गठिया था, पर दुर्घर्ष परीस्थितियों की गाँठें खोलने का माद्दा था। गाँव में वैमनस्य है। जमीन का जहर फसलों से अधिक लहलहाने लगा है। रिश्तेदारों के बीच खिंची दीवारें सीमेंट और ईंटें ओढ़ कर खड़ी हैं। पूरे गाँव के विरोध के बावजूद छोटे बेटे का विवाह मंदिर में ही करवा दिया। पूरा गाँव विरोध में खड़ा था, मौसी अकेली थीं। मामा का बड़ा बेटा बाहर कमाता है। खेती, कुछ, खुद करवाती हैं, कुछ अधिया पर दे रखी है। चौहान की बेटियाँ ऐसी-वैसी नहीं होतीं। जब मैं पिछली बार आया था, घर के नाम पर बस एक कच्ची मिट्टी की कोठरी थी। अच्छा लगा, देखकर कि मौसी ने सबके लिए पक्की छत का इंतजाम कर दिया था।

महालय पहली बार किसी गाँव में आया था। उसे अच्छा लग रहा था। बाहर कड़ी धूप होने के बावजूद, वह खुले में खेल रहा था। ऐसा खुलापन और शांत परिवेश शहर में नहीं मिलता। शहर का शोर स्वयं बोलता है, बाकी सब को शांत रखता है।

पापा मौसी से सब का हाल-चाल पूछे जा रहे थे। उनकी जान-पहचान की कोई सीमा नहीं थी। अम्मा केवल सगे-संबंधियों के बारे में पूछताछ कर रहीं थीं। पर सगे-संबंधी अब रहे कहाँ? ना उनके घर किसी का आना-जाना था, ना वे किसी के घर आते-जाते। जमीन- जायदाद के बँटवारे के साथ जमीर और इमदाद भी बँट जाते हैं। अम्मा, मौसी के लिए और मामा की बहू के लिए साड़ियाँ लेकर आईं थीं। चलते समय अम्मा ने कुछ लिफाफे सबके हाथ में रखे और विद्या मौसी से बोलीं, “तबीयत ठीक नहीं रहती है। अब जब तबीयत ठीक हो जाएगी, फिर आएँगे”। समय ने लिखना बंद कर दिया। “यही बार, आखिरी बार, चंद्रावती” ! समय फुसफुसाया, पर अम्मा नहीं सुन पाई। अम्मा अब ऊँचा सुनतीं थीं।

६१.उतुरी।

वहाँ से सीधे हम उतुरी के लिए निकले। अम्मा बहुत दिनों बाद जा रहीं थीं। सुल्तानपुर से कुछ साड़ियाँ और कपड़े लेने थे। पापा वगैरह जीजा के यहाँ रुके थे। पयागीपुर चौराहे के पास, शंकर कॉलोनी में ही, जीजा ने घर बनवाया था। उनके संघर्षों की भी अनूठी कहानियाँ हैं। कसौटी पर कसा गया सोना खरा ही होता है ।आज, उनके सब बच्चे, अच्छे पदों पर नौकरी में हैं। दीदी सरकारी प्राथमिक शाला में पढ़ातीं हैं। जीजा, महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज, सुल्तानपुर में पढ़ाते थे। घर काफी बड़ा है। स्वेद कणों के मुक्ताहार बाजार में नहीं मिलते, संघर्षों की जमीन पर तैयार होते हैं।

कुछ देर दीदी के यहाँ रुककर, हम उतुरी की तरफ प्रस्थान किए।

उतुरी का आकार अर्धवृत्ताकार है। आगे से ढलवा फिर ऊँचा और फिर नीचे की तरफ ढलान। उतुरी बजगौती,सोमवंशी ठाकुरों का गाँव है। कुछ लोग यहाँ पर स्वयं को बरियार शाह का वंशज मानते हैं, जिसकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है ही नहीं। बरियार शाह और बरियार सिंह को एक ही समझने की भूल है।

उतुरी की पुस्तक “प्रेम-सागर” के अनुसार दुशाल वंश-वृक्ष, दुशाल सिंह से प्रारंभ होता है जिनके तीन पुत्र, भीकम सिंह, बरियार सिंह और विजय सिंह थे। भीकम सिंह के दो पुत्र चंद्रिका सिंह और शिवचरण सिंह थे। शिवचरण सिंह के बाद की वंशावली दोनों मान्यताओं के अनुसार समान ही है। दूसरी मान्यता जिसके अनुसार स्वयं को बरियार सिंह का वंशज माना जाता है, बरियार सिंह से ही यह वंश वृक्ष आरंभ होता है, जिनके चारों पुत्र में से एक, भीकमदेव और फिर उनके तीन पुत्रों में से एक रिसाल देव थे। रिसालदेव के पुत्र शिवचरण सिंह

थे । यहाँ तक दोनों मान्यताओं में गंभीर विरोधाभास है किंतु ऐसे कोई ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है जो दोनों में से किसी एक मान्यता पर मोहर लगा सकें।

हमारे समाज ने पत्थर पर एक लकीर खींच डाली। वंश पुरुष से ही चलेगा। बस, उस लकीर के फकीर झोला-डंडा उठाए चले पड़े। यही सही है, यही उचित है । नाक फिर कटी, परमेश्वर फिर दिखा। कटी हुई नासिकाएँ, स्त्री के नाम की महक न सूँघ पाई लिहाजा वंश-बेलों में स्त्रियों के नाम की जगह एक व्यापक रिक्तता है। किंतु वंश-बेलें कैसे फलती-फूलती गईं, इस पर कोई मार्ग-दर्शन नहीं है।

शिवचरण सिंह के तीन पुत्र हुए, जानकी सिंह, गौरीशंकर सिंह, दिरगज सिंह।

जानकी सिंह के दो पुत्र हुए, हनुमान सिंह और भगवती सिंह।

हनुमान सिंह का जिनसे विवाह हुआ, उन्हें पूरा गाँव, मोटकी अम्मा के नाम से जानता था। मोटकी अम्मा का वास्तविक नाम सिरसाजी था। वे छताही गाँव की थीं। हनुमान सिंह का देहावसान युवावस्था में ही हो गया था। उनकी कोई संतान न थी।

भगवती सिंह का विवाह, परियाएँ गाँव की, दुलारी से हुआ। इनके दो पुत्रियाँ और एक पुत्र हुए। रत्ती और राजदेई पुत्रियाँ थीं और सूरजू सिंह एकमात्र पुत्र। जिन्हें पूरा गाँव लंबरदार के नाम से बुलाता था। रत्ती देवी का विवाह गोंडे नाम के गाँव में हुआ जबकि राजदेई का विवाह "धुंधा का पुरवा" में हुआ। लंबरदार खाने-पीने के अथाह प्रेमी, बेहद शौकीन । आम, खासकर, सीपर, जो उतुरी की स्थानीय नस्लों में से एक था, कितना प्रिय था उन्हें! जैसे कोई रचनाकार अपनी पसंदीदा कृति को घंटों निहारता है, वैसे ही वो आम को बड़े प्रेम से सूँघते। बिना सूँघे, क्या वे कुछ खा सकते थे? न। घी के अप्रतिम स्नेही थे। कहते हैं जब तक उनकी अम्मा जिंदा थीं, उन्हें खूब खिलाया-पिलाया, किंतु शरीर से कच्चे ही रह गए। अचार, सिरका बगैर खाना ना खाते। घर में नहीं मिलता

तो दूसरे के यहाँ से माँग लाते मगर खाते अवश्य। स्वभाव से एकदम गऊ। बच्चे उनसे खूब ठिठोली करते। उनका विवाह अमृता देवी से हुआ, जो पाँती गाँव की थीं। गाँव में ब्याह कर आई औरतों को या तो उनके गाँव के नाम से बुलाया जाता या फलाने की माई। इनकी दो पुत्रियाँ और तीन पुत्र हुए। मिथिलेश और दिनेश, पुत्रियाँ और रामकुमार, विनय और ओमप्रकाश पुत्र थे। ओम प्रकाश को गाँव में घुट्टुर के नाम से जाना जाता है। दिनेश का विवाह आदिलपुर गाँव, अमेठी और मिथिलेश का विवाह, छीछा गाँव, अमेठी में हुआ। रामकुमार का विवाह बीबीपुर गाँव की सुशीला देवी से हुआ। इनके दो बेटियाँ नीता और परवीना और दो बेटे डब्बू उर्फ संतोष और बब्बू उर्फ मनोज हैं। नीता का विवाह बहुचरा गाँव में और परवीना का हंसवा गाँव में हुआ। मनोज का विवाह रूबी से हुआ और संतोष का विवाह रेनू से हुआ।

विनय सिंह का विवाह हमारी मौसी, माधुरी सिंह से हुआ।उनके दो पुत्र हुए अंकित और शिवा। अंकित का विवाह शिल्पी से हुआ, जो कि रीठी गाँव, जौनपुर की रहनेवाली हैं। उनके एक पुत्र, अच्युतम, है। शिवा अभी अविवाहित हैं।

ओमप्रकाश का विवाह रीता से हुआ जो कि अंबेडकर नगर की निवासी थीं। उनके एक पुत्र है जिसे अभिषेक उर्फ ऋषभ नाम से बुलाते हैं।

पाँती उर्फ अमृता देवी आज भी हैं किंतु कूल्हे की हड्डी में चोट लगने की वजह से चल-फिर नहीं पातीं, दरवाजे पर बैठी रहतीं हैं। पंचानबे के करीब उम्र है किंतु कभी चश्मा नहीं लगाया और देखते ही व्यक्ति को पहचान लेतीं हैं। बातचीत में आज भी वही आक्रामक तेवर हैं। जहाँ तक संभव हो अपने काम स्वयं करतीं हैं। पुराने दिनों को याद कर, आज को एक गहरी नि:श्वास में तौलती है। सब बेहद निष्क्रिय और निस्तेज नजर आता है।

शिवचरण सिंह के तीसरे पुत्र दिरगज सिंह थे। दिरगज सिंह के एक पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्र कालू सिंह और पुत्री श्यामा सिंह। कालू सिंह का विवाह

इंद्रावती से हुआ। उनके दो पुत्र हुए, बेचन सिंह और शिवाधारे सिंह। बेचन सिंह का विवाह, तेरिया गाँव की कर्मावती से हुआ पर पूरा गाँव उन्हें तेरिया नाम से ही बुलाता था। उनके तीन पुत्र हुए पारस, कैलाश और नन्हकऊ उर्फ त्रिभुवन। दो पुत्रियाँ हुईं इंदुमती और विनोद। इंदुमती का विवाह बुकवा गाँव में हुआ जबकि विनोद की मृत्यु युवा अवस्था में ही हो गई थी। वो अविवाहित थीं।

पारस का विवाह रायगंज की मंजू देवी से हुआ। पारस के एक पुत्र विश्वनाथ और एक पुत्री आकांक्षा है। विश्वनाथ का विवाह, लेवरुआ गाँव की पूर्णिमा से हुआ, जिनसे उन्हें एक पुत्र, वेदांत, है।

कैलाश का पहला विवाह जयसिंहपुर निवासी, सुमन से हुआ। उनसे उन्हें दो पुत्रियाँ शुभा और निधि और एक पुत्र, पांडु उर्फ अमित हुआ। पहली पत्नी के देहावसान के बाद कैलाश ने दूसरा विवाह किया। उनका दूसरा विवाह मीरा से हुआ। जिनसे उनके एक पुत्री आकृति और एक पुत्र अर्पित है।

त्रिभुवन सिंह ने भी दो विवाह किया पहली पत्नी शैलेश, जो कि तेरिया की थीं, से तलाक के उपरांत त्रिभुवन ने निशा से विवाह किया जो कि कैथी गाँव से थीं। निशा से उन्हें एक पुत्री आकू और एक पुत्र रोमिल की प्राप्ति हुई।

पूरे गाँव में तेरिया उर्फ कर्मावती अपनी लयबद्ध और संगीतमय वार्ता शैली के लिए उतनी ही सुविख्यात थीं जितना जगदीश की माई, गाली गाने के लिए कुख्यात थीं।

शिवाधारे का विवाह दुर्गावती, रामपुर गाँव, से हुआ। उन्हें रामपुर वाली ही कहा जाता है। अपने समय में "सुधारे" एक अलग धाक थी। मुंबई में दरबान की नौकरी करते थे। जब गाँव आना होता, बेचन उनके लिए इक्का लेकर स्टेशन तक जाते। दरबान की वर्दी में लकदक शिवाधारे सिंह, गाँव की औरतों के लिए, मुंबई से जो सौगात लेकर आते, औरतें भाव-विभोर हो जातीं। गाँव आने के बाद, मुंबई के उस जादूगर का पिटारा खुलता तो उत्सुकता और

जिज्ञासा की सीढ़ी लगाकर देखने वाली ग्रामीण विवाहिताएँ उनका कद और बढ़ा देतीं। गाँव में उन्हें' 'सुधारे' बुलाया जाता है। आज भी हैं किंतु मायानगरी का मायाजाल काट, गाँव लौट आने वाला जादूगर उम्र का मायाजाल नहीं काट पाया। बड़ी कठिनाई से कुर्सी के सहारे चलते थे। एक रात, सोते- होते बिस्तर से, गिर पड़े। रात भर वैसे ही पड़े रहे। सुबह घर वालों ने देखा तो उठाया। तब से रहा-सहा चलना- फिरना भी बंद हो गया। उनके चार पुत्र हुए कृष्ण कुमार, सतीश, रमेश और मोनू। गुड्डू उर्फ कृष्ण कुमार का विवाह अर्चना से हुआ जो कि कुसरना की रहने वाली थीं।मुन्ना उर्फ सतीश का विवाह साधना से हुआ। वे तेरिया की रहने वालीं थीं ।बबउ उर्फ रमेश का विवाह सविता से हुआ। सविता अमेठी की रहने वाली हैं। मोनू अभी कुँवारे ही हैं।

शिवचरण सिंह के द्वितीय पुत्र गौरीशंकर सिंह का विवाह सेमरा देवी से हुआ। इनके दो पुत्र हुए राम प्रताप सिंह और अक्षयवर सिंह।

रामप्रताप सिंह का विवाह सिरताजी देवी से हुआ। उनके तीन पुत्र राम अजोर सिंह, राम अवध सिंह और राम मनोहर सिंह और एक पुत्री देवराजी सिंह हुई।

राम अजोर सिंह का विवाह उदय राजी से हुआ। राम अजोर सिंह की दो बेटियाँ पराना उर्फ प्राणपति और सीता और दो पुत्र राम सजीवन सिंह और सुरेश सिंह थे। राम सजीवन सिंह का विवाह जौनपुर के डोभी गाँव की मालती सिंह के साथ हुआ। इनके दो पुत्र, सोनू उर्फ सत्य प्रकाश सिंह और छोटू उर्फ दिग्विजय सिंह और एक पुत्री शालू उर्फ शालिनी हुई। राम सजीवन सिंह, भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड में अभियंता थे। शालिनी वाराणसी में ब्याही गईं थीं। सत्य प्रकाश सिंह का विवाह सुषमा से हुआ। सुषमा मायंग की रहने वाली थीं। उनकी दो लड़कियाँ शगुन, छोटी और एक पुत्र वैभव है। सत्य प्रकाश सिंह उर्फ सोनू का देहांत युवावस्था में ही हो गया। छोटू उर्फ दिग्विजय सिंह का विवाह ऋतु से हुआ जिनसे उन्हें एक पुत्र, युग, है।

राम सजीवन सिंह के छोटे भाई सुरेश का विवाह इंग्लेश से हुआ, जो कि बदलापुर निवासी थीं। उनसे उन्हें एक पुत्र हुआ, गोलू उर्फ अंशुमान।

राम अवध सिंह की दो पुत्रियाँ, कैलाशा और राधा हुईं और एक पुत्र बाँके उर्फ करुणा शंकर। कैलाशा और राधा दोनों का विवाह, चिलूली, तिलोई में हुआ। बाँके का विवाह मालती देवी से हुआ। बाँके के पाँच पुत्र गिरीश, प्रकाश, जितेश, अम्बरीश और राजेश और दो पुत्रियाँ राजेश्वरी और रेखा हुईं। राजेश्वरी का विवाह अचलपुर में और रेखा जो कि अब नहीं रहीं, का विवाह चिलूली, तिलोई में हुआ था। गिरीश का विवाह बबली से हुआ जो कि सुकुलपुर की रहने वालीं थीं। प्रकाश का विवाह राजकुमारी से हुआ जो कि अमेठी की निवासी थीं। जितेश का विवाह मंजू से हुआ जो पुरैना गाँव की थीं। अंबरीश का विवाह रंजू से हुआ जोकि रामगंज की रहने वालीं थीं और राजेश का विवाह बबीता से हुआ जो कि कादीपुर की रहने वाली थीं ।

राम मनोहर सिंह पुलिस में थे। उन्हें पूरा गाँव सिपाही के नाम से जानता था। उनके चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। सबसे बड़े पुत्र चिथरू उर्फ रणवीर सिंह का युवावस्था में ही देहांत हो गया। त्रिलोकनाथ सिंह, राजेंद्र सिंह और नगेंद्र सिंह शेष तीन पुत्र हैं। त्रिलोकनाथ सिंह और नगेंद्र सिंह लखनऊ में ही रहते हैं। जबकि राजेंद्र सिंह उतुरी में ही रहते हैं। राम मनोहर सिंह की दो बेटियाँ, निर्मला और अनारा थीं। अनारा की मृत्यु युवावस्था में ही हो गई। निर्मला का विवाह बदलापुर में हुआ।

त्रिलोकनाथ सिंह का विवाह कमला सिंह से हुआ। इनके दो पुत्र कुलदीप और प्रवीण हैं। कुलदीप का विवाह नेहा से हुआ।

राजेंद्र सिंह का विवाह उषा से हुआ जो कि सुरेश की पत्नी इंग्लेश की बहन थीं।

उनकी चार संताने हुई प्रदीप, पम्मी उर्फ पद्मा, सिम्मी, नेहा। पम्मी का विवाह हँसवा में हुआ, सिम्मी का विवाह प्रतापगढ़ शहर में और नेहा का विवाह फैजाबाद में हुआ जिनका बाद में तलाक हो गया।

पप्पू उर्फ प्रदीप का विवाह प्रतिभा से हुआ। उनके दो बच्चे हैं अनुष्का और अनुभव।

नागेंद्र सिंह का विवाह इंदिरा से हुआ वह भी बदलापुर की रहने वाली थी नागेंद्र के एक पुत्र हुआ, प्रवीण जिसका विवाह अर्जिता से हुआ। उनकी एक पुत्री, रोली है।

गौरी शंकर सिंह के द्वितीय पुत्र अक्षयवर सिंह यानि हमारे बाबा। लालिमा लिए हुए गोराई। सुंदर, देहयष्टि, कड़क और रौबदार आवाज। कक्षा आठ तक ही पढ़े थे ।पढ़ने में बहुत तेज थे। किंतु समसामयिक परिस्थितियों ने हाथ से कलम छीन ली। प्राइमरी के शिक्षक के तौर पर चयन भी हुआ था किंतु गए नहीं ।पापा बताते हैं चक्रवृद्धि ब्याज के सवाल हल करना पापा को सिखाते थे। अल्प आयु में ही उनका विवाह जौनपुर के चकरा गाँव के हिम्मत सिंह की बेटी गंगाजली सिंह से हुआ, हमारी आजी। काफी तेज-तर्रार और बहुमुखी प्रतिभा की धनी। घर और बाहर दोनों संभालतीं। जब उनका विवाह होने वाला था, उसी दौरान सुल्तानपुर और आसपास के क्षेत्रों में ट्रेन और बस की सुविधा आरंभ हुई थी। कई लोगों का विचार था, बारात के लिए बस सुविधाजनक रहेगी किंतु गंगाजली सिंह के पिता हिम्मत सिंह ने बारात के लिए ऊँटगाड़ी को ही तवज्जो दी और बाबा की बारात ऊँटगाड़ी पर ही गई।

उनकी छः संताने हुईं सबसे बड़े थे बटेश्वर सिंह फिर संतराम सिंह, राम आसरे सिंह, सावित्री सिंह, राजनाथ सिंह और गायत्री सिंह। घर की आर्थिक स्थिति खराब ही थी। कच्ची मिट्टी की कोठरियों में, ढिबरी की रोशनी में बच्चे पढ़ते। दस-पंद्रह मील पैदल उतुरी से सुल्तानपुर तक पढ़ने जाते। कभी चबैना चबाकर जाते, कभी आम खाकर कभी रोटी के साथ अचार, प्याज या नमक खाकर।

मटर उन दिनों गरीबों का भोजन थी। गेहूँ साहूकारों का। मटर की रोटी बनती। चाचा का, उन दिनों का प्रिय भोजन।

पापा हमें अपने उदाहरण देते। कैसे पैदल पंद्रह-बीस मील पैदल चलकर विद्यालय जाते और पैदल ही विद्यालय से आते। आने के बाद तुरंत बाद, कभी चारा काटना, कभी खेत पर जाना, कभी मेड़ बनाना, कभी बाग में जाना पड़ता। बेचन, पापा के परम मित्र थे।भोदवा में साँप, बिच्छुओं के बीच नंगे पैर रहते। कभी-कभी दोनों वही रात में सोते। ना साँप, बिच्छू से कभी डरे, ना उन्होंने कभी इन्हें काटा। पता नहीं कहाँ से, किसने कब से, ईश्वर का ठिकाना मंदिर है, यह भ्राँति फैली दी। अरे! भाई, ईश्वर वहाँ नहीं, वहाँ रहता है, जहाँ जंगल की नंगी जमीन पर एक बच्चा निश्शंक सोता है और उसकी माँ इत्मीनान से लकड़ियाँ चुनतीं हैं, आम बिनती हैं। ईश्वर के लिए मेवा, मिश्री, मिठाई, हार, मूर्ति सब खरीद लोगे पर वह विश्वास कहाँ से लाओगे, जो घने जंगल की फर्श पर तुम्हें निश्शंक लिटा सके। नहीं ला सकते तो ईश्वर कहाँ मिल पाएगा। जिस कुँए में, गाँव वालों ने जहरीले साँपों की आशंका जताई,उसमें दोनों बेझिझक उतर गए।बेचन अब झुक गए हैं किंतु वैसे ही कर्म निष्ठ।

उतुरी में दो प्रमुख बाग थे। कारी सेमिया और भोदवा। भोदवा, काफी सघन, गाँव से दूर और साँप, बिच्छुओं से भरा रहता था। बचपन में पापा वगैरह वहीं आधी- आधी रात को जाते। आँधी आने पर आम बिनने। कभी-कभी वहीं सोते। अम्मा बताती थीं, एक बार घर पर कोई पुरुष न होने की वजह से, आँधी आने पर, आजी घर की बहुओं को लेकर गईं उस साँप-बिच्छू से भरे वन क्षेत्र में। डर उन्हें कभी छू नहीं गया। छोटी-मोटी सर्जन भी थीं। गाँव वाले अपने फोड़े वगैरह का इलाज कराने आते तो बड़े आराम से उसमें चीरा लगाकर मवाद निकाल देतीं। टॉन्सिल के इलाज में विशेषज्ञ। हाथ में राख लेकर उँगली से ही टॉन्सिल दबा देतीं और वहाँ राख लगा देतीं और टॉन्सिल ठीक भी हो जाता था। अपनी शल्य-चिकित्सा पर अद्भुत विश्वास था उन्हें।घर पर एक कुशल प्रशासक की छवि थी। बाबा औरतों और लड़कियों को कभी कुछ नहीं कहते

थे। जब कभी आजी घर की किसी औरत या लड़की को डाँटतीं, बाबा कहते, "काहे चटकति अहा? लक्ष्मी अहैं यै सबै"।

बद्रीनाथ में, जब हम चार-पाँच रजाइयों में दुबके ठिठुर रहे थे, बाबा ठंडे पानी से स्नान कर, मात्र एक सफेद सूती धोती में बाहर घूम रहे थे। स्वेटर बहुत दूर की बात है, कुर्ता या बनियान भी नहीं। बस, कंधे पर एक सफेद गमछा ओढ़े रहते। पूरी यात्रा ऐसे ही लिबास में तय की। ऐसी जीवट देह में, नवनीत से स्निग्ध हृदय का वास था। पचासी वर्ष के आसपास उनकी मृत्यु हुई। खेत में काम कर के लौटे थे। कुछ थकान सी महसूस हुई। चारपाई पर लेटे और देहांत हो गया। हम उन दिनों ईशापुर में थे। उस दिन, दो तार एक साथ मिले। पहला, बाबा की मृत्यु का और दूसरा, उनके अस्वस्थ होने का।

बटेश्वर सिंह सबसे बड़े थे। आकर्षक व्यक्तित्व था। बाबा की गोराई पाए थे। फौज में लाँस-नायक नियुक्त हुए थे किंतु उससे पहले उनका विवाह अकबरपुर के मल्हेपुर गाँव की चित्रलेखा सिंह से हो चुका था।। चित्रलेखा सिंह, मल्हेपुर के भगवती दीन सिंह की पुत्री थीं। उनकी तीन पुत्रियों में चित्रलेखा सबसे छोटी थीं। बाकी दोनों पुत्रियों में से एक उतुरी में भानु सिंह के साथ ब्याही गईं थी, दूसरी लोहरा मऊ में।

जब घर का बँटवारा हुआ, वे लखनऊ कैंट में थे। बटेश्वर सिंह, बँटवारे के सख्त खिलाफ थे। वे चाहते थे पाँचों परिवार जैसे साथ-साथ रहे, वैसे ही आगे भी रहें। बाबा और आजी को उस संयुक्त परिवार में बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था।एक बार राम अजोर सिंह ने गड़ासे से आजी पर वार किया, आजी ने उसे पीतल के बर्तन से रोका। बाबा और आजी इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं हुए और एक दिन बटेश्वर सिंह की आत्महत्या की खबर ने उतुरी में लंबे होते बँटवारे के सायों की पुष्टि कर दी। लखनऊ के दिलकुशा में स्वयं की कनपटी पर गोली मार ली थी, बटेश्वर सिंह ने। बटेश्वर सिंह की मौत ने, चित्रलेखा सिंह के जीवन में मल्हेपुर से उतुरी तक अनिश्चितताओं, शंकाओं, संदेह और साजिशों के नए

अध्याय का ठेका समय की खूँखार कलम को सौंप दिया। समय ने उसकी स्याही ऐसी फैलाई, ऐसी फैलाई कि वर्षों बाद तक उस कहानी का कोई निष्कर्ष नहीं निकल पाया ।बस भूमिकाओं में ही जीवन उलझा रहा।

संतराम सिंह का विवाह जौनपुर के कुसरना गाँव के राम आनंद सिंह की पुत्री दिलराजी सिंह से हुआ था, हमारी बड़की अम्मा। उनकी एक बहन फुलराजी और दो भाई श्री नारायण सिंह और गुलाब सिंह थे। फुलराजी से पापा के विवाह की बात चली किन्तु दो सगी बहनों का एक ही घर में ब्याह कर आना पापा वगैरह को सही नहीं लगा इसलिए बात आगे नहीं बढ़ पाई। राजेंद्र सिंह और कुँवर सिंह उनके चचेरे भाई थे। संतराम सिंह और दिलराज जी सिंह की छः संताने हुई हालांकि उनके दो पुत्र जन्म के कुछ दिन बाद ही चल बसे। शैल कुमारी जीजी सबसे बड़ी पुत्री थीं जिनका विवाह प्रतापगढ़ के ईसीपुर गाँव के अक्षयवर सिंह के सुपुत्र शिवपूजन सिंह से हुआ ।उनके पाँच पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। अतुल, अन्नू उर्फ अनुराग, अनुपम, अनूप, अंतिम, पाँच पुत्र और सविता और बबीता, दो पुत्रियाँ।

अतुल का विवाह, प्रतापगढ़ के दिलीपपुर गाँव की सीमा से हुआ। उनके एक पुत्र अंश और दो पुत्रियाँ, विधि और कशिश हैं। अतुल सपरिवार मुंबई में रहते हैं। अनुराग का विवाह कुसरना की रिंका उर्फ प्रतिभा से हुआ जो रिश्ते में हमारे मामा की बेटी है। इन्हें एक पुत्री, स्वरा और एक पुत्र स्वयं है। अनुपम का विवाह सोनी से हुआ और इन्हें एक पुत्र, वेदांत और एक पुत्री कृष्णा है। अनूप का विवाह ठरिया कला की श्रद्धा से हुआ जिनसे एक पुत्री, परिधि है।

सविता, हरचंदपुर के सचिन से ब्याही गईं। उन्हें एक पुत्री, साम्भवी और एक पुत्र सोम की प्राप्ति हुई।

बबिता, तेरए चौकिया के दिनेश से ब्याही गईं। उनके एक पुत्र, कुंदन और एक पुत्री, प्रिया है।

कुसुम जीजी दूसरी पुत्री थीं जिनका विवाह रायबरेली जिले में हँसवा गाँव के रुद्र प्रताप सिंह के सुपुत्र श्याम बहादुर सिंह से हुआ। उनके एक पुत्र सनी उर्फ इंद्रेश और तीन पुत्रियाँ ममता, नमिता और गुड़िया उर्फ अमिता हुईं। इंद्रेश का विवाह उन्नाव की वत्सला शेखर से हुआ।उनके दो पुत्र हैं।पहले पुत्र का नाम सुविज्ञ विक्रम सिंह है और दूसरा अभी नवजात है। ममता का विवाह रायबरेली के हरिश्चंद्र सिंह के सुपुत्र सौरभ सिंह से हुआ। उनके दो पुत्र सौर्यांश और नैमिष हैं। नमिता का विवाह, बिहार में छपरा के, सी.पी.सिंह के सुपुत्र प्रेम कुमार से हुआ। अमिता का विवाह कठुआ के जगदीश सिंह के सुपुत्र निखिल सिंह से हुआ।

तीसरी पुत्री हेमलता सिंह का विवाह रायबरेली के छतौहा गाँव के रामदेव सिंह के सुपुत्र जगदीश सिंह से हुआ। इनके तीन पुत्रियाँ अणिमा, अंशिमा और स्वर्णिमा हुईं और एक पुत्र, ओम हुआ। अणिमा का विवाह रामपुर कला के महेंद्र से हुआ जो उन्हीं की तरह सरकारी स्कूल में अध्यापक हैं। उनके एक पुत्री, आद्विका और एक पुत्र कौस्तुभ है। अंशिका का विवाह लालगंज के भूपेन्द्र सिंह से हुआ। स्वर्णिमा अविवाहित हैं, बिहार में सरकारी स्कूल में शिक्षिका हैं।

हेमलता सिंह अपनी सभी बहनों में सबसे तेज तर्रार थीं। आजी की तरह, एकदम निडर।

चौथी पुत्री, प्रभा जिस गाँव में सब परभा ही बुलाते थे, उनका विवाह प्रतापगढ़ के, बहुचरा गाँव के, कृष्ण पाल सिंह के सुपुत्र प्रमोद सिंह से हुआ। प्रभा अपने घर की सबसे कामकाजी बिटिया थी। प्रभा के एक पुत्र गोलू उर्फ प्रशांत और दो पुत्रियाँ प्रतीक्षा एवं प्रत्याशा हैं।सभी अविवाहित हैं।

सबसे छोटी पुत्री, जिसके विवाह में बाबू दिल खोलकर रोए थे, रेनू । रेनू का विवाह प्रतापगढ़ के तुलापुर गाँव के नगेंद्र प्रताप सिंह के सुपुत्र शिव प्रताप सिंह से हुआ। रेनू सभी बहनों में पढ़ने में सबसे होशियार थी। आज वो वकील है,

वकालत करती हैं। उनके एक पुत्र सोम उर्फ शिवांश और एक पुत्री सौम्या है। दोनों अविवाहित हैं।

संतराम सिंह के एकमात्र पुत्र रजनीश सिंह का विवाह जंघई के चौकी कला गाँव के कुँवर भरत सिंह की पुत्री मंजू सिंह से हुआ। उनकी एकमात्र संतान प्राही है। प्राही प्रतियोगिता की तैयारी कर रही है।

राजनाथ सिंह का विवाह सुल्तानपुर के हमीदपुर गाँव के उदयभान सिंह की पुत्री ऊषा रानी सिंह से हुआ। इनका विवाह कारागार में तय हुआ था। ऊषारानी सिंह, अक्षयवर सिंह और गंगाजली सिंह की एकमात्र पढ़ी-लिखी बहू थीं। इनके दो पुत्र बिंटू उर्फ प्रवीण और रिंकू उर्फ संजीत और तीन पुत्रियाँ लवली उर्फ शुभा, रोज़ी उर्फ शिखा और रोली उर्फ शिल्पा। प्रवीण का विवाह वाराणसी की उपासना से हुआ। उनके एक पुत्री मान्या और एक पुत्र, अपूर्व है। संजीत का विवाह, लखनऊ के नागेश्वर सिंह की पुत्री नित्या से हुआ। उन्हें एक पुत्री एलिशा है।

उतुरी के ठकुर सुहाती मिजाज में यदि नमक और शहद उचित मात्रा में है तो उसी मात्रा में कच्ची अमिया के फोकलों के चटखारे और पान की गिलोरियों के अदब भी थे। नहीं, सुबह नहीं। जब मुँह अँधेरे, सूरज की पहली किरण को चोर समझ, गाँव के कूकुर बवाल बचाए होते, उससे पहले ही उतुरी कर्मक्षेत्र में उतर आता। बिस्तर करीने से जुल्फें सँवारते उठ खड़े होते। खटिया आलस को परे झटक, मदमाती, ओसारे में जा छिपती। चुन्नी, चोकर, खली, भूसा, पानी के लिए सरिया में बँधे पशु गुहार मचाने लगते। लिपा-पुता चुल्हा भदेली, भगौनों के लिए आग लगा देता। “बच्ची तनी रहठ्ठा लै आव”। घर-आँगन बुहारा जा रहा है। घूरा तैयार है। लाओ, ले आओ, सारा कूड़ा सोने में बदल दूँगा। सड़कें और गलियाँ “जय राम जी की” और पालगन से पट जाती हैं। हरवाहे चले आए हैं ।बैलों को साध रहे हैं। अंदर गुहार उठती है ।“सुलइ का

खर मारे का कुछु दीन गय बा कि नाही"। "यै बिटिहनियन तौ कहेन सुनेन म नाय अहैं। ए परभाऽऽ"।

यही नाश्ता होता था। लाई, चना, गुड़ की भेली, लहसुन, मिर्च, नमक की चटनी या भरा मिर्चा। यही, दैनिक क्रिया से फारिग होकर आए मर्दों, औरतों, बच्चों को मिलेगा। सब आँगन में, संसार की सारी समस्याओं से निपटने में व्यस्त हैं। छप्पर छानी है। खेतों में पानी देना है। मेड़ बाँधनी है। चरी काटनी है। सरसों पेरानी है। आज देखवारी आ रहे हैं। यही सब काम होते थे। यह सब बहुत मायने रखते थे। इन सबके बीच चखचख, बहस, वाद-विवाद, तू-तू, मैं-मैं, सब चलता रहता। काम रुकता नहीं था। बच्चों से बुजुर्गों तक, व्यस्तता की लहर, सबको चपेट में ले लेती। सूर्य देवता उन आंदोलित स्वेद-कणों की शीतलता में अलसा जाते और चादर तान पसरने लगते। द्वार बुहारा जाता और अल्हड़ खटियाएँ मिट्टी पर छिड़कें पानी से उठती सोंधी सहेलियों को गले लगा कहतीं, " बहुत देर कर दी गुइयाँ"।

और प्रारंभ होते हैं मानव संवाद के वो रहस्यमयी प्रकरण जिनमें नई पीढ़ी को स्थान न मिल सका। उनका दोष है ही नहीं। हमीं ने उन्हें समझाया, विकास के रास्ते, देहात नहीं आता। इधर से मत गुजरो। देखते-देखते मजमा लग जाता था

द्वार पर। गाँव के युवा छात्र आ जाते। बाबू ट्रांजिस्टर संभाले रहते। पापा और बाबू समाचार के कीड़े थे। कोई समाचार छूटने न पाए। समाचार निकलते और उनपर टीका- टिप्पणी, वाद-विवाद और बहस का बाजार गर्म हो जाता। इंदिरा का पराक्रम हो या कपिल देव का हुनर। बात सब पर होती।चीन की विदेश नीति से लेकर भारत और रूस की मित्रता और अमेरिका की दोहरी चालों पर। उस देहात के आँगन में, खटियाओं पर बुनी गई चर्चाओं का अंश मात्र भी वर्तमान विशेषज्ञों के टाईनुमा टी.वी डिबेट में सुनाई नहीं पड़ता है। बी.बी.सी हिंदी सेवा, चिंतन और विश्लेषण की नई विधाएँ परोसता। खास कर रेहान फ़ज़ल द्वारा प्रस्तुत "आजकल"। विशुद्ध, गहन और विस्तृत चर्चा होती।

लड़के, बाबू और पापा की बहस ध्यान से सुनते। यदि चाचा होते तो वो इस बहस का तीसरा छोर थामे रहते। टिमटिमाते लालटेन की रोशनी में, रात की फटी चादर से झाँकते तारों की स्तब्धता, गोशाला के सामने सजी, देहात की इस ज्ञान-शाला की प्रामाणिकता थी। विकास के गैलीलियो, उस देहाती आसमान को ढूँढ़ने में असमर्थ रहे। निष्कर्ष यह रहा कि ब्रह्मांड शहरी आसमान ही है।

पर चूल्हे ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। माया की जगमगाती लपटों में, निर्द्वंद्व खड़ा, सब आत्मसात कर रहा है। खदकती दाल और लोहे की कड़ाही में झुंझलाती तरकारी के बीच से निकलती किस्सों- कहानियों की अनगिनत गलियाँ। सबके पास कितना कुछ है कहने को और सबके पास इत्मीनान है सुनने को। इसी समय बड़की अम्मा के किस्से शुरु होते।दिन में नहीं सुनाती थीं। मामा घर का रास्ता भूल जाते हैं। ऐसे किस्से, जो कल्पनाओं के सारथी की पकड़ के बाहर हैं।

फुर्सत होती ही नहीं थी लेकिन व्यस्तता के बीच ही फुर्सत जी लेते। हाथ चलते रहते और साथ चलती रहती अपने-अपने सुख-दु:ख की चक्की। सांत्वनाएँ नहीं, साझीदार होते।

सिर पर आँचल डाले, अम्मा की सहज संपूर्णता इसी में दृष्टिगत होती। उनके सौंदर्य का निखार यही देहात था जिसकी सुबह ‘‘खंता- मंता’’ और रात ‘‘पुलु__लुलु’’ होती।

६२.

घूमती हुई पृथ्वी पर एक अदना सा गाँव मानो संपूर्ण सृष्टि की धुरी बन जाता लेकिन रुको! सृष्टि की अवमानना की धुरी भी यही है।

चमारों की अलग बस्ती है। चमार शब्द का प्रयोग क्यों वर्जित है? चर्मकार का तद्भव है। उद्योग को प्रश्रय देने वाली कर्मनिष्ठा का भाव उसमें भी है। चमड़े का काम करने वाला चर्मकार, वही चमार। चमड़े के बड़े-बड़े उद्योग चल रहे हैं। अरबों-खरबों का व्यवसाय है किसी को ऐसे चमारों से परहेज नहीं।तो वस्तुत: परहेज का विधि-विधान, काम को नहीं जीवन-यापन के आर्थिक मापदंड को स्पष्ट करता है। अरबों रुपए कमाने वाला चमड़े का व्यवसायी, किसी के लिए अछूत है क्या? उसके साथ भोजन कर जीवन को धन्य मान लिया जाएगा।

सुलइ के बर्तन अलग थे। खाना-पानी, सब बाहर लाकर, उसके बर्तन में ऊपर से डाल दिया जाता था। बीड़ी पीनी है? चूल्हे से जलते कंडे का एक टुकड़ा निकाल कर, बाहर उसके सामने धर देते। बड़ा अजीब लगता था। वह बैलों को छूता, सहलाता। उन्हें ले जाकर खेत जोतता, बीज बोता, सिंचाई करता। वही अनाज घर पर आता और सब खाते, कोई परहेज नहीं।

न, न, न। ये न समझिए कि सब प्रेमचंद के “सवा सेर गेहूँ” के साहूकार थे। अजी, बिल्कुल नहीं। सुलइ घर के सदस्य सा ही था। बड़की अम्मा, बड़की माई उसके खाने-पीने का पूरा ध्यान रखतीं। शादी-ब्याह, तीज-त्योहार में नेग-न्योछावर में कभी कमी न होती। घर के बड़े-बूढ़ों से हँसी-ठिठोली भी करता और बच्चों को अभिभावकों की तरह डाँट भी देता। बस छुआछूत का ध्यान रखा जाता।

गाँव की भोली-भाली रिआया का कोई कसूर नहीं। सनातन और धर्म के नाम पर जो घुट्टी पिलाई जाती, उस पर लकीर का फकीर बनकर चलते। बड़की

माई, बड़की अम्मा, हमारी अम्मा बहुत मानतीं थीं यह सब, किंतु इसके बावजूद स्नेह की धारा कम नहीं होती थी। बच्चों को, घर वालों को भले ही देर से भोजन मिले लेकिन सुलइ या अन्य कर्मचारियों को समय पर भोजन मिले इस बात का ध्यान बिल्कुल रखा जाता।

इस संसार में ऐसा कोई व्यक्ति है, क्या, जिसने सभी जातियों को एक जीवन में ना जिया हो? जो पढ़ाता है वही ब्राह्मण है, ना कि ब्राह्मण ही पढ़ाता है? अजीब बेहूदगी है। जो रण कौशल में पारंगत है, वही तो क्षत्रिय है। क्षत्रिय ही रण कौशल में पारंगत होगा, यह किसने कह दिया? श्रम-विभाजन की वैज्ञानिक पद्धति आज भी हम अपने घरों में अपनाते हैं। किसी बड़े आयोजन पर काम बाँट दिए जाते हैं। फलाँ पैसों का हिसाब देखेंगे, फलाँ साफ-सफाई का और साज- सज्जा का काम देखेंगे। फलां सुरक्षा का इंतजाम देखेंगे। क्या है यह सब? श्रम विभाजन ही तो है।

मोटकी अम्मा भयानक रूप से जातिवादी थीं। चमारों की छाया से भी कतराती थीं। दूर से ही दुरदुराने लगतीं। आकंठ पूजा-पाठ में डूबी रहतीं। महाकुंभ लगा था। गई थीं, गंगा नहाने। भयानक भगदड़ मची। कई लोग मारे गए। राम मनोहर सिंह ने वहाँ जाकर, लाशों के बीच, मोटकी अम्मा को तलाशा। रोते-पीटते घर आए। घर में कोहराम मच गया। मोटकी अम्मा चली गईं मगर नहीं। नाटक का अंतिम दृश्य बाकी था। मोटकी अम्मा आईं, लौटकर, और जानते हैं किसके साथ ? बुद्धि चमार। जिसे छूना भी नहीं पसंद करतीं थीं, उसने भगदड़ में उनकी जान बचाई। हाथों का सहारा देकर उठाया। अपने हाथों से पानी पिलाया और घर तक सुरक्षित पहुँचाया। आश्चर्य ये है कि प्रेमचंद की किताबें जिन दीवान खानों में सजी हैं, वहीं जातीय समीकरण के अलग बर्तन भी हैं।

जब वैमनस्य फैलता है फिर वह अपनी प्राकृतिक विभाजन की सीमाओं से बाहर निकल आता है और प्रत्येक सीमा में प्रवेश कर जाता है। छोटा- बड़ा, ऊँच- नीच कुछ नहीं देखता सिर्फ एक आग की लीक पकड़ता है और फैलता

चला जाता है। उस आग में रोटियाँ दोनों तरफ से सेंकी जाती हैं और घर भी दोनों तरफ के जलते हैं। और फिर एक राजैतिक नूरा-कुश्ती की पटकथा लिखी जाती है, जिसमें दोनों पक्ष हारते नहीं पर दोनों पक्ष जीतते भी नहीं पर कोई तीसरा हार जाता है।

खैर___। उतुरी ने भी धीरे-धीरे अपने पैर शहर की तरफ़ बढ़ाए थे। लोग शहर की तरफ पलायन कर रहे थे। नौकरी के लिए, बड़ी-बड़ी आकाँक्षाएं, बड़ी-बड़ी उम्मीदें । जगमगाते शहर और बिजली के लट्टुओं पर नाचता ,एक घुप्प अँधेरा।

राजनैतिक परिदृश्य में ग्रामों की विकास गाथाएँ ऐसे ही लिखी गईं। सभ्यताओं द्वारा निर्मित,प्रथम सामाजिक संस्करण, गाँवों को, असभ्य मान लिया गया पिछड़ेपन की नकेल डाल, उसे शहर के खूँटे तक खीँच लाया गया ।नीम और बरगद की छाँव से अवसाद बरसने लगा। ढलते सूरज से विश्वासघात और संदेह की परछाइयों को आड़ मिली और उतुरी षडयंत्रों और साजिशों का रंगमंच बन गया।

मुन्ना उर्फ राजेन्द्र सिंह। सावित्री बुआ और अवधराज फूफा के सबसे बड़े बेटे। गोरा-चिट्टा रंग और लंबा-चौड़ा शरीर। १९८०-८१ में सुल्तानपुर के महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज से इंटर कर रहे थे। बाँके उर्फ करूणा शंकर सिंह की बड़ी बेटी, राजेश्वरी का हमारे यहाँ काफी आना-जाना था। राजेश्वरी का विवाह हो चुका था किंतु गौना अभी नहीं गया था। मुन्ना उत्तर वाले कमरे में रहते थे, राजेश्वरी, वहाँ बेधड़क आती-जाती। अलहदा होने के बावजूद परिवार के मेल-मिलाप में कोई अंतर नहीं आया था। रिश्ते वही थे, चूल्हे पर पकने वाली रोटियाँ वही थीं। केवल वो हाथ जो रोटियाँ बनाते अलग-अलग हो गए थे।

उस दिन २५ अक्टूबर था। बाबू कॉलेज जा चुके थे।बाबा टोट्वा कै तलिया गए थे। उतुरी के पास ही बेनी कै पुरवा, एक छोटा सा गाँव है। उसी के पास टोट्वा कै तलिया है, जहाँ हमारे कुछ खेत हैं। बड़की अम्मा को, कड़ाही चढ़ाने,

पहलवान बाबा की मज़ार पर जाना था । पयागीपुर चौराहे से आधा फर्लांग दूर, रेलवे लाइन के पास ही पहलवान वीर बाबा की हज़ार है। काफी प्रचलित मज़ार थी, लोग मन्नत माँगते और मन्नतें पूरी होने पर या उसके पहले ही कड़ाही चढ़ाते थे।

रेनू और प्रभा स्कूल गईं थीं। भइया उन दिनों दसवीं में पढ़ते थे और ईशापुर में ही रहते थे।

घर में बड़की अम्मा, कुसुम जीजी, हेम जीजी और मुन्ना थे। मुन्ना विद्यालय जाने की तैयारी कर रहे थे, अम्मा पयागीपुर जाने को तैयार हो रहीं थीं। तभी राजेश्वरी आई। बड़की अम्मा से बोली, “आजी, जल्दी करा, जा। पहलवान बीर बाबा तोहार सब मनउती पूरा करें”।

मुन्ना साइकिल ले कर विद्यालय जा चुके थे।

ममता पंद्रह-बीस दिन पहले पैदा हुई थी। कुसुम जीजी उसी की देख-भाल में व्यस्त थीं।उन्होंने हेम जीजी से ममता की लंगोट धो कर लें आने को कहा। सरिया के मुख्य द्वार पर किवाड़ नहीं लगा था किंतु अहाते की तरफ खुलने वाले द्वार पर किवाड़ लगा था। हेम जीजी सरिया पार कर अहाते में गईं, दरजी के पास लँगोट धोयी और वापस आई। बड़की अम्मा गाँव की अन्य महिलाओं के साथ जा चुकीं थीं। राजेश्वरी अब भी बैठी थी।

राजेश्वरी,हेम जीजी से किसी स्वेटर की डिजाइन के बारे में पूछ रही थी। हेम जीजी जब उसे स्वेटर का डिजाइन समझा रहीं थीं, बार-बार राजेश्वरी बाहर की तरफ देखती। हेम जीजी ने राजेश्वरी से पूछा, “काहे बार-बार वहरिया लखति अहा, कौनो मनइ अहैं का”? राजेश्वरी ने हड़बड़ा कर कहा, “नाही, नाही, तू डिजइनिया बतावा”। हेम जीजी उसे बार-बार समझाने का प्रयास कर रहीं थीं किंतु उसे समझ में नहीं आ रहा था। वो पुनः: डिजाइन समझाने के लिए कहती। तभी हेम जीजी के पेट में मरोड़ उठने लगी। हेम जीजी ने कहा, “हमका बहरे जाए का अहै। तू बइठा हम दरजी से होइके के आवत हइ”। राजेश्वरी घबरा गई,

उसने कहा, "नाही- नाही, चला रामनाथ के बगिया म, हम तोहका लै चलित है, इंहा जिन जा"। किंतु हेम जीजी नहीं रुकीं। सरिया का पहला फाटक पार कर दूसरे फाटक की साँकल जैसे ही खोलने को हुईं, उन्हें लगा मुन्ना उनकी बाई और खड़े हैं। उन्होंने पूछा, "का भइया, इंहा काहे खड़ा अहा"। जब कोई जवाब नहीं मिला, उन्होंने पलट कर देखा। मुन्ना के गले में रस्सी थी। दोनों घुटने जमीन पर थे। नाक से खून की कुछ बूँदे रिसी थीं और कुछ चावल के दाने जैसे नाक के पास लगे हुए थे। हेम जीजी चीखीं, "भइया फाँसी लगाय लिहेन"। दो-तीन बार चीखीं। "मुन्ना फाँसी लगाय लिहेन" चीखती हुई राजेश्वरी, घर की तरफ भागी। कुछ ही देर में राजेश्वरी के बाबा, राम अवध सिंह और अचलपुर का उनका नौकर, ग़रीब पासी, भागे हुए आए। ग़रीब ने चाकू से फंदा काट कर मुन्ना को नीचे उतारा और आँगन में लाकर लिटा दिया।

महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज में बाबू को खबर भेजी गई। सावित्री बुआ के यहाँ आदमी भेजा गया।उतुरी कोहराम में डूब गया। बात प्रभा, रेनू के स्कूल तक पँहुची। "बउलिया पे, दरजी पे कउनो लड़िका फाँसी लगाय लिहिस"। पूरा गाँव इकट्ठा हो गया।

पुलिस डेढ़-दो घंटे बाद आई। बाबू ने प्राथमिकी दर्ज कराने से मना कर दिया। मुन्ना के वस्त्र जब निकाले जा रहे थे, उसकी बनियान में एक अंगिया खोंसी हुई मिली। राजेश्वरी के परिवार से कोई महिला चिल्लाई, "ई तौ राजेश्वरी कै अहै"। राजेश्वरी की चाची उसे लेकर भाग गई।

बात आई-गई हो गई। कुछ दिनों बाद बाबू ने एक सपना देखा। सपने में उन्हें मुन्ना दिखाई दिए। बाबू ने उनसे कहा, "का भइया, ई काव किह्या"? मुन्ना ने कहा, "मामा, जउन भै, तौन भै। एक लड़िका तोहरो अहै, एक लड़िका हमरो अहै"। उसके कुछ दिन बाद तक बाबू की तबीयत बेहद खराब रहती । बड़की अम्मा और बड़की माई ने बहुत टोना- टोटका, झाड़-फूँक करवाई।

हमारी छत से, बाँके का घर स्पष्ट दिखाई देता था। एक बार हेम जीजी ने छत पर मुन्ना को बैठे देखा और वहीं नीचे राजेश्वरी नहा रही थी। हेम जीजी को देखकर, मुन्ना सकपका गए और वहाँ से भाग कर सीधे उत्तर के कमरे में आए। खिसिया कर बोले, "हम स्कूले जात हई"।

बाबू ने जब अपने सपने का जिक्र, घर की महिलाओं से किया, शंकाओं को और बल मिला। उन दिनों गायत्री बुआ, उतुरी आई थीं। घर की महिलाओं ने आपस में तय किया कि जिस दिन राजेश्वरी गाँव से बाहर जाए, उसका पीछा किया जाए क्योंकि राजेश्वरी का गौना अभी तक नहीं हुआ था।

और एक दिन जगदीश की माई ने खबर पहुँचाई कि राजेश्वरी सुल्तानपुर जाने वाली है। गायत्री बुआ के साथ, जगदीश की माई सुल्तानपुर जिला अस्पताल पहुँची। वहाँ की स्टाफ नर्स से बुआ ने पूछा, "क्या राजेश्वरी नाम की कोई महिला यहाँ गर्भपात कराने आई है"? नर्स ने स्पष्ट मना कर दिया किंतु जब बुआ ने कहा, "वह मेरी भतीजी है हम उससे मिलने आए हैं" तब नर्स ने स्वीकार किया और ठीक उसी समय राजेश्वरी को स्ट्रेचर पर ले जाते हुए बुआ ने देखा, साथ में राजेश्वरी की माँ, मालती देवी भी थीं।

गायत्री बुआ काफी तेज तर्रार थीं। विवाह से पहले उनका बी.टी.सी में चयन हुआ था और वह विद्यालय में शिक्षिका नियुक्त हुई थीं किंतु विवाह के उपरांत उनके पति विक्रमाजीत सिंह ने और उनके ससुर ने इस पर ऐतराज किया और उनकी नौकरी छुड़वा दी। हालांकि फूफा ने, बाद में काफी प्रयास किया कि बुआ पुरानी नौकरी वापस पा जाएँ लेकिन सफल नहीं हुए।

बुआ ने अस्पताल में कोहराम मचा दिया। राजेश्वरी की माँ, मालती देवी ने बुआ के पैर पकड़ लिए। अपनी इज्जत की दुहाई दी। बुआ टस से मस नहीं हुई। तुरंत महात्मा गाँधी स्मारक इंटर कॉलेज, आदमी भेज कर, बाबू को वहीं, अस्पताल में बुलवाया गया। बाबू के सामने बुआ ने सब कबुलवाया। बाबू से प्राथमिकी की दर्ज करने की मिन्नत की। किंतु बाबू ने मना कर दिया। परिवार

का मामला था। गायत्री बुआ ने बहुत हंगामा किया। पूरा गाँव सर पर उठा लिया। गाँव में शायद ही कोई घर ऐसा हो, जिसे इस घटित की उत्पत्ति और निष्कर्ष पता न चला हो। उतुरी, अपने जनमानस की मूक तार्किक संवेदनशीलता पर हतप्रभ और लज्जित था। सगी बहन का बेटा क्या परिवार नहीं था? जवान बेटे को खो देने की पीड़ा, जो सावित्री बुआ झेल रहीं थीं, क्या उसकी तपन बाबू तक नहीं पहुँची? चाचा ने भी काफी विरोध किया, बहुत हंगामा किया। घर की बेटियों ने भी जमकर विरोध किया। शंका की ज़द में आए घरों से हुक्का -पानी तो बंद हो गया, किंतु प्राथमिकी दर्ज नहीं हुई, तो नहीं हुई ।

आज उतुरी की सीमा पर, आदर्श ग्राम का लंबा चौड़ा बोर्ड लगा है। उस आदर्श ग्राम के अधूरे नक्षत्र कभी-कभी सावित्री बुआ में खो जाते हैं तो कभी फूफा की सरलता और सादगी में। दोनों ने जो खोया, उसके बदले ना उतुरी को कुछ मिला, न उन्हें और ना मुन्ना की आधी अधूरी कहानी को, जो शायद इस पन्ने को पलटते ही सदैव के लिए यादों का विराम चिन्ह बन जाएगी। किंतु इसके साथ ही बाबू के 'परिवार' की परिभाषा पर एक विराट प्रश्नचिन्ह भी लगेगा। "अश्वत्थामा हतो" बोलकर वो बच नहीं सकते, "नरो मा कुंजर" भी बोलना होगा।

६३.

पर यह उतुरी का निष्कर्ष नहीं है। उतुरी संक्षिप्त पर गूढ़ है ।स्वार्थ भी है ,परमार्थ भी है ।लड़ाई झगड़ा भी है, पिछड़ा- अगड़ा भी है ।पर उतुरी, उतुरी है। कारी सेमिया और भोदवा का संन्यास और ट्यूबवेल की पुक-पुक-पुक की आवाज से निकलती अनबुझी प्यास भी है। बासी दाल- रोटी के साथ भरा मिर्चा या सिरके से उठती, एक भूखी भूख है, जो अब नहीं मिटती। दरवाजे पर बँधे गाय-बैल ना जाने कौन चरवाहा ले गया और छोड़ गया, दुपहिया और चौपहिया वाहन। अब खुले में कोई नहीं सोता। सबके पास कुछ ऐसा है जिसे ताले-चाबी में रखना आवश्यक है। नीम के पेड़ के नीचे डली, सितारों की छाँव में पली खटिया, बड़ी हो गई है। वह अपने लिए ए.सी और कूलर ढूँढ़ने लगी है। बर्गर-पिज़्ज़ा दरवाजे पर खड़े हैं, घी-नमक-रोटी रोने लगी है। कूड़ा,मटकी और गगरी टूट कर बिखर गईं और दूध,दही, मट्ठा अनाथ हो, प्लास्टिक की पन्नियों की शरण में चले गए।

कहाँ हैं बड़की माई ?क्या कहतीं? जो भी कहतीं, हँसी का लबालब समंदर इठला उठता। बड़की माई? हाँ, एक अपूर्ण जीवन जो पूरा कभी नहीं हो पाया। आज भी नहीं। ना उनके जीवन पर विराम चिन्ह लगा, ना उनकी मृत्यु ने नया पृष्ठ खोलने दिया। एक अधूरी पुस्तक। पूरा जीवन मिला क्या? कुछ नहीं। सफेद, सूती साड़ी ने उतुरी से मल्हेपुर तक की सड़क, सफेद कर दी।

उनके पिता ने अपनी सारी जमीन उनके नाम कर दी थी। बड़की माई के चाचा के लड़कों को यह बात नागवार गुजरी। इसी बात पर दोनों में दुश्मनी थी। ज़मीन का कोई ज़मीर होता है क्या? बस कागजी लिखा-पढ़ी पर चलती-फिरती साँसों का पैबंद लग जाता है। चाचा ने उनके पिता को समझाने का प्रयास भी किया था, बड़की माई से कहा था कि जमीन का झंझट छोड़ दें। दोनों नहीं माने ।पापा ने भी कहा कि समझौता कर लें। बाबू नहीं माने। और एक दिन बड़की माई

मल्हेपुर गईं फिर कभी नहीं लौटीं। थाना-पुलिस, कोर्ट-कचहरी, बम-बंदूक कट्टा-पिस्तौल, सब अपने-अपने दड़बे से बाहर निकल आए। बड़की माई नहीं मिलीं। सफेद, सूती साड़ी की सफेदी ने काला अक्षर भैंस बराबर कर दिया। वह अब तो नहीं होगी, उनकी उम्र इसकी स्वीकृति नहीं देती पर कब, क्यों, कहाँ किसने? यह सारे प्रश्न, मोक्ष द्वार पर खड़े हैं ।युधिष्ठिर को सारे उत्तर देने होंगें। तब तक उनका क्रिया कर्म नहीं हो सकता। युधिष्ठिर, तुम सुन रहे हो ना? यक्ष-प्रश्न है।

६४.

उतुरी क्या, सभी गाँवों में नाम को तोड़फोड़ कर काम चलाया जाता है। प्राण पति से प्राण, प्राण से परान, परान से पराना बन जाता है। प्रभा-परभा, पूर्णिमा-पुड़िमा,कुसुम-कुसुमी, गायत्री -गइतरा, सावित्री -सवितरा और सुल्तानपुर, सुल्तापुर बन जाता है। प्रभा को सब परभा ही कहते थे, पढ़े-लिखे अनपढ़, सब। उतुरी में प्रभा और रेनू से ही मेरी खूब जानती। मेरी चाय की तलब का ख्याल वही रखतीं थीं। अरे! नहीं। बड़की अम्मा से ज्यादा नहीं। बड़की अम्मा से मेरी खूब पटती । एक शायद मैं ही था जो उनसे कभी डरा नहीं। वह अगर घर में रहतीं तो सिक्का मेरा ही चलता। मैं राजा होता। जो बोल दूँ वही बनता, जब चाय चाहिए, मिल जाती। कितने भी गुस्से में होतीं, उन्हें हँसा देता।मेरी अभिन्न मित्र।

समय ,कुछ समय हमसे छीन नहीं पाता। उनमें से एक टुकड़ा, सर्दियों की वो रातें थीं, जब सारा गाँव ठिठुरन से कुनमुना रहा होता, हमारे घर में अलाव के पास हँसी के ठहाके सुलग रहे होते। मैं, बड़की माई, बड़की अम्मा, सुधा दी, प्रभा, रेनू और भाभी कँपकँपाते अलाव में आग लगा देते थे। भाभी का गाना होता। चुहलबाजी होती। बड़की माई और बड़की अम्मा, उस समय हमारी समवयस्क होतीं।"एक आँख मारूँ तो__" गीत पर बड़की माई की विशुद्ध साहित्यिक टिप्पणी की देहाती हँसी पर गूँजता ठहाका, बाबू की नीँद को कोहनी मारकर उठा देता है।" कावा, तू सबे रतिया म हंगामा मचाने अहा"?उनकी वह खिलखिलाहट, विशुद्ध जीवन की प्रतिलिपि होती। जीवन के वे सर्वश्रेष्ठ पन्ने, जिस पर जो कुछ लिखा, हमने व्यक्तिगत रूप से, बिना किसी दबाव या संकोच के। वो पन्ने दरजी से झाँकती, चोर हवाएँ, ले उड़ीं।

अब उतुरी के ताले-चाबी में भी वह हँसी नहीं है। रजाई के अंदर दुबके बाबू भी, उस समय, हमारी महफिल पर कान दिए रहते और बीच-बीच में अपनी

विशिष्ट टिप्पणी से इंगित करते कि मजलिस में हम भी हैं। मजलिस उठ गई है। कोई ऐसी आग है जो उस अलाव को फिर जला दे?

कितनी सादगी थी! जितनी सादगी थी उतनी ही संवेदनाएँ थीं, जितनी संवेदनाएँ थीं, उतना ही लगाव भी था। पर कहा ना, समय किसी को भी साँचे में नहीं ढलने देता। जैसे ही व्यक्ति को लगता है हाँ! यह सही पैमाना है, मैं इस साँचे में ढल सकता हूँ। समय वह साँचा तोड़ देता है। जाओ, नया तैयार करो। उम्र बीत जाती है, वो सड़क जो छोड़ आते हैं कि कभी फुर्सत पर उस पर चलेंगे या तो वह सड़क ही नहीं बचती या उस तक पहुँचने के सारे मार्ग बंद हो जाते हैं या जेब में उम्र की फूटी कौड़ी नहीं बचती। जब भी उतुरी जाता, बड़की अम्मा, प्रभा या रेनू या भाभी से कहतीं, "तनी सहिना डाय द्या" या "तनी रिकौंच बनाय द्या, बेटउना आय अहै"। उतनी आत्मीयता और प्रेम की विशुद्धता अब नहीं मिलती। मेहमानवाज़ी के आलीशान शगल होते हैं किंतु जस्ते के कटोरे या थाली या काँसे या फूल की थाली में परोसा गया प्रेम, सोने और चाँदी की थालियाँ देख घबरा जाता है।

आधार में अपनेपन की मजबूत नींव खोखली है । मन बेचैन हो जाता है, बीते हुए जीवन का एक क्षण जीने के लिए, किंतु निर्दयी समय, क्रूरता की सारी हदें पार कर रख देता है। जो खो दिया, सो खो दिया। वापस पाने की कोई जुगत नहीं ।यही सजा होती है। सबसे निर्मम। कानून की कोई किताब इसे नहीं लिख सकती। समय लिखता है और बार-बार धमकाता है, सावधान। पर मनुष्य कितना भी सावधान हो, यह सजा सबके हिस्से में आती है। जीवन कुएँ में पड़ी भाँग ही तो है। सबको नशा होगा और सब का नशा उतरेगा।

बड़की अम्मा की तबीयत अक्सर खराब रहती थी। उनकी कमर में दर्द रहता था। चलने-फिरने में दिक्कत होती थी। फिर उनका चलना-फिरना एकदम बंद हो गया। उन्हें इलाज के लिए लखनऊ के मेयो अस्पताल में लाया गया। डॉक्टर

सुनील अग्रवाल ने कुछ दवाइयाँ लिखीं। उनकी दवाओं से फायदा हुआ। अम्मा फिर चलने-फिरने लगीं।

इसी दौरान वो स्टूल से गिर पड़ीं। कमर और कूल्हे में चोट आई। चलना फिर बंद हो गया। पुनः मेयो अस्पताल लाया गया। वहाँ उनकी कमर का ऑपरेशन हुआ किंतु उनके पैरों में उसके बाद भी काफी दर्द रहता था। के.के अस्पताल, लखनऊ में उनके कूल्हे की प्लेट बदली गई। वहीं उन्हें खून चढ़ाया गया। वहाँ से आलमबाग, बुआ के घर, आईं। अम्मा काफी खुश थीं। उतुरी जाना चाहतीं थीं। शाम को कोमा में चली गईं। वहाँ से सहारा अस्पताल ले जाया गया, जहाँ भइया से उनकी आमदनी पूछी गई। आमदनी के हिसाब से इलाज होगा। धन्य है! वो जमातें, जो इतनी जमातें पढ़ गईं कि चंबल और बेतवा वीरान हो गए। बड़की अम्मा को वेंटिलेटर पर रखा गया। वेंटिलेटर, जो मृत्यु-द्वार पर खड़े मरीज की अंतिम आशा माना जाता है, कुछ निजी अस्पतालों ने उसे टकसाल बना लिया है। खासकर, बुजुर्ग मरीज, जो उनके लिए या तो अनुसंधान के गिनी पिग होते हैं या ब्लैंक चेक। अम्मा निष्क्रिय थीं पर अस्पताल के बिल चैतन्य थे। पूरी तरह स्वस्थ। इतने स्वस्थ की कई स्वस्थ को अस्वस्थ कर दें। आशा और उम्मीद के बीच दिन निकलता और ढल जाता। अम्मा उदासीन ही रहतीं।

सुमन का विवाह होना था,उसी में व्यस्त था। एक बार अम्मा हमारे यहाँ आईं थीं। वही उनसे आखिरी मुलाकात थी। मुझसे कहा था, “भइया, बियाह कइ ल्या। हमहु देख लेइत।का जनी केतना दिन अउर बदा अहै”। मैंने हँस कर कहा था, “अरे! अम्मा, तू हमरो बियाह देखबू अउर हमार लड़िकौ कै बियाह देखबू”। समय ने मुझसे कहा, ” तू कौन? मैं खामख्वाह “?

अम्मा खुलकर नहीं हँस पाईं। हँसी की नितांत क्षीण रेखा उभरी और विलुप्त हो गई।कभी बीते हुए समय की तलाश में भी निकले, मनुष्य। बस, उसके बाद बड़की अम्मा को अस्पताल में निष्क्रिय देखा, जब भी देखा। मन की कुछ नहीं

चलती। विधान की लकीरें, अदृश्य किंतु बेहद अनुशासनात्मक हैं। एक इंच उधर, ना एक इंच उधर । जाता चुपचाप उन्हें देखकर लौट आता । वह हँसी जो उतुरी में खुलकर बरसती थी, बिना किसी मूल्य के, आज सब कुछ लुटा कर भी नहीं मिलती। हाथ जोड़ो, पैर पड़ो। समय के पास फुर्सत कहाँ? चलो, चलते जाओ। कतार बहुत लंबी है। रुको मत। समय के प्रहरी, आदेशानुसार, सबको लाइन में ला देते हैं।

अब? नहीं। अब? नहीं। अब? अस्पताल में इंतजार की पलकें अपलक रहतीं। हरकत हुई क्या? नहीं। दिन निकलते जा रहे थे। उम्मीद टूट रही थी। सबके अंतर्मन का सच व्याकुल था। चाचा ने कहा, ‘‘कुछ नहीं बचा है। अस्पताल पैसा बना रहा है’’। भइया नहीं माने। माँ थीं। उम्मीदें वहीं से तो प्रारंभ होती हैं, कैसे नाउम्मीद हो जाएँ? फिर एक दिन शिवपूजन जीजा आए। कहा, ‘‘कुछ नाही, तमासा अहै । जेतना पइसा चाहे फूँक ल्या, कुछु होए वाला नाय न’’। जिद की, डिस्चार्ज करा कर ,उतुरी ले चलने को कहा। ऑक्सीजन पर बड़की अम्मा को उतुरी लाया गया। रात में सिलेंडर बदलने के दौरान, अम्मा ने आँखें बंद कर लीं। कहतीं थीं, ‘‘बड़ा खराब समय आवा है, लोगन। मनइ कइसे रहे’’? बस, खराब समय से मुँह मोड़ लिया। एक साँस नहीं ले पाईं और सब छोड़ दिया। जो कुछ इतने जतन से रखतीं, सँवारतीं। सब छोड़ दिया।उतुरी की कुसरना चलीं गईं ।एक अध्याय और समाप्त। समय बोला, ’’रुकना नहीं है, चलते रहो’’। कतार आगे बढ़ गई।

६५.

अम्मा-पापा और सुधा दी गए थे। समय ने कहा, "तुम कहाँ चले? तुम्हें अभी बहुत कुछ खोना है। रुको यहीं"। बाँध कर डाल दिया। मैं नहीं गया। किंतु शुद्धि के दिन बाल मुँडवाए। यहाँ समय की नहीं चली, शायद यह स्वयं को सांत्वना देने का प्रयास था।"देखा, अम्मा, तोहका भुलाय नाय हइ"। लेकिन यह सब व्यर्थ होता है। अंतर्मन की पीड़ा सब झटक देती है। जाओ, यहाँ से। तुम मुझे नहीं समझ सकते।

उसके बाद, हम, युगाँधर की छठ के लिए, कई साल बाद, उतुरी गए थे। यह पहली बार था, जब उतुरी गया था और बड़की अम्मा नहीं थीं। घोषित निषेध था। रात में पहुँचे थे। अब कोई धार देने नहीं आता। यहीं गलियारे में अम्मा बैठती थीं। पास में झपोलिया रहती। झपोलिया में पान, सुपारी, कत्था, जाफरानी जर्दे का डिब्बा और सरौता रहता। पारंगत हाथों में सरौते के बीच कट्ट-कट्ट कटती सुपारी की धुन पर ही अम्मा बतियाती रहतीं। गलियारे में कोई नहीं है। नए दस और बीस के नोट शायद दरज़ी में डूब गए, अम्मा देतीं थीं, कभी-कभी। कभी पान लाने को, कभी सुपारी लाने को, कभी कत्था या जर्दा लाने को। खुशी-खुशी दौड़ जाते, भवानी की दुकान। भवानी की दुकान उन दिनों उतुरी का शॉपिंग मॉल होती थी। उसकी महक ही चली गई। नहीं, अब नहीं है। मँहगे से मँहगे मॉल के एयर फ्रेशनर में नहीं, पेरिस की परफ्यूम में भी नहीं। दरज़ी के रास्ते सब बह गया। दरज़ी शर्म से सिकुड़ गया है। गलियारे के पार अब खटिया नहीं बिछती। मजलिसें, ज़माना हुआ, उठ चुकीं हैं। सोफा है, डाइनिंग टेबल लगी है, सोनी का एल. ई. डी पैनल लगा है। यहीं पीढ़े पर बैठ कर भोजन होता था, सामने कोई बैठ कर, पंखा झलता रहता। सब कुछ हाथों से फिसल रहा है, हवाओं में विलुप्त जाफरानी जर्दे की महक की तरह, पर हाथ,

फिर भी खाली नहीं हैं । पूरे गाँव में रोशनी के नए केंद्रबिंदु देदीप्यमान हैं पर फिर भी लालटेन और ढिबरी की तुलना में,ये प्रकाश नेत्रहीन ही है।

उस दिन कलकत्ता वापस लौटना था। मैं नहीं जाना चाहता था। खद्दर की एक नई कमीज थी मेरे पास। एक दिन पहले उसे कोइला को धुलने को दे दी थी। सोचा था, इसी बहाने जाना टल जाएगा। जाना नहीं टला। कमीज, कोइला के पास ही रह गई। आज मन किया, जाकर वापस ले आऊँ। पर अब कोइला भी नहीं रही।

पापा, अब जो मिलता है, चुपचाप खा लेते हैं। अम्मा बतातीं थीं, पहले कहते थे, खाली जात का पीसा हुआ खाएँगे। जरा-जरा सी बात पर अम्मा से नाराज़ होकर कहते, “बुलाओ रिक्शा, इनको भैरोपुर भेज दो”। बड़की अम्मा से भी पापा की खूब बहस होती थी। भइया की शादी पर खूब लड़े थे, दोनों। ऐसा शायद ही कोई विवाह हुआ हो, उतुरी के हमारे घर में, जिसने बड़की अम्मा और पापा के युदध-कौशल का आशीर्वाद न लिया हो। किंतु जब मसले बेहद पेचीदे होते तो बड़की अम्मा पापा से ही मशविरा करतीं, बाबू को उनकी सरलता और सादगी के कारण दूर रखतीं। इन रिश्तों के खुरदरेपन के अंतर में निहित मजबूत गाँठें, समय के हरसंभव प्रयास के बावजूद नहीं खुल पाईं। ये वो समय था जब रिश्ते, शब्दों की वफादारी से नहीं दुर्दिनों में कंधों की मजबूती से पहचाने जाते थे। पर्दे थे, उनका तिलस्म नहीं। घर का पता, घर होता था, बीस कमरों का मकान नहीं।

इस घर ने अपनी दीवारों पर सब दर्ज किया था। अफवाहों और कानाफूसियों ने सब लीप-पोत डाला। पापा अब भी उसी उतुरी की तलाश में सुबह-सुबह निकल जाते हैं। दो-एक परछाइयाँ, अब भी इधर-उधर, बिखरी पड़ी हैं, पर उनसे पूरे उतुरी का पुनर्निर्माण असंभव है। वैसे भी, पापा की भी उम्र हो चली है। निराश होकर लौट आते हैं पर जहाँ लौटना चाहते हैं, वहाँ नहीं।

अम्मा ने छठ के आयोजन का विस्तृत प्रकरण मुझे नहीं बताया था। सिर्फ इतना बताया था कि पूजा होती है और अगले दिन सोहारी और हरहरा बँटता है। शायद अम्मा पुरानी हो चलीं थीं। नए समीकरणों से अंजान। अगले दिन पूजा के बाद, मैं लौटने की तैयारी करने लगा। सिम्मी, शिवि के साथ होटल में अकेली थी। अगले दिन उसका जन्माष्टमी का व्रत था। अम्मा-पापा साथ आने को तैयार नहीं हुए। पेड़ का सिर, धड़ सब अलग हो जाए, जब तक जड़ है, पेड़ है। जड़ें नहीं छोड़ीं थीं, न अम्मा ने, न पापा ने।

६६.

आज फिर उतुरी लौटे थे। जड़ें वापस खींच रहीं थीं।अम्मा, अब शारीरिक तौर पर कमजोर थीं। छड़ी लेकर चलतीं थीं। पर वापस आना था क्योंकि यही वो ठगिनी विद्या थी, जिसे कोई पढ़ पाया नहीं, पर समझाया सबने।

भाभी गाड़ी तक आईं, अम्मा को उतारने।

अम्मा धीरे-धीरे गाड़ी से उतरीं। भाभी, अम्मा को सहारा देकर अन्दर तक ले गईं। महालय पहली बार उतुरी आया था, युगाँधर दूसरी बार। दोनों की प्राथमिकताएँ भिन्न थीं और शायद इसीलिए उतुरी को देखने का नजरिया भी भिन्न था। महालय पापा की तरह चंचल था, युगाँधर अम्मा की तरह सौम्य और सरल। उतुरी में महालय के लिए उन्मुक्त आकाश था तो युगाँधर के लिए खामोशी का एकांत।

अम्मा से मिलने कई औरतें आईं। पाँती अब नब्बे से ऊपर की थीं किंतु चाल में वैसी ही तेजी और स्वभाव में वही तीखापन था । प्रातः चार बजे उठकर ,आँगन बुहारतीं और यथासंभव बाहर के काम निपटा कर, नहा लेतीं।वैसी ही फुर्ती, वैसी ही चुस्त-दुरुस्त। रामपुर वाली भी आईं थीं। अब उनका घर, बेचन के घर से अलग बन गया था।

उतुरी में घर खत्म हो रहे थे, नए कमरे पैदा हो रहे थे, परिवार विलुप्त थे, जन आकांक्षाओं की भीड़ थी। बागों में आलीशान मकान उग आए थे, खेतों में राइस मिल और मैरेज लॉन बोए गए थे। ऊँची- ऊँची चहारदीवारियों के बाहर कूड़े के ढेर पड़े थे। गाँव अपने अर्थ तलाशने शहर के शब्दकोश का हिस्सा बनना चाहते हैं, शहर उलटे पाँव, गाँव की तरफ भाग रहे हैं, अपनी जड़ें तलाशने। चौराहे पर खड़ी भीड़ दोनों में से किसी को पहचान नहीं पा रही। न

शहर, न गाँव, अब वो चौराहे पर ही टिक जाती है, उसका हिस्सा बन जाती है। ठीक है, यहाँ से शहर और गाँव बराबर दूरी पर हैं।

बाबू अब कम बोलते हैं। पाँती से दो तीन साल छोटे हैं। अम्मा अब भी उनका पर्दा करतीं थीं। अम्मा उन्हें देख कर उठ कर जाने लगतीं हैं, बाबू रोक देते हैं। कहते हैं, " बइठा हम जात हइ"। अंदर चले जाते हैं। पर मुझे ऐसा लगा, वो वहीं बैठना चाहते थे, सबके बीच। वृद्धावस्था का एकांत कितना खूंखार होता है, स्वयं से ही डर लगने लगता है। नदी उतरा हुआ जल वापस समेटना चाहती है, बादल खेल-खेल में बिखेरी गईं बूँदों को याद कर रोने लगते हैं, सूर्य अपनी किरणों की तलाश में पृथ्वी की साधना किए जा रहा है। वापस कुछ नहीं मिलता।

घनघोर सन्नाटों से घर भरा है। बस, पापा सबको पूछते हैं। उन्हें एक-एक नाम, एक-एक रिश्ता याद है। सबको झकझोरने का प्रयास करते हैं। कुछ हलचल नहीं होती। एक पूरी पीढ़ी विलुप्त होने की कगार पर इतिहास में अपना हिस्सा माँग रही है। इंटरनेट और मोबाइल दोनों इंकार में सिर हिला देते हैं।

दूरियाँ बढ़ रहीं थीं। रिश्ते अपनी अधोगति में, स्वयं के लिए ने सुसंस्कृत शब्दों की तलाश में निकले थे। "कक्का" छोड़ कब हम "चाचा" के राजमार्ग पर उतरे पता नहीं। पर वो राजमार्ग पटा पड़ा था "मम्मा" "पापा" "डैड" "मॉम" से। रिश्तों के नवीनतम अध्याय, जिनसे रिश्ते तो रिस गए किन्तु छोड़ गए आधुनिकता के परचम पर बड़ी-बड़ी हवेलियों में मरणासन्न पड़े घर।

कुछ दिन बाद हम लौट आते हैं, शायद एक शहर से दूसरे शहर। संसार तरक्की की चाल नाच रहा है, पर समझ में नहीं आता, ऐसा क्या पा रहा है, जिसके लिए सब खोता जा रहा है। बेहद तिलस्मी चिलम थी जिसे दुनिया फूँके जा रही थी, खाली दिलों में भरा गुबार, बाहर नहीं आ पाता।

जो था, जितना था, उतना ही समेट कर अम्मा-पापा दोनों खुश थे। बाकी बची परछाइयों में, अपने समय की धूप-छाँव तलाश ली थी।

कुछ दिन बाद हम फिर उतुरी गए। इस बार अंकित के लड़के की छठ पर। युगाँधर और महालय अन्नी की बिटिया कासू से घुल-मिल गए थे। उनका समय कट जाता। मुझे ऐसा लगता उतुरी जाकर, अम्मा, पापा दोनों में एक नई स्पूर्ति, नई ऊर्जा का संचरण होता। इस बार पापा, अम्मा से महीने, दो महीने वहीं रहने को कहने लगे किंतु मैं इसके लिए तैयार नहीं था। हाँ, इतना अवश्य तय किया था कि महीने में एक बार अम्मा-पापा को यहाँ अवश्य लाना है।

६७.लखनऊ

उस दिन भी पापा के साथ अम्मा नीचे उतरीं थीं, नाश्ते के समय। अम्मा ने कहा, "हम खाएँगे नहीं"। सब ने सोचा शायद तबीयत खराब है। मैंने पूछा, "क्या हुआ? क्या तबीयत सही नहीं है"? अम्मा बोलीं, "नहीं, हम अपने घर जाकर ही खाएँगे"।पापा हँसने लगे, बोले, "तुम्हारा ही तो घर है"। अम्मा गुस्से में भरीं थीं, बोलीं, "कितनी बार बोले इनसे, हमको यहाँ ना लाया करो। जबरदस्ती ले आते हैं"। मुझे लगा समय अधिक होने की वजह से या किसी और कारण से अम्मा नाराज हैं। काफी समझाने-बुझाने पर अम्मा ने थोड़ा-बहुत नाश्ता किया और फिर पापा के साथ ऊपर चलीं गईं। थोड़ी देर बाद पापा, अर्चना को बुलाने आए कि चलकर देखें, शायद अम्मा को बाथरूम जाना है। मैं भी साथ में ऊपर गया। देखा अम्मा बाथरूम के सामने खड़ीं हैं। मैंने पूछा, "बाथरूम जाना है" अम्मा बोली, "हाँ"। मैंने कहा, "जाओ, फिर क्या दिक्कत है"? अम्मा बोलीं, "हम इसमें नहीं जाएँगे"। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था। मैंने कहा, "इसी में तो जाती थी, अब क्या हो गया"? अम्मा बोलीं, " नहीं, हमको घर ले चलो"। मेरा पारा चढ़ गया। मैं उनके बार-बार घर के जिक्र से परेशान हो गया था। मैंने गुस्से में कहा, "ठीक है, यहाँ ताला लगा दो, जाओ जहाँ जाना हो"। खूब ताने दिए, अम्मा को। मुझे लग रहा था, अम्मा, मुझसे या अर्चना से, किसी बात पर नाराज हैं। खूब खरी-खोटी सुनाई। अम्मा चुप हो गईं। फिर अम्मा को पकड़ कर बाथरूम के पास ले गया और कहा, "पैर उठाओ"। अम्मा ने झिझकते हुए एक पैर ऊपर किया, फिर दूसरा, तब बाथरूम के अंदर गईं।

जब मनुष्य को अक्ल की आवश्यकता होती है, तभी पत्थर पड़ते हैं। यही शायद मेरे साथ भी हुआ। सारे अनुमान, आँकलन, मैं अपनी चिंतन शैली में कर रहा था। मूर्खता इसी शैली में परिभाषित होती है। दो और दो चार कर नहीं

पा रहा था, पाँच की गुंजाइश बना रहा था। आज सारी कड़ियों को जोड़कर देखता हूँ तो लगता है, असंभव का अर्थ यही है। समय के सारे टुकड़े जोड़कर, तस्वीर स्पष्ट करने में जो समय लगता है, उसी दौरान समय के और टुकड़े बिखर जाते हैं। तस्वीर पूरी नहीं होती, कभी नहीं। यही असंभव है, यही भाग्य है, यही समय है।

अम्मा कुछ महीने से, दिन-रात का अंतर नहीं कर पा रहीं थीं। दोपहर में सोतीं, शाम को उठतीं तो उसे सुबह समझतीं। कई बार, शाम को चाय पीने के बाद नहाने को कहतीं। जब उनसे कहा जाता, सुबह तो नहा चुकी हो, हँसने लगतीं और कहतीं, “यह कैसे होने लगा? पहले तो ऐसा नहीं होता था, दिन- रात”। धीरे-धीरे सुबह, दोपहर, शाम, रात का अंतर अम्मा के लिए समय के साथ बदलता रहस्य बन गया। रात में दो बजे, ढाई बजे, तीन बजे उठकर बैठ जातीं। पापा का इंतजार करतीं। सुबह घूमने जाने के लिए। उनको बताना पड़ता कि अभी बहुत समय है, अभी आधी रात है, सो जाएँ। मैं साढ़े तीन बजे सुबह उठ जाता था, बच्चों के स्कूल के साथ अम्मा-पापा की दिनचर्या नियमित रखने के लिए, आवश्यक था। उठने के बाद कमरे का दरवाजा बंद कर, मैं बाहर आकर अपने काम में जुट जाता। इस बीच कभी दरवाजे के शीशे से देखता, अम्मा बेड पर बैठी, दरवाजे की तरफ देखती रहतीं। एक दिन अम्मा उठीं और दरवाजा जोर-जोर से ठोंकने लगीं। मैं ऊपर था। अर्चना की नींद खुली, तो उसने पूछा, “क्या हुआ, मम्मी”? “यह दरवाजा खोलो, नहीं हम तोड़ देंगे”। अर्चना ने बहुत समझाने क प्रयास किया कि अभी अँधेरा है किंतु अम्मा नहीं मानीं। आखिरकार दरवाजा खोलना पड़ा, तब अम्मा शांत हुई।

इन सब व्यवहारों को हम उम्र के साथ जोड़कर देख रहे थे और अम्मा में आते इन बदलावों को हम सहजता से ले रहे थे। लेकिन मेरे मन के किसी कोने में आशंका बलवती हो रही थी कि कैंसर फैल रहा था। मन को एक निरर्थक सांत्वना प्रदान करने के लिए, हालांकि, आगरा के डॉक्टर पारीख से उनकी दवा चल रही थी पर मैं जानता था यह सब आत्म-संतुष्टि का तमाशा था।

अम्मा का दाहिना हाथ सूजने लगा था। सबके कहने पर डॉक्टर आलोक गुप्ता के पास ले गया। उन्होंने कुछ दवाइयाँ लिखीं पर मैंने नहीं लीं। डॉक्टर वरदा अरोड़ा की दवा की एक खुराक, अम्मा नहीं बर्दाश्त कर पाईं थीं। रात भर बाथरूम में उल्टी-दस्त से परेशान रहीं थीं। तब अम्मा ने कहा था, "भले ही मर जाएँ, अब यह दवाई नहीं खाएँगे "। वो दवाइयाँ देने पर अम्मा का शरीर बिल्कुल बेजान हो जाता। कष्ट से निजात क्या मिलती, कष्ट और बढ़ जाता। अम्मा अभी चलती थीं, फिरती थीं, बात करतीं, ठीक से खाना-पीना खातीं थीं। उन भारी- भरकम दवाइयों से शायद अम्मा बिस्तर पकड़ लेतीं।

अंततः अम्मा ने इशारा कर ही दिया। सुबह चाय पीने के बाद अम्मा ऊपर नहीं गईं। सिम्मी के कमरे में बेड पर जाकर लेट गईं। थोड़ी देर बाद अम्मा रोने लगीं। मैं बेहद घबरा गया, अम्मा का सिर सहलाते हुए पूछा, "क्या हुआ, अम्मा, कुछ दर्द हो रहा है क्या"? अम्मा कुछ ना बोलीं। बस रोती रहीं। काफी पूछने पर उन्होंने रोते हुए कहा, " भइया, जब सबका साथ छूटता है, तो रोते नहीं क्या"? सिर से पाँव तक सिहर गया था। बचपन से जिस डर से घिरा रहता वह आकर साक्षात सामने खड़ा हो गया था। उस डर को शब्दों में बाँधा किसने? उसी ने, जिसके लिए यह डर था। अम्मा को खो देने की कल्पना मात्र से मैं कितना कमजोर हो जाता था, मैं जानता हूँ। उसी भय को साथ लिए चलता गया, चलता गया। आज वह मुझसे आगे निकलना चाहता था। मैं रोने लगा। सिम्मी, सुमन, प्रतिभा को फोन कर बताया, अम्मा ऐसा कह रहीं हैं। अर्चना ने मुझे रोते देखा तो कहा, "परेशान ना हो, अभी नहा-वहा लेंगी तो सही हो जाएँगी"। थोड़ी देर बाद अर्चना ने अम्मा को नहलाया, तैयार किया, नाश्ता दिया। अम्मा शांत थीं। आशंकाओं के प्रतिबिंब, मूर्तिवत सामने आ रहे थे। घर में सबकी आँखों में वह अनजान छाया देख रहा था जो लंबी होती जा रही थी और एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे से मौन-मूक संवाद में लिपटी रहती। मैं उसे सिरे से अस्वीकार कर रहा था। मुझे पता नहीं क्यों या कहाँ से यह आत्मविश्वास आया था कि जिस दिन प्रातः मैँ पूजा कर लूँगा, अम्मा को कुछ नहीं होगा और

कम से कम मेरे सामने तो असंभव है। मेरी पूजा मानो अम्मा की सुरक्षा की हुंडी थी। पूजा करते समय सूर्य-नमस्कार, गायत्री-मंत्र, शिव-स्त्रोत, दुर्गा- स्तुति, गणेश-वंदना और सुंदरकांड के दो पद और पूरी हनुमान चालीसा पढ़ता था।

इतवार को बहुत देर हो जाती थी, उस दिन पूजा नहीं करता था। शनिवार और रविवार, मेरे लिए विशेष भय का कारण थे क्योंकि घर में किसी की भी तबीयत, इन्हीं दोनों दिनों के दौरान होती थी। २०१९ के प्रारंभ में हम हनुमान सेतु और मनकामेश्वर के लिए निकले थे। दोनों स्थानों पर बहुत अधिक भीड़ थी। दो छोटे बच्चों और दो बुजुर्गों को लेकर उस भीड़ में शामिल होना असम्भव था। हम गाड़ी से उतरे ही नहीं, दूर से प्रणाम कर लौट आए। ईश्वर शायद कुपित हो गया। उसके बाद कई बार प्रयास किया, अम्मा को फिर कभी, किसी मंदिर नहीं ले जा सका। कोई न कोई अड़चन आ ही जाती। भगवान ने क्या अपने कपाट हमारे लिए सदैव के लिए बंद कर लिए थे या संघर्षों के जो पाठ अधूरे रह गए थे, उनकी पाठशाला, हमारे लिए ,पुनः खोल रहे थे?

उसी दिन शाम तक, सुमन, सिम्मी और प्रतिभा लखनऊ आ गईं सुधा दी तो लखनऊ में ही थीं। दीदी को सुल्तानपुर से आने में ज्यादा समय नहीं लगता था। अम्मा ने सजा के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने शुरू कर दिए थे। नियति सजा का माध्यम उन्हें ही बनातीं है, जो आपके बेहद अज़ीज़ होते हैं।

समय ने एक बार फिर कलम बदली और किरदार भी बदल दिए। अम्मा को छोटी चंद्रावती का रोल दिया और मुझे कहा, "तुम बड़ी चंद्रावती बन कर, छोटी चंद्रावती को संभालने का किरदार अदा करो"।

अम्मा अपने बचपन में लौट रही थीं। अचानक रोना शुरू कर देतीं। मामा को याद करतीं। "विमली" "विमली" चिल्लातीं। "विमला" अम्मा की छोटी बहन, जो बहुत पहले गुजर चुकीं थीं। उन्हें आसपास लोग दिखाई देते, कहतीं, "इनको खिला दो, इनका पेट भर जाए"। कहीं, कोई नहीं होता। अपने बगल, खाली बिस्तर को, या तकिया को थपकियाँ देतीं। सारी चादर को बटोर कर,

उसे फींचतीं, मानो कपड़े धो रही हों। सब उन्हें समझाने का प्रयास करते, सब की बातें ध्यान से सुनतीं लेकिन फिर वही करतीं। ८६१ ए आशीर्वाद, उदासी के नए सोपान चढ़ रहा था। अम्मा के स्पर्श से द्रवीभूत घर का कोना-कोना उदास था। बार-बार सरगोशी करता, "चंद्रावती लौट आओ"। किंतु चंद्रावती अब ८६१ ए आशीर्वाद को अपना घर ही नहीं समझतीं थीं। पापा से बार-बार कहतीं, "हमें अपने घर ले चलो"। घर की दीवारें और उदास हो जातीं। पापा की अदृश्य पीड़ा उन्हीं दीवारों में समा जाती और एक क्षीण हँसी, हँसकर पापा कहते, "यह भी तो तुम्हारा घर है"। अम्मा भड़क जातीं, गुस्सा करतीं। उनकी असहाय संतानें, उनको चारों तरफ से घेरे, एक उम्मीद लगाए रहतीं कि कोई चमत्कार हो जाए, अम्मा फिर से वैसी ही हो जाएँ और एक बार सबको उसी तरह पुकारें जैसे पहले पुकारतीं थीं। समय बोला, "नहीं चंद्रावती, तुम्हें जो किरदार मिला है, वही निभाओ। बच्चों के मोह में मत पड़ो"। समय का अक्षरशः पालन करते हुए, अम्मा ने सबसे पहले इस घर का मोह त्याग दिया।

प्रतिभा जिद पर अड़ी थी, अम्मा को डॉक्टर को दिखाने के लिए। मैं इसके लिए तैयार नहीं था, मैं उनके शरीर को और कष्ट नहीं देना चाहता था। पिछले पाँच साल में, अम्मा ना जाने कितनी दवाइयाँ खा चुकीं थीं। डॉक्टरों के पास हर मर्ज की दवा है पर हर दवा का एक मर्ज भी है। फिर भी प्रतिभा, सुमन और सिम्मी, उन्हें आशियाना में, डॉक्टर सक्सेना के पास ले गईं। उन्होंने अम्मा को मनोभ्रंश का शिकार बताया। वास्तव में यह कोई बीमारी नहीं, कई बीमारियों और परिस्थितियों का सामूहिक असर होता है। उन्होंने कई दवाइयाँ लिखीं और अम्मा की दवाइयों की फेहरिस्त में और नाम जुड़ते चले गए।

अम्मा, स्वयं, अब अपना कोई काम नहीं कर कर पातीं, उन्हें सहारा देकर चलाना पड़ता। अपने कमरे से बाहर आने में झिझकतीं। उनका दाहिना हाथ बहुत अधिक सूजा था। बाएँ हाथ पर जैसे उनका नियंत्रण ही न था। उससे लगातार अपने माथे पर मारती रहतीं। जब पूछो, क्यों मार रही हो, तो उसी को

दोहरा देतीं। शब्दों की चयन--क्षमता और तार्किक-शक्ति खोती जा रहीं थीं, अम्मा।

रात में थोड़ी देर सोतीं और फिर पूरी रात जगतीं। कभी सुधा दी, कभी प्रतिभा, कभी सिम्मी, कभी सुमन को आवाज देतीं। उनके रोने और चिल्लाने की आवाज़ पूरे मुहल्ले में गूँजती। लोग पूछते, “क्या तकलीफ ज्यादा है”?

अम्मा अब चाय नहीं पीती थीं। हाँ, हल्दी वाला दूध बड़े मन से पी लेती थीं। वो भी उन्हें कप में पिलाना पड़ता। एक-एक घूँट के बाद कप सामने से हटा लेना पड़ता क्योंकि उनका हाथ चलता रहता और सिर हिलता रहता। उन्हें खाना भी मैं अपने हाथों से ही खिलाता। खाते समय अम्मा एकदम बच्चों सा व्यवहार करतीं। जो चीज उन्हें पसंद हो, वह खिलाने पर, वो अपने हाथ से जाँघों पर हल्की-हल्की थपकियाँ देती रहतीं और सिर मानो झूमता रहता। उन्हें खिलाते समय अपना बचपन याद आता, जब वो रात में मुझे नींद से उठाकर दूध पीने के लिए या खाना खाने के लिए मिन्नतें करतीं। बचपन में, अम्मा जब भी तरोई, नेनुवा, लौकी या कोई हरी-सब्जी बनातीं, बहुत नाटक करता था, नहीं खाता था। क्या मुझे पसंद नहीं था? नहीं, बहुत पसंद था, लेकिन अम्मा की चिरौरी, अम्मा की मिन्नत, ज्यादा पसंद थी। अम्मा जब रात में मनुहार करके खिलातीं कि, ” एक कौर खाकर देखो, भईया, अच्छा लगेगा” उस खाने में जो स्वाद आता, अपने आप लेकर खाने में कहाँ आ पाता?खा लेता पर अम्मा के सामने मुँह ही बनाए रहता, कभी नहीं कहा कि उससे स्वादिष्ट और कुछ नहीं।

समय की खाता-बही में सारा समेटा हुआ है।सारा हिसाब देना पड़ता है। अम्मा जब खाना गिरा देतीं या दवाइयाँ उगल देतीं या पानी से भरा गिलास, खाने की प्लेट या दूध से भरा कप गिरा देतीं, बहुत खीझता, उन्हें बच्चों की तरह डाँटता। समय झट से मेरा गिरेबान पकड़ लेता, “जरा संभल कर, अम्मा का किरदार

आसान नहीं है”। मुझे नहीं याद, अम्मा ने कभी मुझे इन सब बातों के लिए कुछ कहा भी हो। कहाँ से लेकर आऊँ अम्मा के स्तर की सहन-शक्ति?

दीदी ने अम्मा के हाथ की सूजन कम करने के लिए होम्योपैथी की दवाइयाँ मँगवाईं थीं। डॉक्टर सक्सेना की दवाएँ अलग चल रहीं थीं, जो सामान्य तौर पर चलतीं थीं, वो दवाइयाँ अलग। अम्मा दवाइयाँ उगल देतीं। बहुत जोर-जबरदस्ती करनी पड़ती। दवाइयाँ पीस कर, खाने के कौर के साथ मिला कर देनी पड़तीं। अम्मा की प्रतिक्रिया से इतना तो निश्चित था कि उन्हें यह सब नहीं पसंद आता था किंतु आशा और निराशा के बीच की सँकरी पगडंडी पर पलट कर देखने का समय ही नहीं था। उम्मीदें उसी पगडंडी पर घसीटे लिए जा रहीं थीं। जब लड़ाई समय से हो, और कुछ हो न हो, समय यकीनन नहीं रहता।

६८.

गोलू का विवाह तय हो गया था। विवाह भोपाल में होना था। दीदी ने सबका आरक्षण करवा दिया। मुझे नहीं लग रहा था इस अवस्था में अम्मा को इतनी दूर ले जाना उचित होगा। मैंने दीदी से कहा भी किन्तु अम्मा अत्यंत उत्साहित थीं। एक बार मैंने अम्मा से मजाक में ही कहा कि रहने देते हैं, गोलू के विवाह में जाने को। अम्मा तुरंत उखड़ गईं "क्यों नहीं जाएँगे? पूर्णिया सबका रिज़र्वेशन करवा चुकीं हैं"। अम्मा नहीं भूलीं।

सबने कहा, सब साथ रहेंगे, संभाल लेंगे।

सुबह से अम्मा को पेशाब नहीं हुई थी। दोपहर तक अम्मा का पेट फूलने लगा। शाम तक काफी फूल आया था। दीदी एकदम घबरा गईं, अस्पताल ले चलने को कहने लगीं। मैंने कहा, "सारी दवाइयाँ बंद कर दीजिए"। उन्हें गर्म पानी पिलाया गया, अल्काज़ॉल दी गई तब जा कर उन्हें आराम मिला।

कुछ दिन बिता कर सब अपने-अपने घर लौट गए। सुमन जाते समय, अम्मा को गले लगा कर खूब रोई।उसके चेहरे के बनते-बिगड़ते भावों में, आने वाला समय, शायद पहले ही उग आया था। उसे बहुत मुश्किल से, मायके आने दिया जाता। जब सिम्मी जाने को हुई, अम्मा रोने लगीं। सिम्मी भी रोने लगी। सिम्मी ने कहा, "ऐसे रोओगी तो कैसे जाएँगे? शिवि का इम्तिहान जैसे ही खत्म होगा, आ जाएँगे"। अम्मा बोलीं, "जाओ, पर तब तक हम बैठे थोड़े ही रहेंगे"। सिम्मी भी चली गई। दुःख मनाना पड़ता है। सबके पास इसका लाइसेंस नहीं होता। समय ने ये अधिकार कतिपय संभ्रांत समुदायों में बाँट रखा है, बाकी सब के दुःखी होने का अधिकार, अन्यान्य, निर्माणाधीन दुःखों के भव्य स्मारकों की नींव में रेहन है।

सुधा दी रात में आतीं थीं। अर्चना और सुधा दी रात में अम्मा के पास रहतीं। बच्चों को सुबह स्कूल जाना रहता इसलिए उन्हें लेकर मैं नीचे सोता। सुबह तीन बजे मैं ऊपर आ जाता। अम्मा को पकड़ कर बाथरूम ले जाना पड़ता। उस समय वो काफी क्रोधित हो जातीं और पकड़ने वाले को पूरी ताकत से धकेलतीं या नहीं बस चलता तो दाँत काटने का प्रयास करतीं, जैसे छोटे बच्चे करते हैं। इसलिए केवल मैं ही उन्हें बाथरूम में ले जाता और ले आता। अम्मा मुझे बिल्कुल नहीं पहचानती थीं। पूरी ताकत से मुझे धकेलने का प्रयास करतीं, खुद को छुड़ाने का प्रयास करतीं, कभी सीने, कभी कंधे पर दांत काट लेतीं। नारी-सुलभ लज्जा का अहसास उनकी इस प्रतिक्रिया का आधार था। किंतु मेरे लिए वो सिर्फ एक बच्ची थीं इसलिए मुझे कभी संकोच नहीं हुआ। उनकी देखभाल करते समय, कभी भी किसी प्रकार का विषाद, ग्लानि या लज्जा का अनुभव नहीं हुआ ।उनकी देखभाल वैसे ही करता था जैसे बच्चों की की जाती है। उन्हें वैसे ही डाँटता- फटकारता भी था।कभी-कभी मेरी बहनों को यह बात बुरी लग जाती। पापा को भी बुरा लगता । पर मैं अम्मा को इस रूप में स्वीकार कर चुका था ।मैं जानता था अब इनमें किसी भी तरह का सुधार नहीं होगा, लेकिन उनका खान-पान और बाकी दिनचर्या व्यवस्थित रखने के लिए उनके साथ थोड़ी बहुत जोर-जबरदस्ती करनी पड़ती। उसके लिए अगर मुझे बुरा बनना पड़ा, तो बुरा ही सही। अम्मा, उस अवस्था में मुझे बिल्कुल भी पसंद नहीं करतीं थीं। मुझे देखते ही भड़क जातीं। एक बार दीदी से उन्होंने कहा भी था, उसके आने से पहले चलो यहाँ से निकल चलें, हम लोग। मुझसे मुक्ति पाने के लिए रजनीश भइया को आवाज देतीं "लल्लन" "लल्लन" । शायद कलकत्ता की स्मृतियाँ उभर आतीं। मुझसे कहतीं "आए द्या सबका, तोहका पिटवाउब"। अम्मा, क्या कभी मुझसे ऐसा कह सकतीं थीं? कभी नहीं। क्या अम्मा के साथ, इतनी जोर-जबरदस्ती मैं कर सकता था? नहीं। किंतु समय ने हमारे लिए यही किरदार निश्चित किया था। कभी-कभी, अकेले में, संवेदनाएँ मुट्ठी में भींच कर निचोड़ डालतीं। एक बार, बस एक बार, अम्मा मुझे पहचान

लेतीं। कभी-कभी वो युगाँधर या महालय को संदीप कहकर बुलातीं। तब लगता भाव वही हैं प्रारूप बदल गए। महालय को देखकर प्रसन्न होतीं। वह उन्हें खुश करने के लिए, उनके सामने नाचता, उन्हें गले लगाता, उन्हें चूमता।

पापा सुबह जल्दी उठ जाते। घूम कर आते और सीधे अम्मा के पास आकर बैठ जाते। जब तक मैं, अपने कामों से फारिग नहीं होता, पापा, अम्मा के पास ही बैठे रहते। ज्यादा कुछ कर तो नहीं पाते थे पर अम्मा उनके सामने सहज रहतीं। हाँ, कभी-कभी उत्तेजित हो जातीं या क्रोधित हो जातीं और उन्हें दाँत काटने का प्रयास करतीं। एक बार कलाई में इतनी जोर से काटा कि खून रिसने लगा। यह अमूमन तब होता, जब अम्मा को कोई हाथ लगाने का प्रयास करता। एक बार पापा से कहा कि भाई साहब को पत्र लिख दो हमें आकर ले जाएँ। पापा अम्मा को उतुरी ले जाना चाहते थे लेकिन मुझे समझ में नहीं आ रहा था, इस अवस्था में अम्मा, कैसे वहाँ रह पाएँगी। पापा उन्हें छत पर ले जाने की भी जिद करते। बहुत मुश्किल रहता था, पर ले जाता था। ऊपर ले जाते समय उन्हें पीछे से संभाले रहना पड़ता क्योंकि वो अचानक से हाथ झटक देतीं या बैठने का प्रयास करतीं जिसमें दोनों के गिरने का खतरा रहता। पीछे से उन्हें पकड़ कर बारी-बारी से एक-एक पैर उठा कर रखने को कहता, वो वैसा ही करती जातीं। पर अचानक जैसे झटका सा लगता और उनके तेवर बदल जाते। फिर वो वहीं बैठ जातीं। काफी मान-मनौव्वल, डाँट-फटकार, चीख-पुकार के बाद ही वो आगे बढ़तीं। ऊपर जाते समय ऐसा बहुत कम होता था पर नीचे उतरते समय अक्सर यही करतीं। और एक बार ऊपर अगर चली जातीं, फिर नीचे आने को, किसी कीमत पर तैयार नहीं होतीं। सर्दियों में उन्हें नाश्ता, खाना, वहीं धूप में ही करवाता था। जब तक धूप रहती उन्हें वहीं रखा जाता। फिर धूप ढलने के बाद उन्हें नीचे लाने की कवायद शुरू।

सुबह जाने से पहले सुधा दी अम्मा को उनकी दैनिक क्रियाओं से निवृत्त करा कर जातीं। शरीर की मालिश कर देतीं, बाल बना देतीं, कपड़े बदल देतीं।

हालांकि इस सबके दौरान, अम्मा की झिड़कियाँ, अम्मा की डाँट और अम्मा का क्रोध उन्हें झेलना पड़ता था।

सुधा दी की अपनी शारीरिक समस्याएँ थीं। उनका स्वयं का इलाज चल रहा था। कुछ दिनों बाद उन्होंने रात में आना बंद कर दिया।

अब रात में, हम सब, वहीं अम्मा के साथ कमरे में सोते। पापा ऊपर अपने ही कमरे में रहते। किंतु रात में अम्मा के चीखने-चिल्लाने की वजह से, युगाँधर और महालय की नींद पूरी नहीं हो पाती थी और उन्हें सुबह स्कूल जाना रहता था। अंततः अर्चना और दोनों बच्चों को मैंने नीचे ही सोने की सलाह दी। मैं अकेला, अम्मा के साथ बीच वाले हिस्से में रहता था। कभी-कभी अम्मा रात भर बड़े अच्छे से सोतीं, सीधे सुबह उठतीं और कभी-कभी रात भर नहीं सोतीं थीं।

उनकी नींद पूरी करने के लिए कभी-कभी हम उन्हें एक दो चम्मच ब्रांडी पानी या दूध में मिलाकर देते। शुरुआत में तो इसका असर दिखा पर धीरे-धीरे ब्रांडी का भी असर होना बंद हो गया।

अम्मा को डॉक्टर राकेश शुक्ला के पास भी ले गया। उन्हें दिखाया ।उन्होंने दो दवाइयाँ शामिल कीं। हालांकि ये दवाइयाँ खिलाने के बाद अम्मा का चिल्लाना काफी कम हो गया था और उनकी खुराक भी बढ़ गई थी, वो सो भी लेतीं, और सीढ़ी चढ़ते-उतरते समय अब उतना हंगामा नहीं करतीं थीं। यहाँ तक कि कभी-कभी वह कुर्सी से उठकर अपने आप चल कर एक कमरे से दूसरे कमरे में आ जातीं। अब उन्हें खाने के समय डाइनिंग टेबल पर ले आता, पापा के साथ बैठतीं और वहीं उनको मैं खाना खिलाता। हम सब खुश थे। पापा भी अक्सर अम्मा से कहते, "देखो तुम्हें दवाई का फायदा हो रहा है, अब दवा ठीक से ले लिया करो, परेशान न किया करो"। लगा ८६१ ए आशीर्वाद के पुराने दिन लौट आएँगे। रोज ही लगता कि अगले दिन सो कर उठेंगे और सब कुछ सामान्य होगा। अम्मा वैसे ही हँसती-मुस्कराती, सुबह,

पापा के साथ घूम कर आएँगी। काढ़ा पिएँगी, चाय माँगेगी, महालय के गाल पर हाथ फेंरेंगी और सब कुछ, हम बुरे सपने की तरह भूल जाएँगे।

किंतु दस-पंद्रह दिन बाद ही समय ने कहानी का यह पन्ना फाड़ कर फेंक दिया और वापस पुरानी कहानी को क्रमशः आगे बढ़ाने लगा। यथार्थ भूलने के लिए नहीं होता, सपने ही दमन छुड़ाते हैं। अम्मा फिर से वैसी ही हो गई। वैसे ही चीखने-चिल्लाने लगीं। उन्हें लेकर फिर डॉक्टर राकेश शुक्ला के पास गए। हमें लगा शायद दवा में कोई परिवर्तन करेंगे, किंतु उन्होंने मेडिकल कॉलेज में मनोरोग विशेषज्ञ को दिखाने की सलाह दी । हम निराश होकर लौट आए।

अम्मा को कहीं बिठाना भी मुश्किल था, जैसे ही उन्हें कुर्सी पर बिठाते वह तुरंत झुक कर फर्श पर कुछ खुरचने लगतीं। कितना भी मना करो नहीं मानतीं। कितनी बार कुर्सी से गिरीं गिरने के बाद फर्श पर ही लेट जातीं और जमीन पर थपकियाँ देने लगतीं। अपने माथे पर लगातार बाएँ हाथ से मारतीं रहतीं, यदि पूछो, कहीं कुछ दर्द हो रहा है तो मना कर देतीं। कई बार उनके हाथ बाँधने का प्रयास किया, उनके सिर पर कोई मोटा वस्त्र या टोपी सी पहना दी जाती किंतु अम्मा हाथ भी खोल लेतीं और टोपी या वह वस्त्र भी हटा लेतीं। अपनी पीड़ा, अपनी अवस्था, अपना शोक, अपना हर्ष, अपना विषाद, अपना दुख व्यक्त करने के लिए अम्मा के सारे शब्दकोश सूख गए थे। शब्दों के इस शून्य से अम्मा को खींचने का प्रयास जारी था। उम्मीदों के अगले पड़ाव पर हमने डॉक्टर प्रभात सिठोले को ऑनलाइन दिखाया। उन्होंने अम्मा से बात की और अम्मा का व्यवहार देखकर कहा यह मनोरोग नहीं है या तो यह मनोभ्रांश है या अम्मा का कैंसर, अम्मा के दिमाग तक पहुँच चुका है। उसके लिए उन्होंने एम.आर.आई कराने की सलाह दी किंतु अम्मा की अवस्था ऐसी थी ही नहीं कि उन्हें एम.आर.आई के लिए ले जाया जा सके। उन्होंने एक महीने की दवा दी और कहा यदि मनोभ्रांश है तो एक महीने में उसका फायदा अवश्य नजर आएगा।

अम्मा सारी दवाइयाँ उगल देतीं। यहाँ तक कि खाने के कौर में अगर मिलाकर दवाइयाँ खिलाता, वो खाने का कौर भी उगल देतीं। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि अम्मा की सारी दवाइयाँ मैं बंद कर दूँ किंतु मैं, डूबते हुए, तिनके में सहारा ढूँढ़ रहा था। किसी भी दवा से उन्हें कुछ फायदा नहीं हो रहा था।

एक दिन वे बेड पर बैठीं थीं। मैं उनके बगल में ही बैठा था। किसी काम से थोड़ी देर के लिए मैं बाहर आया, तब तक वह गिर पड़ीं और उनकी दाई आँख पूरी काली पड़ गयी। बर्फ से सिंकाई की गई, आँखों की दवा डाली गई किंतु अम्मा ने आँख नहीं खोली। अब वह दाहिनी ही नहीं, बाई आँख भी बंद रखतीं। मोह और आसक्ति के बंधन से, ईश्वर ने, पहले ही, उन्हें मुक्त कर दिया था। रही-सही माया-नगरी की मृग- मरीचिका से मुक्ति का समय आ गया था। आँखें बंद कर लीं। हाँ, कभी-कभी सुबह, एकदम सुबह, जब वो उठतीं थीं तब उनकी आँखें खुली रहतीं, थोड़ी देर के लिए, उसके बाद वो दिन भर आँखें बंद किए रहतीं। जब जोर से उन्हें पुकारो तो आंखें खोलतीं, वही रिक्त आँखें जिनमें कोई भाव नहीं होता या शायद उन भावों को मैं पढ़ ही नहीं पाता था। अपनी विवशता को व्यक्त न कर पाने की विवशता कैसी होती होगी? पीड़ा के शिखर पर बैठे मनुष्य की संवेदनाओं का भूचाल कितना भयानक होता होगा? अम्मा की उन रिक्त आँखों को देखकर लगता, असंख्य सूइयाँ जैसे कलेजे को पिरोए जा रही हैं और छलछलाते, थरथराते रक्त बिंदु, मानो दोनों को झकझोरने का प्रयास कर रहे हों, क्या दोनों ही सो गए हो?

होली के दिन जब महालय और युगांधर ने अम्मा के चरणों में अबीर डाली, अम्मा भाव विभोर हो रोने लगीं और महालय को गले लगा लिया। अम्मा को गुझिया बहुत पसंद थी। जितना अच्छा बनातीं थीं उतने ही चाव से खातीं भीं। उस दिन अम्मा को थोड़ी-थोड़ी करके तोड़-तोड़ कर गुझिया खिलाई। अम्मा ने बहुत समय लिया, एक गुझिया खाने में, किंतु मन से खाई और पूरी खाई। सुमन, सिम्मी, प्रतिभा सब का फोन आया पर अम्मा फोन पर बात नहीं कर पातीं थीं। शब्द कम पड़ गए थे, उनके पास। सिम्मी का फोन आता, बस,

''सिम्मी'' बोलकर रोने लगतीं और फोन हटा देतीं। कितनी बातें थीं जो अम्मा से करनी थीं और शायद अम्मा के पास भी न जाने कितनी बातें थी जो हमें बतानी थीं लेकिन संवाद, एक ऐसी सन्नाटे भरी गली से गुजर रहे थे, जहाँ ना वो समझ पा रहीं थीं और ना हम समझ पा रहे थे।

पर समझ रहा होगा ईश्वर, जिसे कभी कोई नहीं समझ पाया। एक अनंत ऊर्जा, जिसे समझना नहीं, अनुभव करना पड़ता है। ईश्वर को समझने का दावा, अपने आप में, सबसे बड़ा पाखंड और ईश्वर के प्रति किया गया दुर्दांत अपराध है। आपने कभी किसी ईश्वर को एक लोटा जल भी नहीं चढ़ाया, किसी मंदिर नहीं गए, किसी दरगाह पर चादर नहीं चढ़ाई किसी चर्च में नहीं गए किंतु सत्य पर आपकी आस्था बनी रही। आपने कभी किसी का दिल नहीं दुखाया ।आप ईश्वर के स्नेह से बच नहीं सकते। वह लगातार साए की तरह आपके साथ रहेगा। किंतु उसकी पाठशाला के सारे सबक सीखने के लिए परीक्षा भी देनी होती है। प्रश्न और जटिल होते जाते हैं, दुश्वारियाँ और बढ़ती जाती हैं जैसे-जैसे आप उसकी कक्षाएँ उत्तीर्ण करते जाते हैं। ईश्वर आपको स्वयं के समकक्ष लाने का प्रयास करता है इसलिए वह आपको ऐश्वर्य की घनीभूत चकाचौंध से दूर रखता है, आपका हाथ थाम सत्य तक पहुँचाने का प्रयास करता है।

अम्मा का अगाध विश्वास था ईश्वर पर। कष्टं के नए परिसीमन पर भी वह ईश्वर का द्वार ढूँढ़ ही लेतीं थीं। क्या माँगती थीं, नहीं पता। कुछ माँगती थी या नहीं, यह भी नहीं पता ।पर कष्ट कभी उनकी भक्ति से लंबी लकीर नहीं खींच पाए। जब तक शरीर ने साथ दिया ऐसा कोई व्रत, उपवास या पूजा-पाठ उन्होंने नहीं छोड़ा जो उन्हें विरासत में मिला। दिनेश पंडित पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। जब तक सक्षम रहीं, उन्हें बुलातीं, कथा, पूजा-पाठ करवाने के लिए। हम उनकी आस्था का कितना भी मजाक बनाते, उनकी आस्था डगमगाती नहीं थी। दोनों नवरात्रों में नौ दिनों का व्रत रखतीं। घर का सारा काम भी करतीं। नवरात्रि उनके लिए विशेष थी। जब उनके शरीर ने साथ छोड़ना शुरू किया, उनकी आस्था को कायम रखने के लिए मैंने नवरात्र के व्रत प्रारंभ किए। जिस सात्विकता से

उन्हें नवरात्र के दौरान पूजा-पाठ करते देखा था, उसी सात्विकता का अनुसरण करने का प्रयास करता किंतु हो नहीं पाता था। हाँ, नौ दिनों का उपवास जरूर पूरा करता। हवन करने के लिए अम्मा, दिनेश पंडित को बुलातीं, मैं स्वयं हवन करता। इसका मुख्य कारण शायद उन दिनों की आर्थिक अनिश्चितता थी। अम्मा के आखिरी दिनों में, दिनेश पंडित अम्मा से मिलने आए ।पता नहीं, अम्मा बाकी चीजों की अनुभूति कर पा रहीं थीं या नहीं किंतु उनके लिए उन्होंने चाय-पानी का इंतजाम करने के लिए अवश्य कहा।

१२अप्रैल२०२४ से अम्मा ने खाना-पीना धीरे-धीरे कम कर दिया। अम्मा को आइसक्रीम बहुत पसंद थी, इसलिए खाने में उन्हें आइसक्रीम अवश्य देता ताकि वो खाना आराम से खा सकें। उस दिन उन्होंने आइसक्रीम के लिए भी कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई, पानी भी बहुत कम पिया। नवरात्रि चल रही थी।१३ अप्रेल २०२४ ।मेरा नौ दिनों का व्रत था।उस दिन पंचमी थी। सुबह अम्मा को नाश्ता कराने बैठा तो अम्मा मुँह नहीं खोल रही थीं। काफी बोलने पर भी जब अम्मा ने मुँह नहीं खोला, तो मैंने कहा, ''देखो, दो दिन से पापा भी खाना नहीं खा रहे हैं''। अद्भुत था।किसी चमत्कार से कम नहीं। अम्मा ने दोनों आँखें खोल लीं। पल भर को लगा अम्मा एकदम सामान्य हो गईं हैं।तेवर में उसी तल्खी के साथ अम्मा ने पूछा, “काहे क वै नाय खात अहैं”? पल भर को मैं मूर्तिवत बैठा रहा, फिर कहा, “तुम कल से कुछ खा नहीं रही हो, इसलिए “।

अम्मा ने पुनः अपनी आँखें बंद कर लीं। ईश्वर न जाने कौन सी लीला रच रहा था। एक ही प्रश्न पर कितने परीक्षार्थियों के भविष्य दाँव पर लगे थे ।बड़ी मुश्किल से दो-चार कौर खाया। जबरदस्ती पिलाने पर दो-तीन घूँट पानी पिया।

उस दिन प्रतिभा आने वाली थीं।दोपहर तक आना था किंतु ट्रेन देर से आई।प्रतिभा ने जब घर में प्रवेश किया, तब अम्मा को खाना खिला रहा था। डेढ़ घंटे से ऊपर हो चुके थे, पापा खाना खा कर जा चुके थे। अम्मा के मुँह में

कौर डालने पर वो कौर वैसे ही रहता। अम्मा उसे चबाने या निगलने का प्रयास भी नहीं कर रहीं थीं। बहुत बोलने पर, झकझोरने पर हल्का सा मुँह चलातीं और एकदम धीरे से उसे बाहर की तरफ धकेलतीं। सुबह से ,अम्मा गर्दन सीधी नहीं रख पा रहीं थीं। सोफे के हत्थे पर सिर टिका लेतीं। एक पल के लिए भी सीधे नहीं बैठ पा रहीं थीं। प्रतिभा ने आते ही अम्मा को कई बार आवाज दी। अम्मा ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई। जब अम्मा को पानी पिलाने का प्रयास किया, अम्मा धीरे-धीरे पानी भी बाहर की तरफ धकेलने लगीं। अम्मा के कपड़े और सोफे पर पड़ी चादर पर जगह – जगह खाने के दाग़ लग गए थे। अम्मा की बाईं काँख से हाथ ले जाकर उनके धड़ को सहारा देकर, दूसरे हाथ से उनके दाहिने हाथ को कोहनी से पकड़ उन्हें उठाता और वैसे ही सहारा देकर उन्हें चलाता। आज भी वैसे ही खड़ा किया किंतु ऐसा लग रहा था, अम्मा जमीन पर पैर नहीं रखना चाह रहीं थीं। बड़ी मुश्किल से अम्मा को बेड तक ले गया। पर आज अम्मा कोई आवाज, कोई विरोध नहीं कर रहीं थीं। अम्मा को बेड पर लिटा कर मैं नीचे चला गया। चार बजे से कुछ बच्चे आते थे, जिन्हें पढ़ाना रहता था।

आज मन बिल्कुल खाली था। चाह कर भी कोई भाव नहीं उत्पन्न हो रहा था। पढ़ाने का मन नहीं कर रहा था। बच्चों के जाने के बाद, दूध लेने गया। जब ऊपर पहुँचा सात बज रहे थे। कमरे में बत्तियाँ जल रहीं थीं किंतु अजीब सा स्याहपन था। कमरा मनहूस, उदासी से भरा-भरा लग रहा था। थकान चरम पर थी। अम्मा समझ पातीं, वो मेरे लिए क्या थीं।

एक बार वो मुझसे बात कर लेतीं तो शायद स्वयं को इतना पराजित, इतना असक्त न महसूस करता। कमरे की स्याही जो लिख रही थी, उसे पढ़ नहीं पाया।

प्रतिभा से पूछा कि अम्मा ने कुछ लिया कि नहीं? प्रतिभा ने कहा, "एक बिस्किट, बड़ी मुश्किल से और थोड़ा सा दूध"। मैं फिर अम्मा को लेकर बीच वाले कमरे में आया उन्हें सोफे पर बिठाया और उन्हें दूध पिलाने का प्रयास

किया। किसी तरह एक कप दूध उन्हें पिलाया। लेकिन दूध पीने के बाद उनके सीने में घरघराहट होने लगी। मैं घबरा गया। तुरंत नेबुलाइजर से उन्हें नेबुलाइज किया। घरघराहट बंद हो गई। अम्मा को वापस ले जाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

रात में खाना खाने के लिए अम्मा को जब उस कमरे से सोफे तक ला रहा था सोफे के पास पहुँचते ही, अम्मा ने अपना पैर मोड़ लिया और मेरे हाथ से लगभग छूट गईं और झटके से सोफे पर गिरीं। अचानक अम्मा की दोनों आँखें खुल गईं। उन आँखों में क्या था? प्रताड़ना थी। अविश्वास था। व्यंग्य था। उलाहना था।अम्मा का वही पुराना चेहरा, नाराजगी भरा। अम्मा के चेहरे के भाव नहीं पढ़ पाऊँगा? असंभव। अम्मा ने आखिरी बार इसी भाव से मुझे देखा। आँखें फिर बंद हो गईं।

इसी स्थिति में अम्मा को खाना खिलाने का प्रयास किया। किन्तु अम्मा बिल्कुल भी खाने का प्रयास नहीं कर रहीं थीं। दूध में डाली एकदम महीन की हुई रोटी भी अम्मा नहीं निगल रहीं थीं। या तो धीरे-धीरे बाहर धकेलने का प्रयास करतीं या मुँह में यथावत कौर पड़ा रहता। चम्मच मुँह में डाल कर हिलाने पर थोड़ा बहुत निगल लेतीं। पानी भी बिल्कुल नहीं पी रहीं, सब बाहर उगल देतीं। जैसे-तैसे थोड़ा बहुत खिला-खिला कर उन्हें बेड पर ले जाने लगा। दरवाजे के पास पहुँचने से पहले ही अम्मा ने अपने पैर ढीले छोड़ दिए। अम्मा को गोद में उठा कर बेड तक ले गया। अम्मा ने आज किसी से कोई बात नहीं की। अम्मा की स्वैच्छिक क्रियाएँ भी अब अम्मा के नियंत्रण में नहीं थीं। अम्मा को बिस्तर पर जैसे ही लिटाया उनके सीने की घरघराहट शुरू हो गई। ऐसा प्रतीत होता पानी के बुलबुले फूट रहे हों। उन्हें पुनः नेबुलाइज किया । ऑक्सीमीटर से उनका ऑक्सीजन लेवल नापा तो हाथ-पैर ठंडे पड़ गए। ६५ प्रतिशत। मैं उस समय एक मानसिक शून्य था। अलग-अलग उँगलियों में ऑक्सीमीटर लगाया, कभी हाथ की तो कभी पैर की। हर बार लगता, नहीं, इस बार सही आ जाएगा। फिर लगता, नहीं इस बार, यहाँ पर सही आ जाएगा।

रक्तचाप नापा, ज्यादा था। मूर्ख! अस्पताल ले जाओ। विचारों के कई केंद्र पल भर में उठ खड़े हुए।दुविधाओं ने अलग मोर्चा संभाल लिया। अस्पताल? पहुँचते ही अम्मा को कैदियों सा जंजीरों में जकड लिया जाएगा। नहीं। अम्मा कभी भी इसके लिए तैयार नहीं थीं। अम्मा के अंतिम समय को इसी घर में आना होगा। इसी घर में, अम्मा के घर में, जो उनकी साध थी, उनकी तपस्या थी, जिसे समय की साजिश ने उन्हें भूल जाने पर मजबूर किया। समय को अपना अंतिम प्रहार यहीं अम्मा के परिवार के सामने ही करना होगा। विश्वासघात नहीं।

प्रतिभा सबको फोन कर अम्मा की वर्तमान स्थिति से अवगत करा रही थी। मैंने अर्चना से सरसों का तेल गर्म कर अम्मा के तलवों, हथेलियों और सीने की मालिश करने को कहा। अम्मा गंभीर से गंभीर बीमारी में भी उठ खड़ी हुईं, इस बार भी ऐसा ही होगा। कहीं ना कहीं निश्चिंतता बनी हुई थी। सुधा दीदी का फोन आया, ऑक्सीजन सिलेंडर का इंतजाम विक्की ने करवा दिया था। विकी और सुधा दी ऑक्सीजन सिलेंडर लेकर आ रहे थे। रात के साढ़े ग्यारह बज रहे थे। युगाँधर और महालय कालीन पर सो गए थे। पापा ऊपर अपने कमरे में सो रहे थे। पर इस कमरे में नींद जाग रही थी। एक रहस्यमयी नींद से अपनी सामर्थ्य अनुसार पंजे लड़ाने को तत्पर।

ऑक्सीजन सिलेंडर आया विक्की ने ऑक्सीजन सिलेंडर सेट किया। हमारी प्रतीक्षारत निगाहें ऑक्सीमीटर और ऑक्सीजन सिलेंडर के इर्द-गिर्द घूमती रहीं। ऑक्सीजन का स्तर सत्तर प्रतिशत के ऊपर आ ही नहीं रहा था। रात दो बजे के करीब सिलेंडर खत्म हुआ। विकी पुनः गाड़ी लेकर गए दूसरे सिलेंडर का इंतजाम करने। अम्मा का रक्तचाप बड़ी तेजी से ऊपर नीचे हो रहा था। प्रतिभा ब्लैक कॉफी बनाकर लाई अम्मा को पिलाने के लिए। मैंने अम्मा का सिर थोड़ा ऊँचा किया और चम्मच से उन्हें कॉफी पिलाने लगा। आश्चर्य इस बात का था कि जो अम्मा सुबह से खाना-पानी कुछ नहीं ले रहीं थीं। किसी उतावले बच्चे की तरह कॉफी के घूँट लेने लगीं। चार बजे के करीब विक्की

दूसरा सिलेंडर लेकर आए। हम इंतजार कर रहे थे कि थोड़ी सुबह हो तो, किसी डॉक्टर को घर पर बुलाकर अम्मा को दिखा लिया जाए। छः बजे मैने ऑनलाइन अपॉइंटमेंट लिया। नौ बजे का अपॉइंटमेंट था डॉक्टर ऑनलाइन देखने के लिए तैयार थे। समय तैयार नहीं था। इस बार आर या पार।। पूरी तैयारी के साथ आया था। मय लाव-लश्कर, उस गहरी छाया के साथ, जिसके संकेत बिंदुओं के साथ, अम्मा, पिछले तीन-चार महीनों से जूझ रहीं थीं।

६९. ।महाप्रयाण।

अम्मा ने यह घर भुला दिया, हमें भुला दिया पर उतुरी नहीं भूल पाई ऐसा क्या था उतुरी में? अम्मा के संघर्ष की जमीन वही तैयार हुई थी। अम्मा की प्रकृति, अम्मा का स्वभाव शायद उतुरी ही था। अम्मा विदा होकर उतुरी आईं थीं और उतुरी से ही विदा लेंगीं।

रात ग्यारह बजे के करीब, उतुरी जाने वाली सड़क ने, पहले घर पर हमारी गाड़ी को बाई और धकेल दिया । चंद्रावती, तुम्हारा मुकाम आ गया ।

इस बार भी कोई धार देने नहीं आया। हाँ, एक हृदय विदारक क्रंदन ने हमारा स्वागत किया। दिल दहल जाता था, पहले इस तरह का क्रंदन सुनकर। हृदय, अनजान आशंकाओं से भर जाता था। आज नहीं। आज इस क्रंदन का गंतव्य, दशा और दिशा सब पता है। हम ही तो लेकर आए हैं।

भइया ने सारी तैयारी कर रखी थी।

आँगन के सामने खुले में, बर्फ की सिल्ली, तख्त पर रखी थी। उसी पर अम्मा को लिटाना था। अम्मा को ठंड बहुत लगती थी पर आज नहीं। अब समय के क्रूर हाथों से मुक्त हैं, अब समय का उन पर कोई बस नहीं। अम्मा को गाड़ी से उतार, बर्फ की सिल्ली पर लिटा दिया गया। सिरहाने उपलों का अगियार किया गया था। अगरबत्तियाँ सुलगाई गईं थीं। मैं तख्त के पास रखी कुर्सी पर बैठ गया। अम्मा का सिर सहलाने का मन किया। ऊपर से नीचे तक कफन में लिपटी अम्मा को देख, बस क्रोध ही आ रहा था। भयानक क्रोध। ऐसा क्रोध मैंने कभी नहीं महसूस किया था। पूरा शरीर जल रहा था।मन की तृष्णा होम हुई जा रही थी। मेरे अंदर का "मैं" अनासक्ति में धू-धू कर जल रहा था। चेहरे नहीं पहचाने जा रहे थे। चेहरे उलझ रहे थे। सबको जाना है। कोई नहीं रुकेगा। जो बचेगा उसमें किसी का कोई अंश नहीं। सृष्टि जितनी उदार है ,उतनी ही कृपण। सब

वापस चाहिए उसे, ब्याज, मूल सब। शरीर के साथ भाव भी, संबंध भी। उससे बड़ा साहूकार कौन है? कोई व्यक्तिगत संपत्ति न समझे। ४८ घंटे से ऊपर हो चुके थे, एक झपकी तक नहीं ली थी। पर अब आँखें मुँद रहीं थीं। सांसारिक रूपरेखा से उलझने की बिल्कुल इच्छा न थी।

सुबह आँखें खुलीं पर जागृति रात को ही हो गई थी। कब इस कमरे में आकर सो गया था, कुछ याद नहीं। सौरमंडल के सापेक्ष स्वयं की स्थिति का भास होते-होते, अपनी जन्मदात्री के सम्मुख पहुँच ही गया। सूर्य की असंख्य किरणें भी उस सफेद कफन पर कुछ न लिख पा रहीं थीं। अर्चना, सुमन, सिम्मी, प्रतिभा, सुधा दी, गायत्री बुआ, कुसुमजीजी, हेम जीजी, प्रभा, रेनू, भाभी, भइया, चाची सभी तो थे। पर पापा बोल रहे थे। लगातार बोल रहे थे। रात से ही। नहीं, कल शाम से? नहीं, अम्मा के जाने के बाद से ही। वो नहीं रुकेंगे, जब तक पीड़ा के अगाध ज्वर को आत्मसात न कर लें। बहुत हठी हैं। उसके विपरीत, बाबू एकदम शांत। सबका दु:ख मनाने का तरीका और वक्त अलहदा होता है। तेरहवीं के बाद जिस दिन हमें लौटना था, सुमन का हाथ थाम, बाबू रोने लगे। यह उनका दु:ख था। असंभव है, दु:ख का तात्कालिक विश्लेषण।

अर्थी तैयार करने के लिए बाँस काटे जा रहे थे। उन्हीं का तरीका देखकर, मैं भी अर्थी तैयार करने में सहयोग करने लगा।

अम्मा को नहला कर तैयार किया जा रहा था। सुहागिनें सोलह श्रृंगार के साथ विदा होतीं हैं। अम्मा की सुहागन जाने की इच्छा पूरी हुई। पापा ने अम्मा की माँग ,आज फिर भरी। करीब पैंसठ साल का साथ रहा। आज रास्ते अलग हैं। पर नहीं, पापा ही उन्हें, उनकी राह पर छोड़ कर आएँगे। पापा किसी की नहीं सुनते, अम्मा को आग वही देंगे। पूरा गाँव आया था।शायद अम्मा यही दिखाना चाहतीं थीं। देखो, आदमी यहाँ अब भी जिन्दा है। हाँ। शहर तो मिश्र के पिरामिड हैं। धन, संपत्ति, वैभव के साथ दफन लाशें। पुनर्जन्म के इंतजार में।

समय ने कहा, “चलो, चंद्रावती, अपनी अंतिम यात्रा पर”। अर्थी तैयार है। लाल जोड़े में चंद्रावती पर फूल चढ़ाए जा रहे हैं। मैं अम्मा के पास बैठ जाता हूँ। उन्हें गले लगाने को झुकता हूँ। राजिन्दर भइया कहते हैं, “रहै द्या, भइया, एकरे आगे केहू कै जोर नाय न”। मैं नहीं सुनना चाहता। मैं नहीं समझना चाहता।

मैं जानवर की तरह दु:ख मनाना चाहता हूँ। जीवन-मृत्यु का साहित्य नहीं समझना। कैसे बिना अम्मा के लखनऊ जाएँगे? मेरी बहनें सब रो रहीं हैं। कैसे जाने दूँ अम्मा को? युगाँधर, शिवि और महालय ने अर्थी को हाथ लगाया, अम्मा के पैर छुए, ।

अर्थी उठा ली गई। मैं न तो अपनी बहनों की तरफ देख रहा था, न पापा की तरफ। हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

पापा आगे-आगे चल रहे थे। सफेद धोती, सफेद गमछा और गले में सफेद कपड़ा जो पहचान थी अग्नि देने वाले की, दस दिन के उपरांत शुद्धि के पश्चात, गले का वह कपड़ा हटेगा। आज पापा सचमुच झुके हुए लग रहे थे। बारी-बारी से सबने कंधा दिया अम्मा को। मैंने, भइया ने, अन्नू ने, विकी ने और शुभ ने भी।अम्मा चाहतीं थीं, उनकी अंतिम यात्रा में उनके नाती-पोते अवश्य शामिल हों। अम्मा की ये इच्छा पूर्ण हुई।अम्मा संपूर्ण हुईं।

चिता की लकड़ियाँ लगाई गईं। अम्मा को अर्थी से उठा कर चिता पर लिटाया गया।ऊपर और लकड़ियाँ लगाई गईं। गाँव के लड़के सब काम कर रहे थे। विनय, राजिन्दर, शिवा, गोलू, और भी कई लोग जिनके नाम शायद मैं भूल रहा हूँ। सबका आभार।

अंततः पापा ने मुखाग्नि दी। मानव इतिहास का क्रूरतम अध्याय, जो मोह के बंधनों को काटने के असफल प्रयासों के प्रायश्चित के रूप में लिखा गया। पापा हाथ में अग्नि-शिखा लिए परिक्रमा करते हुए चिता के अलग-अलग हिस्सों में उसका स्पर्श करा रहे थे। पैंसठ वर्षों का साथ, चिटकती चिता की चिंगारियों को धता बताते हुए, एक क्षीण मुस्कान के रुप में, पापा के चेहरे से चिपक गया।

उसमें निहित, वेदना के शब्दकोश, बस अम्मा के हैं। तुम्हारे लिए कुछ नहीं है, समय। तुम्हें खाली हाथा लौटना होगा।

चिता की लपटें इहलोक और परलोक एक कर रहीं थीं।सुनहरी चिंगारियाँ पाँचो तत्वों को निर्दिष्ट स्थानों पर स्थानांतरित कर रहीं थीं।

तभी अम्मा का दाहिना हाथ, जलती लकड़ियों के बीच से खिसक आया। उसकी दिशा उसी तरफ थी, जिस तरफ मैं खड़ा था और मुद्रा ऐसी थी मानो अम्मा, मुझ पर आरोप लगा रहीं हों। "देखो, इस बार भी तुम्हारे भरोसे ही थे पर इस बार तुम नहीं बचा पाए"। मैं अवाक, एकटक उस हाथ को देख रहा था। अब जा कर, अम्मा स्वयं को व्यक्त करने के लिए शब्द ढूँढ़ पाईं थीं। क्या अम्मा मुझे कभी क्षमा कर पाएँगी?

राजेन्द्र भइया के कहने पर किसी ने, एक लंबे बाँस से उस हाथ को अंदर करने का प्रयास किया, नहीं हुआ। राजेंद्र भइया ने स्वयं प्रयास किया, नहीं हुआ। चिता के पास जाना असंभव था। लपटें बहुत उँची थीं और चिंगारियों को साँस लेने की फुर्सत नहीं थी। पर अम्मा मुझे बुला रहीं थीं। मुखाग्नि मुझे देनी थी, दूध मुझे बख्शवाना था। पापा नहीं माने किंतु अम्मा को मेरा ध्यान था। मैं चिता के करीब गया। एकदम करीब। लगा, जैसे आग से नहा रहा हूँ। सब निर्मल होता जा रहा था। एक छोटी सी लकड़ी से, मैंने, हाथ को चिता की सुलगती लकड़ियों के बीच, धीरे से धकेला। जिस पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए, अम्मा ,कभी शब्द नहीं तलाश पाईं, उसकी अनुभूति के लिए ही अम्मा ने मुझे बुलाया था। उस असह्य तपिश में, अम्मा ने, अपने जीवन का सत्य मुझे सौंप दिया। अब उस चिता में और कोई नहीं मेरा "मैं" होने का भाव, मेरा अहं, मेरा अपराध, मेरा प्रायश्चित, मेरी इच्छाएँ, महत्वाकाँक्षाएँ, सब जल रहा था। समय,इस बार छला गया। उस चिता में, मैं जल रहा था। मैं अपनी चिता जलते हुए देख रहा था। स्वयं को चंद्रावती से बदल लिया।अब मैं ही चंद्रावती हूँ और यहीं से चंद्रावती की कहानी आरंभ होती है।

। उपसंहार।

मरना ही, क्या सचमुच मरना होता है? शरीर के साथ, क्या भाव भी नष्ट हो जाते हैं? अपने चारों तरफ अनगिनत चलती-फिरती लाशें देख रहा हूँ। शरीर हैं, भाव नहीं। गति है, दिशा नहीं। कहाँ की ओर अग्रसर हैं? कहीं नहीं। एक अव्यवस्था की व्यवस्था हैं। छद्म परिवारों से छिन्न-भिन्न एकल ईकाइयाँ।

परिवार को परिवार बना कर रखना है ?

ढूँढ़ो उस चंद्रावती को, जो तुम्हारे घर की नींव बनेगी। उसके संघर्ष और त्याग में अपने अधिकार-क्षेत्र तो चिह्नित कर लिए, बारी है अपनी कर्तव्य-निष्ठा का प्रमाण देने की। इससे पहले समाज अंतिम हिचकी ले, ढूँढ़ो ।